आज़ाद भारत में

सांप्रदायिकता और सांप्रदायिक दंगे

असग़र अली इंजीनियर

उद्‌भावना प्रकाशन

आज़ाद भारत में

सांप्रदायिकता और सांप्रदायिक दंगे

आज़ाद भारत में

सांप्रदायिकता और सांप्रदायिक दंगे

लेखक
असगर अली इंजीनियर

अनुवादक
सुभाष चन्द्र

उद्भावना प्रकाशन

ज़ाहिरा शेख को समर्पित!

प्रथम संस्करण : अप्रैल 2004

आवरण चित्र : जलेस स्मारिका से साभार

प्रकाशक:

उद्भावना
ए-21, झिलमिल इंडस्ट्रिएल एरिया
जी. टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-95
फोन : 22582847, 22119770

मुद्रक:

प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स,
दिल्ली - 95

मूल्य : 35 रुपये

विषय-सूची

प्रकाशक की ओर से

अनुवादक की ओर से

भूमिका 11

अध्याय-1
स्वतंत्रता-आंदोलन और साम्प्रदायिकता 19

अध्याय-2
सांप्रदायिक दंगे : सामान्य और विशिष्ट कारण 53

अध्याय-3
बाबरी मस्जिद प्रकरण के बाद बम्बई दंगे 72

अध्याय-4
सूरत दंगे : राष्ट्र पर कलंक 113

अध्याय-5
बेंगलूर दंगे : भाषायी या साम्प्रदायिक ? 136

अध्याय-6
गुजरात नरसंहार 145

परिशिष्ट
सांप्रदायिक दंगे : कुछ आंकड़ों पर एक नज़र 153
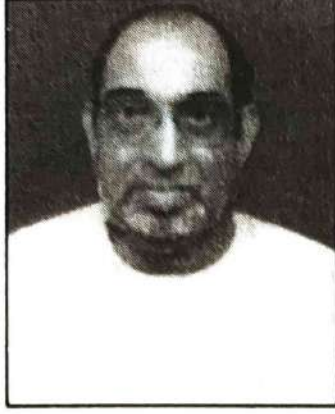
असगर अली इंजीनियर

जन्म : 10 मार्च, 1940। सिविल इंजीनियरिंग में स्नातक। हिंदी, उर्दू, मराठी, गुजराती, फारसी, अरबी एवं अंग्रेजी भाषाओं का ज्ञान। बड़ी संख्या में पत्र-पत्रिकाओं में खोजपूर्ण लेख एवं विवेचनात्मक टिप्पणियां।
इंडियन जर्नल ऑफ सेक्युलरिज़्म का संपादन

प्रमुख कृतियां

द ओरिजिन एंड डेवलपमेंट ऑफ इस्लाम,
इस्लाम एंड मुस्लिम-क्रिटिकल पर्सपेक्टिव्स,
द बोहराज,
इस्लाम एंड इट्स रेलिवेंस टु आवर एज,
राइट्स ऑफ विमेन इन इस्लाम,
कम्युनलिज्म एंड कम्युनल वायलेंस इन इंडिया,
एथनिक प्रॉब्लम इन साउथ एशिया
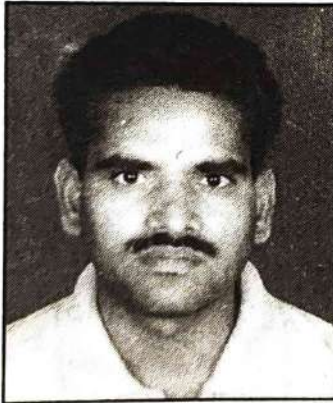
सुभाष चन्द्र

एम. एन कालेज, शाहाबाद (मा०)के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक ।
शिक्षा, साहित्य व संस्कृति पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख, साक्षरता और जन विज्ञान आंदोलन में सक्रिय भागीदारी।

प्रकाशित पुस्तकें

साझी संस्कृति
रजनीश बेनकाब (अनु० पंजाबी से हिन्दी)
भारत में साम्प्रदायिकता : इतिहास और अनुभव
(अनु० अंग्रेजी से हिन्दी)

अपनी बात

आजकल हमारे लेखकों और बुद्धिजीवियों में यह चर्चा ज़ोरों पर है कि गुजरात के बाद क्या सत्तासीन भाजपा के चरित्र को फासिस्ट कहना ठीक है ? उनका मत है कि आज इस प्रश्न की अनदेखी नहीं की जा सकती क्योंकि यह प्रश्न हमारी राजनीतिक रणनीति की दिशा को निर्धारित करता है और भविष्य में भी करता रहेगा। वर्तमान साम्प्रदायिकता विरोधी हलकों में एक लाइन यह है कि फासिज्म आ चुका है इसलिए भाजपा को छोड़कर तमाम अन्य पार्टियों व संगठनों को फासिज्म विरोधी मोर्चा बना लेना चाहिए, यानि कुछ देर के लिए अपने अन्य मुद्दों को तिलांजलि देकर कांग्रेस के साथ मिलकर इस फासिस्ट सरकार का मुकाबला करना चाहिए। हिटलर, मुसोलिनी, फ्रांको, पिनोशे इत्यादि के कारनामों की कहानियों द्वारा कई भोले-भाले सच्चे सांप्रदायिकता विरोधी व्यक्तियों को इस लाइन के लिए राजी करना भी आसान है। ''कल वे आपको फांसी पर लटका देंगे'' का हौवा खड़ा करके आज एक संवेदनशील (भयभीत) लेखक को इस बात के लिए राजी किया जा सकता है कि अब सब रणनीतियां इस तथ्य से तय होंगी कि फासिज्म आ चुका है।

प्रचार-प्रसार माध्यमों के फैलाव और उनके द्वारा उपयोग में लाई जा रहीं तकनीकों द्वारा आज यह पहले से बहुत आसान हो गया है कि आप अगर चाहें तो किसी दंगे की संपूर्ण तस्वीर जनता के सामने ला सकते हैं। शायद इसी कारण गुजरात का नरसंहार भारत के तमाम अन्य दंगों में सबसे अधिक प्रचारित-प्रसारित रहा है और जितने साक्षात्कार, रिपोर्टें, कमीशन इत्यादि इस दंगे पर डाक्यूमेंट किए गए हैं, उतने शायद आजाद भारत में अन्य किसी दंगे में नहीं किए गए हैं। असगर अली इंजीनियर द्वारा लिखित यह पुस्तक इस मायने में महत्वपूर्ण है कि उन्होंने बहुत सीमित संसाधनों के होते हुए गुजरात ही नहीं उससे पहले कई प्रदेशों में दंगा ग्रस्त इलाकों का खुद दौरा किया, प्रभावित लोगों से मिले और उसके बाद अपने अनुभवों और निष्कर्षों को पुस्तक का रूप दिया। और ये अनुभव बताते हैं कि इस देश के सांप्रदायिक दंगों में जहां आर एस एस-भाजपा-बजरंग दल-विश्व हिंदू परिषद ने सबसे अधिक सक्रिय भूमिका निभाई, वहीं कांग्रेस और अल्पसंख्यकों के सांप्रदायिक संगठनों की भूमिका भी शक से परे नहीं रही। कई जगह कांग्रेसी विधायकों और मुख्यमंत्री पद के लिए आपसी खींचतान के कारण सांप्रदायिक

ताकतों का इस्तेमाल किया गया। सूरत के दंगे विशेष रूप से गुजरात की याद दिलाते हैं। मलियाना गांव के मुसलमान नौजवानों का कत्लेआम आज भी रोंगटे खड़े कर देता है। तो क्या आज हम यह मान लें कि फासिज्म आज से 20 वर्ष पहले ही आ चुका था और गुजरात ने हमें हमारी नींद से जगा दिया और हम फिर 'फ़ासिज्म' का जाप करने में जुट गए। जिन्होंने फासिज्म देखा नहीं, केवल किताबों में पढ़ा है, उनके लिए वास्तव में यह अनुमान लगाना मुश्किल है कि फासिज्म आ गया है या नहीं। समस्या यह है फासिज्म की रट लगाने वालों में अधिकांश ने असगर अली इंजीनियर की तरह गली-गली कूचे-कूचे की खाक नहीं छानी है और ज़मीनी परिवर्तन के लिए कोई ठोस कार्यक्रम नहीं बनाया है। फिलहाल हम ऐसा कार्यक्रम बनाने, उसे ठोस रूप देने के लिए स्वतंत्र हैं तो लगता है अभी भी हमारे पास वक्त है कि कुछ कर गुजर जाएं ताकि फसिज्म की आहट जो हमें कभी कभी सुनाई देती है, इससे वक्त रहते छुटकारा पाया जा सके।

असगर अली इंजीनियर ने अपनी पुस्तक (Communal Riots After Independence) को हिंदी में उपलब्ध कराने के लिए उद्भावना को चुना, इसके लिए हम उनके विशेष रूप से आभारी हैं। अपने मित्र और कर्मठ साथी सुभाष चन्द्र का नाम उद्भावना के पाठकों के लिए नया नहीं है। इनकी महत्वपूर्ण पुस्तक 'साझी संस्कृति' उद्भावना की ओर से प्रकाशित हुई थी। वर्तमान पुस्तक भी उनके ही श्रम का नतीजा है। उन्होंने अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद करके इसे हमें उपलब्ध कराया। मित्र कामता प्रसाद ने इस अनुवाद के संपादन-कार्य में मदद की। इसके लिए मैं आभार व्यक्त करता हूं। इस पुस्तक में हमने असगर अली इंजीनियर द्वारा लिखित तथा साहित्य उपक्रम, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'भारत में सांप्रदायिकता, इतिहास और अनुभव' से एक अध्याय ''स्वतंत्रता आंदोलन और सांप्रदायिकता'' भी साभार शामिल किया है।

पाठकों की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

1 अप्रैल, 2004

अजेय कुमार
संपादक, उद्भावना

अनुवादक की ओर से

साम्प्रदायिकता आधुनिक भारत का कोढ़ है। साम्प्रदायिकता का विष-बीज अंग्रेजों ने बोया था। अपने शासन की पकड़ मजबूत करने के लिए तथा अपनी शासन अवधि को लम्बा करने के लिए अंग्रेजों ने भारत की जनता को बांटना शुरू किया। 'फूट डालो और राज करो' की नीति के तहत अंग्रेजों ने धर्म, जाति, क्षेत्र, भाषा आदि के नाम पर जनता को तोड़ने की कोशिश की। भाषा-विवाद पैदा करके, साम्प्रदायिक आधार पर जनगणना करके, एक समुदाय को अतिरिक्त संरक्षण देकर, अलग मतदाता-सूची, कानूनों में साम्प्रदायिक रवैया रखकर साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया। अपनी इस जनविरोधी-योजना में उन्होंने कुछ शिक्षित उच्च मध्यवर्गीय मुसलमानों व हिन्दुओं, जागीरदारों व राजे-रजवाड़ों को शामिल किया। इसे कार्यरूप देने के लिए मुसलमानों में 'मुस्लिम लीग' व हिन्दुओं में 'हिन्दु-महासभा' और 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' को संरक्षण प्रदान किया। ये संगठन लगातार अंग्रेजों के इशारे पर चलते रहे और स्वतंत्रता-आंदोलन को कमजोर करते रहे, ये आरोप-प्रत्यारोप में एक-दूसरे के विरोधी नजर आते रहे। लेकिन दोनों की विचारधारा एक थी, दोनों को अंग्रेजी-सत्ता का संरक्षण प्राप्त था। दोनों की राजनीति उच्च वर्ग का हित साधने की थी, दोनों को सामान्य जनता से व उसकी आकांक्षाओं से कोई लगाव नहीं था। दोनों धर्म के आधार पर राष्ट्र के हिमायती और धर्मनिरपेक्षता विरोधी थे।

सांप्रदायिकता का धर्म से, धर्म की शिक्षाओं से, धर्म के दार्शनिक पहलुओं से, धर्म में बुराइयों व सुधारों से, जनता की धार्मिक आकांक्षाओं से कोई सरोकार नहीं होता है। साम्प्रदायिक शक्तियां जनता में लोकप्रिय धार्मिक प्रतीकों तथा धार्मिक आस्थाओं का दोहन-शोषण करती हैं, वे धर्म का सहारा सिर्फ इसलिए लेती हैं क्योंकि धर्म का नाम लेकर लोगों को एकत्रित किया जा सकता है। धर्म में पारलौकिक जगत, ईश्वर आदि के विषयों पर चर्चा होती है जबकि सांप्रदायिकता का आधार भौतिक जगत के स्वार्थ हैं। स्वतंत्रता-आंदोलन के दौरान साम्प्रदायिक चिंतन व राजनीति के रहनुमा जिन्ना व वीर सावरकर थे, जिनका धर्म में कोई विश्वास नहीं था, धार्मिक मान्यताओं, धार्मिक विधि-निषेध, पूजा-उपासना की पद्धतियों में न तो कोई विशेष आस्था थी और न ही इनका विशेष ज्ञान था। यही धर्म के आधार पर अलग राष्ट्र की मांग कर रहे थे। दूसरी ओर स्वयं को सनातनी हिन्दू घोषित करने वाले महात्मा गांधी और इस्लाम के प्रकाण्ड विद्वान मौलाना अबुल कलाम आजाद हैं, जिनकी धार्मिक विश्वासों में आस्था थी, वे हमेशा धर्मनिरपेक्ष

राष्ट्र के लिए संघर्ष करते रहे। भारतीय उलेमाओं का राष्ट्रीय संगठन 'जमायते-उल-उलेमा-ए-हिंद' कांग्रेस के साथ रहा। मुस्लिम लीग आभिजात्य मुसलमानों के स्वार्थों का प्रतिनिधित्व करती थी, उसका इस्लाम से कोई सरोकार नहीं था, उसकी समस्त मांगें राजनीतिक थीं।

साम्प्रदायिक राजनीति के कारण भारत के दो टुकड़े हो गए। धर्म के आधार पर पाकिस्तान का निर्माण अव्यवहारिक, अवैज्ञानिक एवं कृत्रिम था। इसलिए पाकिस्तान के भी दो टुकड़े हो गए और बंगला देश बना। भारत ने धर्मनिरपेक्षता व लोकतंत्र को अपनाया। 1947 में जब विभाजन हुआ तो लाखों की संख्या में लोग उजड़े, हिंसा हुई। जिन्होंने यह माना था कि विभाजन सांप्रदायिकता की समस्या का समाधान है वे गलत साबित हुए क्योंकि आजादी के बाद भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या विकराल रूप धारण करती चली गई।

साम्प्रदायिकता ने अब संस्थागत रूप धारण कर लिया है। साम्प्रदायिकता ने फासीवाद दर्शन अपना लिया है। संस्थाओं का धर्मनिरपेक्ष व लोकतांत्रिक स्वरूप समाप्त किया जा रहा है। साम्प्रदायिक शक्तियों के आक्रामक मिथ्या प्रचार ने साम्प्रदायिक चेतना को सामान्य समझ (Common sense) बना दिया है। साम्प्रदायिक हिंसा व दंगे ऐसे हो गए हैं जैसे कि वे प्राकृतिक देन हों। गली-मोहल्ले की कहा-सुनी बड़े-बड़े साम्प्रदायिक दंगों का रूप धारण कर लेती है। हर संवेदनशील नागरिक व राष्ट्रभक्त के लिए साम्प्रदायिकता की चुनौती को ठीक से पहचानना और उससे लड़ना जरूरी है।

असगर अली इंजीनियर ऐसे व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने साम्प्रदायिक राजनीति को ऐतिहासिक-सामाजिक परिप्रेक्ष्य में समझने की कोशिश की है। उन्होंने साम्प्रदायिक हिंसा के कारणों को जानने के लिए तथा इससे होने वाले नुकसान को देखने के लिए साम्प्रदायिक दंगों का अध्ययन किया है। साम्प्रदायिक दंगों की पृष्ठभूमि व दंगों के दौरान साम्प्रदायिक शक्तियों की कार्य-शैली को जानने के लिए उनका यह कार्य हर उस व्यक्ति की मदद करेगा जो इस देश में शांति और धर्मनिरपेक्षता के लिए कार्यरत है। इसी आशा के साथ मैंने अनुवाद का प्रयास किया है।

इस अनुवाद में अशोक गर्ग, पवन शर्मा व राजवीर पाराशर की सक्रिय भूमिका रही है। उनके सहयोग के बिना यह काम पूरा नहीं होता। श्रीमती विपुला सैनी और अजेय कुमार जी ने भी अपना सहयोग दिया है। मैं इन सबका आभारी हूँ।

सुभाष चन्द्र

एम०एन० कॉलेज, शाहाबाद (मा०)

भूमिका

स्वतन्त्र भारत में साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक हिंसा के अध्ययन की महत्वपूर्ण सार्थकता है। जवाहरलाल नेहरू जैसे हमारे नेताओं का मानना था कि पाकिस्तान-निर्माण के साथ साम्प्रदायिकता की समस्या का समाधान हो गया और स्वतन्त्र भारत में यह अपना भद्दा चेहरा फिर से नहीं उठाएगी। उन्होंने सोचा था कि आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा के प्रसार से लोगों की मानसिकता में बदलाव आएगा और साम्प्रदायिकता बीते जमाने की बात बन जाएगी।

लोगों का नजरिया वैज्ञानिक बन जायेगा, लोगों के सामाजिक-राजनीतिक क्रिया-कलाप धर्म से प्रेरित नहीं होंगे। परन्तु हमने देखा कि ये परिकल्पनाएं पूरी तरह सच साबित नहीं हुईं और शिक्षा शहर और गांव के कुछ लोगों तक ही सीमित रही। जैसी शिक्षा प्रदान की गई वह भी समस्या पैदा करने वाली थी। नेहरू ने जैसा सोचा था, यह धर्मनिरपेक्षता और वैज्ञानिकता से बहुत दूर थी। वे इस मामले में अति-आशावादी थे। शिक्षा राज्य का विषय है और केंद्र सरकार ने शैक्षिक नीतियों को बहुत कम प्रभावित किया। अधिकांश शैक्षणिक संस्थान उनके नियंत्रण में थे जिनका नजरिया साम्प्रदायिक था। यहां तक कि आजादी के पचास साल बाद भी पाठ्यक्रम नहीं बदला। इतिहास की पाठ्य पुस्तकों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया गया और उन्हें साम्प्रदायिक नजरिये से लिखा गया। इस कारण, शिक्षा साम्प्रदायिक दृष्टिकोण को प्रसारित करने का शक्तिशाली माध्यम बन गई।

इससे भारत में लोकतंत्र की समस्या पैदा हुई। परम्परागत समाज का जाति और सम्प्रदाय से गहरा सम्बन्ध था। पाकिस्तान-निर्माण का मुख्य कारण साम्प्रदायिक आधार पर सत्ता हथियाने से शायद ही दूर हुआ? बल्कि यह साम्प्रदायिकता के साथ-साथ जाति के आधार पर सत्ता प्राप्त करने के रूप में मजबूत हुआ। साम्प्रदायिक और जातिवादी दलों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई और इन पार्टियों ने साम्प्रदायिक और जाति के आधार पर वोट देने का अभियान चलाया। हिन्दू साम्प्रदायिक दल 'जनसंघ' ने हमेशा अल्पसंख्यकों को निशाना बनाया और कांग्रेस पर उनका तुष्टिकरण करने का आरोप लगाया। कांग्रेस ने अल्पसंख्यकों से झूठे वायदे किये, जो कभी पूरे नहीं किए गए। अल्पसंख्यकों ने महसूस किया कि अधिकांश कांग्रेसियों का

दृष्टिकोण साम्प्रदायिक था। कुछ तो यहां तक कहते हैं कि जनसंघ हिन्दुओं की अ पार्टी है तो कांग्रेस उनकी ब पार्टी है। इसमें भी आंशिक सच्चाई है।

ऐसे सामाजिक-राजनीतिक वातावरण में साम्प्रदायिकता का सामाजिक, राजनीतिक यहां तक कि विचारधारा के रूप में मजबूत होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक हिंसा एक ही घटना के दो स्तर हैं। यदि समाज में साम्प्रदायिक प्रवृत्तियां बढ़ती हैं तो साम्प्रदायिक शक्तियों के लिए हिंसा करवाना आसान हो जाता है। साम्प्रदायिक हिंसा के लिए साम्प्रदायिकता का प्रसार आवश्यक शर्त है। साम्प्रदायिक हिंसा करवाने के लिए साम्प्रदायिक माहौल बनाया जाता है। पिछले पचास सालों में राजनीतिक प्रचार में साम्प्रदायिक मुद्दों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। अस्सी के दशक में इस प्रवृत्ति ने काफी जोर पकड़ा है। अस्सी के और नब्बे के प्रारंभिक वर्षों में सबसे अधिक साम्प्रदायिक हिंसा हुई।

स्वतन्त्रता-पूर्व और स्वतन्त्रता के बाद भारत की साम्प्रदायिक हिंसा की प्रवृत्ति को समझने के लिए देश की सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों को समझना जरूरी है। भारत मूलत: विविधतापूर्ण समाज है। इस देश में क्षेत्रीय, भाषायी, सांस्कृतिक और धार्मिक विविधता और बहुलता है, लोकतांत्रिक समाज के लिए विविधता शक्ति भी है और समस्या भी। यह इस पर निर्भर करता है कि राजनीतिक दल और राजनीतिक शक्तियों की मंशा क्या है। विविधता और बहुलता के आधार पर मजबूत और स्वस्थ लोकतंत्र भी बनाया जा सकता है और विविधता और बहुलता का दोहन करके हिंसक द्वन्द्व भी पैदा किया जा सकता है।

जब सम्प्रदाय और जाति के आधार पर सत्ता हासिल की जाए, तो विविधता मजबूती प्रदान करने वाले स्रोत की बजाए द्वन्द्व की स्रोत बन जाती है। साम्प्रदायिक शक्तियों ने देश की विविधता का दोहन किया—विशेषकर धार्मिक विविधता का। समुदाय विशेष के वोट प्राप्त करने के लिए राजनीतिक दलों ने धर्म के आधार पर समाज में विभाजन को जन्म दिया।

साम्प्रदायिक शक्तियों, विशेषकर बहुसंख्यक समुदाय की सांप्रदायिक शक्तियों ने, धार्मिक विविधता पर हमेशा हमला किया जबकि अल्पसंख्यक समुदायों ने जोर दिया कि बहुसंख्यक साम्प्रदायिक शक्तियों ने हमेशा विविधता को देश की कमजोरी का कारण माना। स्वतंत्रता-पूर्व काल में मुस्लिम समुदाय की साम्प्रदायिक शक्तियों ने धर्म-आधारित राष्ट्रवाद का नारा दिया और इस्लामिक राष्ट्रवाद (विवादास्पद धारणा) की बात की और हिन्दू साम्प्रदायिकों ने हिन्दू राष्ट्रवाद की बात की और हिन्दू-राष्ट्र का नारा दिया। देखा गया है कि साम्प्रदायिक शक्तियों ने विविधता के प्रति वितृष्णा पैदा की तथा एकरूपता को उभारने पर जोर दिया। जहां लोकतान्त्रिक

और धर्मनिरपेक्ष शक्तियों के लिए विविधता शक्ति का स्रोत है, वहीं साम्प्रदायिक शक्तियों के लिए यह कमजोरी का स्रोत है जिसे मिटा देना चाहिए। अल्पसंख्यक केवल लोकतान्त्रिक समाज में ही न्याय प्राप्त कर सकते हैं।

हिन्दुत्व के कार्यक्रम में शामिल है—एक भाषा, एक कानून और एक देश। हिन्दुत्व की शक्तियों ने धारा 370 की समाप्ति (जम्मू-कश्मीर को विशेष दर्जा देने का प्रावधान), राम मन्दिर और समान आचार संहिता का कार्यक्रम रखा। बाबरी मस्जिद के ध्वंस और राम मन्दिर के निर्माण को एकरूप हिन्दू समाज का प्रतीक बना दिया, जिसके तहत मुस्लिम व अन्य अल्पसंख्यकों के साथ दोयम दर्जे के नागरिक जैसा व्यवहार किया गया। रामजन्म भूमि-बाबरी मस्जिद विवाद स्वातन्त्र्योत्तर भारत का प्रमुख साम्प्रदायिक विवाद बन गया। साम्प्रदायिक शक्तियों ने इसको राजनीतिक रंग दिया और कुछ बड़े साम्प्रदायिक दंगे हुए। वास्तव में राजनीतिज्ञों का, जो कि इतिहास के विशेषज्ञ नहीं थे, इसमें शामिल होने और इस आधार पर वोट मांगने का कोई काम नहीं था। यह राष्ट्र-निर्माण में सबसे खतरनाक है। इस विवाद से पहले शाहबानो विवाद एक ऐसा प्रमुख धार्मिक विवाद था जिसे राजनीतिक रंग दिया गया।

आधुनिक राष्ट्र-राज्य ने, जो कि प्रकृति से साझा था, पहचान की राजनीति (Politics of Identity) का मुद्दा उठा दिया। भारतीय समाज अत्यधिक विविधतापूर्ण और बहुलतापूर्ण है, यहां भाषायी, सांस्कृतिक, धार्मिक और जाति की विविधता है। प्रत्येक समूह सिर्फ दूसरे से अलग पहचान के लिए ही जोर नहीं देता, बल्कि राजनीतिक संगठन के लिए भी जोर देता है। ऐसे समाज में जहां राजनीतिक सत्ता और आर्थिक संसाधनों का वितरण अत्यधिक असमान हो और कुछ उच्च जाति के समूहों का एकाधिकार हो वहां समूह की पहचान लोगों को एकत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। सभी जानते हैं कि इन समूहों के आधार पर वोट भी पड़ते हैं, इसलिए समूह-पहचान (इसमें धार्मिक, सांस्कृतिक, भाषायी, और जाति तथा उप-जाति की पहचान शामिल है) का बहुत महत्त्व है। हिन्दू-मुस्लिम समुदाय के बीच झगड़े के अलावा संघ-परिवार अब हिन्दू-क्रिश्चियन के झगड़े को भी बढ़ावा दे रहा है। जातियों के बीच झगड़े भी बढ़े हैं। ध्यान देने की बात है कि भारत जैसे बहुलतापूर्ण समाज में आधुनिक राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रियाएं जटिल होती हैं।

अतः हिन्दू और मुस्लिम समुदाय के बीच झगड़ों को धर्म या जाति के झगड़े के रूप में नहीं, बल्कि आर्थिक संसाधन और राजनीतिक सत्ता जैसे अन्य भौतिक कारकों के रूप में देखना चाहिए। पाकिस्तान का निर्माण भी मूलतः इस्लाम या

इस्लामिक शिक्षाओं से प्रेरित नहीं था, बल्कि उस समय की राजनीति का परिणाम था। तत्कालीन सत्ता समीकरण में मुस्लिम अभिजात्य वर्ग ने अपनी स्थिति को हिन्दू अभिजात वर्ग के मुकाबले कमजोर पाया, इसलिए उन्होंने अपने लिए अलग राजनीतिक क्षेत्र की मांग की, जहां उनकी सत्ता को कोई चुनौती न दे सके। हिन्दू और मुस्लिम अभिजात्य वर्ग ने संतोषजनक हल नहीं निकाला। उदाहरण के लिए, उनमें संसद की सीटों का हिस्सा बंट जाता तो शायद विभाजन को रोका जा सकता था। लोगों को एकत्रित करने और अपनी मांग की वैधता के लिए इस्लाम और इस्लामिक राष्ट्रवाद को उछाला गया।.......

पचास के दशक के दौरान कोई साम्प्रदायिक तनाव नहीं था, पर 1962 में जबलपुर में साम्प्रदायिक दंगे ने देश को हिला दिया। जबलपुर दंगा हिन्दू और मुस्लिम बीड़ी निर्माताओं के बीच आर्थिक प्रतिस्पर्धा का परिणाम था। हिन्दू बीड़ी निर्माता की बेटी और मुसलमान बीड़ी निर्माता के बेटे में प्यार हो गया और दोनों के शादी करने के फैसले ने धार्मिक उन्माद पैदा किया। स्थानीय हिन्दी दैनिक समाचार पत्र ने लिखा कि मस्जिद में लगे ट्रांसमीटर के जरिये पाकिस्तान जबलपुर के मुसलमानों से जुड़ा था और दंगे भड़कते गए थे। ऐसी अफवाहें धार्मिक उन्माद को बढ़ावा देती हैं।

साठ के दशक के आरम्भ में दंगों का कारण पूर्वी पाकिस्तान से आए हिन्दू शरणार्थियों का वर्ग रहा है। उनके दु:खों की कहानियां पूर्वी भारत के दुर्गापुर, जमशेदपुर, रांची, पं० बंगाल और कुछ अन्य स्थानों पर दंगों का कारण बनीं। साठ के दशक के अन्त में श्रीमती इन्दिरा गांधी के सत्ता में आने के बाद राजनीतिक परिदृश्य बदलना शुरू हुआ। उन्होंने कांग्रेस के स्वयंभू मालिकों से पीछा छुड़ाने के लिए कांग्रेस का विभाजन कर दिया और गरीब जनता का समर्थन हासिल करने के लिए बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया। उन्होंने गरीबी हटाओ का नारा भी दिया और धर्मनिरपेक्षता को भारतीय लोकतन्त्र का मुख्य स्तम्भ माना, इस तरह मुसलमानों का विश्वास भी जीत लिया। उनका चुनावी अंकगणित एक ओर मुसलमानों और दलितों का समर्थन था, तो दूसरी ओर वामपंथ और ब्राह्मणों का। श्रीमती इन्दिरा गांधी के एकाधिकार का विरोध करने के लिए कांग्रेस (ओ), स्वतन्त्र पार्टी और जनसंघ ने गुजरात में हाथ मिला लिए और उनकी राजनीतिक हैसियत को कम करने के लिए साम्प्रदायिक दंगे भी करवाए। 1969 के अहमदाबाद के दंगों ने देश को एक बार फिर हिला दिया था। इसके बाद 1970 में भिवंडी और जलगांव में दंगे हुए, जिसमें दो साल में ही अस्तित्व में आई शिवसेना ने प्रमुख भूमिका निभाई।

शिवसेना को कांग्रेस की वामपंथ विरोधी शक्तियों ने भी मदद की। शिवसेना ने भाषायी और साम्प्रदायिक दोनों तत्त्वों को जोड़ दिया। इस तरह साम्प्रदायिकता मूल रूप से राजनीतिक परिघटना है जो देश की राजनीतिक स्थिति के अनुसार घटती-बढ़ती रहती है।

सत्तर के दशक के आरम्भ में कोई बड़े दंगे नहीं हुए। 1970-71 में भारत बांग्लादेश के मुक्ति संघर्ष में मदद में व्यस्त था। श्रीमती गांधी की लोकप्रियता व पकड़ बुलन्दी पर थी, यहां तक कि विपक्ष को भी उनका लोहा मानना पड़ा था। हालांकि उनकी लोकप्रियता जल्दी ही गिरनी शुरू हो गई और सर्वोदयी नेता जयप्रकाश नारायण ने उनके खिलाफ लोकप्रिय आन्दोलन छेड़ दिया। इससे श्रीमती गांधी ने देश में आपातकाल (इमरजेंसी) की घोषणा कर दी। उल्लेखनीय है कि इमरजेंसी के दौरान साम्प्रदायिक हिंसा की कोई घटना नहीं हुई क्योंकि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, जनसंघ और जमात-ए-इस्लामी के लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया था। लेकिन इमरजेंसी के दौरान हुई ज्यादतियों के कारण वह इतनी अलोकप्रिय हो गईं कि बाद में चुनाव हार गईं।

मोरारजी के नेतृत्व में समाजवादी पार्टी, कांग्रेस (ओ), जनसंघ आदि विभिन्न विपक्षी दल इकट्ठे हो गए और जनता पार्टी बना ली। जनता पार्टी के नेताओं ने धर्मनिरपेक्षता और लोकतन्त्र की रक्षा के लिए महात्मा गांधी की समाधि पर शपथ ली। लेकिन ज्यों ही जनता पार्टी जीत कर केंद्र में सत्ता में आई तो दोहरी सदस्यता का विवाद गहरा गया, क्योंकि जनसंघ के सदस्यों ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सदस्यता छोड़ने से इन्कार कर दिया था। समाजवादी सदस्यों ने उनकी दोहरी सदस्यता पर आपत्ति की और इस मुद्दे पर सरकार गिर गई। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने जनता पार्टी शासन के दौरान जमशेदपुर, बनारस, अलीगढ़ और अन्य स्थानों पर दंगे करवाए। इस तरह 1977-78 में देश को एक बार फिर बड़े साम्प्रदायिक दंगे भुगतने पड़े।

श्रीमती गांधी 1980 में फिर सत्ता में आईं। उनकी नीतियों में भारी परिवर्तन था। वह मुस्लिम वोटों पर अनिश्चित थीं। संशय था इसलिए उन्होंने उन मध्यवर्गीय हिन्दुओं को खुश करना शुरू किया जिन्होंने भूमि सुधारों, हरित-क्रान्ति आदि से धन-सम्पत्ति अर्जित कर ली थी और राजनीतिक सत्ता के आकांक्षी थे। श्रीमती गांधी ने उनका समर्थन जीतने की कोशिश की और अब उनका जोर धर्मनिरपेक्षता पर उतना नहीं था। वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की जोरदार आलोचक नहीं थीं। 1980 में मुरादाबाद में बड़े दंगे हुए लेकिन वह चुप रहीं। *टाइम्स ऑफ इण्डिया* के गिरिलाल जैन ने अपने लेख में मुरादाबाद दंगों में 'विदेशी हाथ' होने की बात कही

लेकिन किसी जिम्मेवार सरकारी अधिकारी ने इस पर विरोध नहीं जताया। यहां तक कि श्रीमती गांधी ने मुरादाबाद का दौरा भी नहीं किया।

उभरते राजनीतिक परिदृश्य पर उन्होंने हिन्दू समर्थित भावनाओं का भी फायदा उठाना शुरू किया। मीनाक्षीपुरम के कुछ दलितों ने इस्लाम धर्म अपना लिया क्योंकि उनको उच्च जाति के थेवरों ने अपमानित किया था। इसने देश में हिन्दू साम्प्रदायिकता का ताप चढ़ा दिया और गैर-राजनीतिक संगठन विश्व हिन्दू परिषद ने धर्म-परिवर्तन के खिलाफ उग्र अभियान छेड़ दिया। कहा जाता है कि हिन्दुओं का समर्थन हासिल करने के लिए श्रीमती इन्दिरा गांधी ने इसे पीछे से प्रोत्साहित किया। बिहारशरीफ (1981), मेरठ (1982), बम्बई-भिवंडी (1984), अहमदाबाद (1985) आदि में एक बार दंगों की श्रृंखला बन गई। विश्व हिन्दू परिषद ने इनमें से कुछ दंगों, विशेषकर मेरठ के दंगों में बहुत उग्र भूमिका निभाई। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ या विश्व हिन्दू परिषद की भूमिका की कभी निन्दा नहीं की। अब वह हिन्दू साम्प्रदायिकता की नीति पर चल रही थीं।

दुर्भाग्य से नवम्बर, 1984 में श्रीमती गांधी के सिख सुरक्षाकर्मियों ने उन्हें गोली मार दी, जिसकी वजह से दिल्ली व उत्तर भारत के कई स्थानों पर सिख-विरोधी दंगे हुए जिनमें 4000 से अधिक सिखों की जान गई। इसमें अधिकतर कांग्रेसी शामिल थे। यह भी घोर साम्प्रदायिक उन्माद का समय था। भारतीय राजनीति की मुख्यधारा अब साम्प्रदायिक हो गई थी।

इसी दौरान कुछ ऐसी प्रमुख घटनाएं हुईं जिसने साम्प्रदायिक शक्तियों को हवा दी। शाहबानो आन्दोलन ने भारतीय राजनीति का साम्प्रदायीकरण कर दिया। मुस्लिम कट्टरपंथियों ने उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर बहुत ही उग्र रुख अपनाया। राजीव गांधी की सरकार कट्टरपंथियों के दबाव में आ गई और मुस्लिम महिला विधेयक को लागू कर मुस्लिम महिलाओं को धर्मनिरपेक्ष कानून से वंचित कर दिया। देश में यह गम्भीर साम्प्रदायिक उफान था। यही नहीं राजीव गांधी की सरकार ने हिन्दू कट्टरपंथियों को तुष्ट करने के लिए हिन्दुओं की पूजा के लिए बाबरी मस्जिद के द्वार खोल दिए। रामजन्मभूमि के सवाल ने नया मोड़ ले लिया। यह विवाद देश की धर्मनिरपेक्ष शक्तियों के सामने सबसे बड़ी चुनौती बन गया।

अगस्त 1990 में वी. पी. सिंह की सरकार ने मण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू किया, जिससे हिन्दू साम्प्रदायिकतावादियों को गहरा झटका लगा। वे रामजन्म भूमि के बैनर तले हिन्दू वोटों को एकत्रित करना चाहते थे। रामजन्म भूमि आन्दोलन को और तेज करने के लिए उन्होंने रथयात्रा की घोषणा कर दी। कुछ समाचारपत्रों ने रथयात्रा को खूनी-यात्रा कहा है। पूरे देश में बड़ी संख्या में साम्प्रदायिक

दंगे हुए। अस्सी के दशक के अन्तिम वर्षों में मेरठ (1987), भागलपुर (1989), जयपुर (1989, 1990), हैदराबाद (1990) और अन्य कई स्थानों पर रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद को लेकर दंगे हुए। इस विवाद में अन्ततः 6 दिसम्बर, 1992 को बाबरी मस्जिद गिरा दी गई और इसके बाद बम्बई, सूरत, अहमदाबाद, कानपुर, दिल्ली, कलकत्ता, पटना आदि जगहों पर साम्प्रदायिक हिंसा फैल गई। इन दंगों में जान और माल का बहुत अधिक नुकसान हुआ। अस्सी का दशक और नब्बे का प्रारम्भ दंगों के लिहाज से अत्यंत भयावह था क्योंकि जितना नरसंहार इस दौरान हुआ पहले कभी भी नहीं हुआ था। भारत में साम्प्रदायिक दंगों का कोई भी गम्भीर इतिहास इन घटनाओं की अनदेखी नहीं कर सकता। यह भी उल्लेखनीय है कि इन सभी दंगों में कानून और व्यवस्था तंत्र ने भी गरिमा के साथ काम नहीं किया। कुछ दंगों में पुलिस की भूमिका अत्यधिक पक्षपातपूर्ण रही। विभिन्न जांच आयोगों की रिपोर्टों से यह तथ्य उजागर हुआ है। 1984 के दिल्ली दंगों में और दिसम्बर'92-जनवरी'93 के बम्बई दंगों में पुलिस की भूमिका अत्यधिक निन्दनीय रही है। बहुत से सिपाहियों और निम्नस्तर के पुलिस अधिकारियों ने हिन्दुओं की भीड़ की ओर से हत्याओं, लूटपाट और आगजनी में खुलेआम भाग लिया। सबसे बुरी बात यह है कि महाराष्ट्र सरकार भी पूरी तरह निष्प्रभावी साबित हुई और उसने दोषी पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध कोई कदम नहीं उठाया। इसलिए यदि साम्प्रदायिक हिंसा को रोकना है तो रोक लगाने के लिए पुलिस बल को धर्मनिरपेक्ष बनाने की अत्यंत आवश्यकता है।

असगर अली इंजीनियर

अध्याय-1

स्वतन्त्रता-आन्दोलन और साम्प्रदायिकता

साम्प्रदायिकता का उद्‌भव 19वीं शताब्दी में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के बाद हुआ, न कि मध्यकाल में , जैसा कि साम्प्रदायिक शक्तियां प्रचारित करती हैं। यह समझना बहुत जरूरी है कि साम्प्रदायिकता आधुनिक काल की परिघटना है और इसका मूल कारण राजनीतिक सत्ता व सरकारी नौकरियों में हिस्सेदारी है, न कि धर्म। धर्म इसका मूल कारण नहीं है, लेकिन लोगों को एकत्रित करने की क्षमता के कारण धर्म का हथियार के रूप में प्रयोग किया जाता है। प्रजातान्त्रिक समाज की तरह मध्यकालीन समाज में सत्ता और सरकारी नौकरियां प्राप्त करने के लिए प्रतिस्पर्धा नहीं थी। (क्योंकि नौकरियां राजा या सामन्त की इच्छा-अनुसार दी जाती थीं, किसी कायदे के तहत नहीं) इसलिए मध्यकालीन समाज में साम्प्रदायिक राजनीति की गुंजाइश नहीं थी। इस प्रकार साम्प्रदायिकता भारत में अंग्रेजी राज के दौरान पनपी आधुनिक परिघटना है। इसके अतिरिक्त चालीस के दशक के आरम्भिक चरण में ज्यों-ज्यों स्वतन्त्रता की सम्भावना बढ़ी तो सत्ता में हिस्सेदारी की प्रतिस्पर्धा भी सघन हुई। इसने दोनों प्रमुख सम्प्रदायों के बीच साम्प्रदायिक संघर्ष को तीव्र किया। चूंकि इन प्रतिद्वन्द्वी स्वार्थों को सुलझाया नहीं जा सका इसलिए अन्ततः देश का विभाजन हो गया।

पहले हम इस ओर ध्यान दिलाना चाहेंगे कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने स्वतन्त्रता संघर्ष में राष्ट्रवाद और धर्मनिरपेक्षता की जो अवधारणा अपनाई, वह भारत की मिट्टी से नहीं उपजी थीं बल्कि विदेशी थी। असल में हिन्दुओं और मुसलमानों को इन दो मुख्य अवधारणाओं की कतई जानकारी नहीं थी। तिलक जैसे स्वतन्त्रता सेनानियों को हिन्दू जनता को स्वतंत्रता-आंदोलन में खींचने के लिए धार्मिक-

उत्सवों व धार्मिक मुहावरों का प्रयोग करना पड़ रहा था। जैसा कि कुछ विद्वानों ने इस ओर ध्यान दिलाया है कि हिन्दू धार्मिक मुहावरे ने मुसलमानों में सन्देह पैदा किया, इसने उनकी इस धारणा को मजबूत किया कि स्वतन्त्रता-संघर्ष में हिन्दुओं का वर्चस्व है जिसका परिणाम 'हिन्दू-राज' की स्थापना होगा। यही वजह थी कि सर सैयद अहमद ने कांग्रेस को 'हिन्दू पार्टी' करार देकर इसमें मुसलमानों के प्रवेश का विरोध किया, उन्होंने ऐसा अपने ही कारणों से किया। उनके इस कार्य से ब्रिटिश शासकों के हितों की पूर्ति हुई, क्योंकि राष्ट्रवादी पार्टी (कांग्रेस) के बनने से वे भयभीत थे।

भारत की जनता विभिन्न जातियों, धर्मों और क्षेत्रीय समूहों में बंटी हुई थी। प्रत्येक समूह को 'कौम' पुकारा जाता था। 'कौम' अरबी भाषा का शब्द है जो 'राष्ट्र' के लिए भी प्रयोग होता था। चूंकि भारत, हिन्दुस्तान या इण्डिया शब्द खूब प्रचलित थे इसलिए लोगों के मन में समस्त देश के प्रति एक अवधारणा तो थी, लेकिन वे राष्ट्र की आधुनिक अवधारणा से नहीं जुड़े थे। वे मुख्य तौर पर जाति, धर्म और क्षेत्रीय समुदाय के प्रति वफादार थे और प्रत्येक समुदाय खुद को 'कौम' के रूप में पहचानता था। वे धर्मनिरपेक्षता की पाश्चात्य अवधारणा से भी बहुत कम परिचित थे, असल में यह उनके लिए बिल्कुल अलग अवधारणा थी। धार्मिक और सामाजिक परम्पराएं व रीति-रिवाज सर्वोच्च थे और वही उनके सामाजिक और राजनीतिक व्यवहार को तय करते थे। पश्चिम में, धर्मनिरपेक्षता कैथोलिक चर्च और राजाओं के बीच लम्बे संघर्ष की उपज थी। मध्यकाल में चर्च ने सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति हासिल कर ली थी, जिसे मार्टिन लूथर ने जर्मनी के धर्मनिरपेक्ष शासकों की मदद से पहली बार चुनौती दी। इस तरह धर्मनिरपेक्ष शासकों और चर्च में राजनीतिक वर्चस्व को लेकर तीव्र संघर्ष शुरू हो गया।

आर्थिक एवं सामाजिक रूप से शक्तिशाली हो रहा व्यापारी वर्ग अब राजनीतिक सत्ता में हिस्सेदारी का आकांक्षी था, इसने भी धर्मनिरपेक्ष शासन की स्थापना के लिए चर्च के विरुद्ध संघर्ष में मदद की। दूसरी ओर तेजी से उभरते व्यापारी वर्ग और लगातार कमजोर पड़ते जा रहे राजतन्त्र में संघर्ष था। व्यापारी वर्ग स्वभावतः धर्मनिरपेक्ष शासन का इच्छुक था, क्योंकि चर्च के शासन का अर्थ था धर्म का आधिपत्य, जो वैज्ञानिक आविष्कारों के रास्ते में आड़े आता था जबकि ये वैज्ञानिक आविष्कार इस वर्ग के लिए बेहद लाभदायक थे। इस बारे में जवाहरलाल ने अपना मत इस तरह प्रकट किया है—''यूरोप के राजतन्त्र मजबूत केंद्रीय राज्यों के रूप में विकसित हुए। राजा व प्रजा के पुराने सामन्ती विचार समाप्त हो चुके थे। या समाप्त हो रहे थे। एक इकाई के रूप में राष्ट्र के नये विचार ने इसका स्थान ग्रहण कर लिया।

रिचेलू और मजारेन दो बहुत योग्य मन्त्रियों की देखरेख में फ्रांस ने इसका नेतृत्व किया। इसलिए राष्ट्रवाद देशभक्ति की कसौटी बना। मनुष्य के जीवन में धर्म सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व रहा था, अब वह हाशिये पर चला गया और नए विचारों ने इसकी जगह ले ली। 17वीं शताब्दी भी गौर करने लायक है जिसमें विज्ञान को आधार बना कर विश्व-बाजार का निर्माण हुआ। इस विस्तृत नए बाजार ने स्वाभाविक रूप से यूरोप की पुरानी अर्थव्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया। इसके बाद यूरोप, एशिया और अमेरिका में जो कुछ घटित हुआ उसे नई बाजार व्यवस्था को ध्यान में रखकर ही समझा जा सकता है। विज्ञान ने इसके बाद तरक्की की और इस विश्व बाजार की जरूरतों की पूर्ति के साधन मुहैया कराए।''[1]

इस तरह यूरोप में व्यापारी वर्ग के विकास ने लोगों की चेतना से धर्म के वर्चस्व को निकालने में मदद की, जिससे धर्मनिरपेक्ष शक्तियों का विकास हुआ। इस तरह राजनीतिक विचारधारा के रूप में 'धर्मनिरपेक्षता' की अवधारणा का जन्म चर्च और व्यापारी वर्ग के लम्बे संघर्ष से हुआ था। भारत में ऐसा कोई संघर्ष नहीं हुआ। चूँकि भारतीय व्यापारी वर्ग पूरी तरह सामंतों के अधीन था और उसने कभी राजनीतिक सत्ता में हिस्सेदारी की इच्छा व्यक्त नहीं की, इसलिए यूरोप की तरह यहां का व्यापारी वर्ग कभी भी शक्ति के रूप में नहीं उभरा और न ही यूरोप की तरह इस वर्ग को वैज्ञानिक आविष्कारों से कोई मदद मिली। यह वर्ग अपने दृष्टिकोण में घोर रूढ़िवादी बना रहा और धर्म का इस पर पूरा प्रभुत्व बना हुआ था। यहां तक कि उपनिवेशवादी प्रभुत्व के कारण 19वीं शताब्दी से उभर रहे औद्योगिक व्यापारी भी अपने दृष्टिकोण में कभी स्वतन्त्र नहीं हो सके। इस तरह कहा जा सकता है कि इसने किसी तरह भी धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण विकसित नहीं किया। धर्मनिरपेक्षता का विचार कभी भारत में पैदा नहीं हुआ। यह पश्चिम से उधार ली गई अवधारणा थी, जिसने अधिक से अधिक भारत के अभिजात वर्ग के एक तबके को ही प्रभावित किया।

यह रोचक तथ्य है कि महात्मा फुले के नेतृत्व में निचली जातियों ने धर्मनिरपेक्षता का स्वागत किया था। महात्मा फुले को इस अवधारणा में उच्च जातियों की जकड़ से निचली जातियों विशेषकर अछूतों की मुक्ति की सम्भावना नजर आई, इसलिए इन्होंने इसका जोरदार स्वागत किया और उन अन्धविश्वासी विचारों के विरुद्ध लड़े जिन्होंने हिंदुओं की निचली जातियों को द्विजों का दास बना रखा था, चूंकि उच्च जाति के हिन्दुओं के हित अलग थे, इसलिए उन्होंने अंग्रेजी शासन के प्रति अलग प्रतिक्रिया व्यक्त की। एक ओर राजा राममोहन राय व उन जैसे लोगों ने सुधार किए, उदार, प्रगतिशील और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाया दूसरी

ओर उच्च जाति के हिन्दुओं के एक वर्ग ने स्वयं को ब्रिटिश शासन के आधुनिक एवं विवेकशील दृष्टिकोण से अपमानित महसूस किया और उन्होंने हिन्दूवाद की श्रेष्ठता साबित करना शुरू कर दिया जिससे पुनरुत्थानवाद का जन्म हुआ। इस तरह भारतीय सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य पर पुनर्जागरण और पुरुत्थानवाद की दो धाराएं स्पष्ट रूप से उभरीं। हिन्दू अभिजात के एक वर्ग ने आधुनिकीकरण और धर्मनिरपेक्षीकरण का स्वागत किया जबकि दूसरा वर्ग परिवर्तन की प्रक्रिया के प्रति उदासीन था, तो एक वर्ग ऐसा भी था जिसने इसे पूरी तरह नकार दिया। मुस्लिम अभिजात वर्ग में लगभग ऐसा ही था। फर्क केवल इतना था कि आधुनिकीकरण और धर्मनिरपेक्षीकरण का स्वागत करने वाला मुस्लिम अभिजात वर्ग इसी तरह के हिन्दू अभिजात वर्ग के मुकाबले में बहुत कमजोर था। हालांकि उलेमा (मुस्लिम धर्मवेत्ता) धार्मिक मामलों में बहुत रूढ़िवादी थे, लेकिन उन्होंने मुत्ताहिदा कौमियत (साझा राष्ट्रवाद) की अवधारणा को स्वीकारं कर के राजनीति में प्रगतिशील भूमिका निभाई, जिस पर हम बाद में प्रकाश डालेंगे। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि 'राष्ट्रवाद' और 'धर्मनिरपेक्षता' की अवधारणाओं के प्रति दोनों प्रमुख समुदायों में अस्पष्टता थी।

भारत के सन्दर्भ में एक और जटिलता यह रही कि उपनिवेशवादी शासन-प्रशासन ने हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए राष्ट्रवाद और धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को खुले मन से स्वीकार करने में मुश्किलें पैदा कीं। पहला, भारत की अर्थव्यवस्था न तो तेजी से विकसित हुई और न ही इसके पास विश्व-बाजार पर कब्जा करने का अवसर था। यहां का व्यापारी वर्ग, जो धर्मनिरपेक्ष और उदार दृष्टिकोण विकसित कर सकता था, बहुत कमजोर बना रहा। दूसरा, अंग्रेजी शासन ने कभी हिन्दू सम्प्रदाय का तो कभी मुस्लिम सम्प्रदाय का पक्ष लेकर 'फूट डालो और राज करो' की नीति को अपनाया। इस नीति ने दो प्रमुख समुदायों में अलगाव की भावना को प्रोत्साहित किया। तीसरा, दोनों समुदायों के अभिजात वर्ग में एक-दूसरे से आगे निकलने की भावना पनप गई और उन्होंने धर्म के नाम पर अपने-अपने समुदाय के लोगों को संगठित करने की कोशिश की। इसने धर्मनिरपेक्ष और आधुनिक प्रवृत्तियों को कमजोर किया, जो अन्यथा तेजी से और मजबूती से विकसित हो सकती थीं। इन कारणों से धर्मनिरपेक्षता और राष्ट्रवाद का स्वाभाविक विकास नहीं हो सका।

चूंकि अंग्रेज 1857 के विद्रोह में मुसलमानों की मुख्य भूमिका मानते थे इसलिए वे मुसलमानों से दूरी रखते थे और हिन्दुओं का पक्ष लेते थे, लेकिन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बनने के बाद अंग्रेजों ने इसे राष्ट्रवादी हिन्दू पार्टी के रूप में देखा और अपनी नीति को उलट दिया और हिन्दुओं से दूरी रखना और मुसलमान अभिजात वर्ग का पक्ष लेना शुरू कर दिया। उन्होंने सर सैयद और उनके मुस्लिम

अभिजात वर्ग में आधुनिक शिक्षा प्रसार के कार्यों को संरक्षण दिया। ऐसे प्रयासों को मजबूत करने के लिए उन्होंने 20वीं शताब्दी के आरम्भ में मुस्लिम लीग के निर्माण को प्रोत्साहित किया। यह इस बात का प्रमाण है कि मुस्लिम लीग का गठन अंग्रेज शासकों के संकेत पर हुआ था। जिस शिष्टमण्डल ने वायसराय मिंटो से भेंट की उसमें अंग्रेज सरकार के वफादार शामिल थे। इसलिए वॉलपेट ने कहा, ''अक्टूबर, 1906 को अंग्रेजी शासन के प्रत्येक प्रान्त और कई रियासतों से सम्बन्ध रखने वाले समृद्ध, शक्ति-सम्पन्न व खानदानी 35 मुसलमान हिमालय की पहाड़ियों में स्थित शिमला महल के राजकीय नाचघर में इकट्ठे हुए...आगा खान ने अपने प्रत्येक साथी का परिचय वायसराय से करवाया, तब लार्ड मिंटो ने सुन्दर व महीन चमड़े पर लिखा ज्ञापन ऊंचे स्वर में पढ़ा, जो कि उनके सचिव डनलप स्मिथ को पहले ही भेजा जा चुका था।[2] इस सम्बोधन में एक चेतावनी थी कि भारत के मुसलमानों ने सदा न्यायप्रियता और निष्पक्ष आचरण से प्रेम पर विश्वास किया, यह उनके शासकों की निशानी है। परिणामस्वरूप अपने हकों और दावों को उन तरीकों से रखने में गुरेज करते रहे, जो सरकार को किसी भी तरह से परेशानी में डाल सकते थे, हार्दिक इच्छा है कि भारत के मुसलमान भविष्य में भी इस श्रेष्ठ और लम्बे समय से चली आ रही परम्परा से नहीं हटेंगे। हाल की घटनाओं ने विशेषकर मुसलमानों के युवा वर्गों में इस तरह की भावनाएं पैदा की हैं जो विशेष परिस्थितियों और हालातों में आसानी से नरमपन्थी, शान्त मार्गदर्शन के प्रभाव से बाहर जा सकती हैं।[3] यह स्पष्ट दर्शाता है कि जो वायसराय से मिले वे अंग्रेज शासकों के वफादार थे। वास्तव में, जो ज्ञापन दिया गया था वह ऐंग्लो-मोहम्मडन ओरियंटल कॉलेज, अलीगढ़ के प्रधानाचार्य बेक द्वारा तैयार किया गया था। ज्ञापन में यह भी था, ''हम आपसे आशा करते हैं कि आप शुरू में ही हमारे यह कहने को क्षमा करेंगे कि यूरोपीय ढंग की प्रतिनिधित्व वाली संस्थाएं भारतीय लोगों के लिए नई हैं। वास्तव में हमारे सम्प्रदाय के बहुत से बुद्धिजीवी सोचते हैं कि यदि इस तरह की संस्थाओं को भारत की सामाजिक-धार्मिक व राजनीतिक परिस्थितियों में सफलतापूर्वक लागू करना है तो अत्यधिक सावधानी व सतर्कता की आवश्यकता होगी और सतर्कता और सावधानी के बिना इन संस्थाओं को लागू करने से अन्य बुराइयों के साथ हमारे राष्ट्रीय हित संवेदनहीन बहुसंख्यकों की दया पर निर्भर हो जाएंगे।''[4]

इस तरह वायसराय को दिए ज्ञापन के शब्द ही दर्शाते हैं कि ये धन और शक्ति-सम्पन्न मुस्लिम निहित स्वार्थों की भाषा बोल रहे थे। वे लोकतान्त्रिक संस्थाओं के प्रति उत्साही नहीं थे, बल्कि सर सैयद की तरह वे लोकतान्त्रिक चुनावों और बहुसंख्यक समुदाय की नीयत के प्रति शंकालु थे। इसी रवैये की वजह से

अन्तत: देश का विभाजन हुआ। ये भद्र पुरुष आम मुसलमानों की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे। वास्तव में ये उनसे काफी कटे हुए थे। ये सिर्फ अभिजात वर्ग के मुसलमानों के हितों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे और ऐसा अंग्रेजी शासकों के हितों के अनुकूल था।

इस अभिजात वर्ग की अपेक्षा, परम्परावादी उलेमा आम मुसलमानों के ज्यादा नजदीक थे। विख्यात अलीम और इस्लामिक इतिहासकार मौलाना शिबली नौमानी ने मुस्लिम लीग के निर्माण की तीखी आलोचना की। उन्होंने इसे 'अलीबुल-खिलकत' (अजीब उत्पत्ति) कहा। इसकी राजनीति पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा, ''क्या यह राजनीति, खुदा न करे, नहीं! कहीं यह हाऊस ऑफ लॉर्ड तो नहीं! लगता तो यही है।''[5] शिबली ने मुस्लिम लीग के लिए कई व्यंग्यात्मक शब्द प्रयोग किए हैं जैसे 'एक फर्जी बेकार चीज', 'सरब' (मृग मरीचिका), 'पोलिटिकल तमाशगर', 'बजीचा-ए-अतफाल' (बच्चों का खेल) आदि।[6] शिबली नौमानी मुस्लिम लीग की अंग्रेजों के प्रति वफादारी और लीग द्वारा इसे भारतीयों के लिए प्रतिनिधि सरकार माने जाने पर बहुत क्रुद्ध थे। उनका मानना था कि लोगों को सरकार के कार्यों का विरोध करने का, अपने विचार प्रकट करने का और आलोचना करने का अधिकार है। उनके अनुसार जनता शासित तो होती है लेकिन वह शासन करने के कानून बनाती है और उनको लागू करती है। शिबली का मत था कि हिन्दुओं ने संघर्ष करके अंग्रेजों से कुछ रियासतें हासिल की हैं और मुस्लिम लीग अंग्रेजों से भीख मांगकर इन रियायतों में से अपना हिस्सा पाना चाहती है। अपने एक पत्र में वे यहां तक कहते हैं कि जो चीज शेर जंगल में शक्ति द्वारा प्राप्त करता है, वहीं गीदड़ अपने हिस्से की भीख मांगता है। इस तरह उन्होंने हिन्दुओं की शेर से और मुस्लिम लीगियों की गीदड़ से तुलना की है।

मुस्लिम लीग के पीछे सभी मुसलमान नहीं थे, जैसा कि इसके नेता अक्सर दावा करते थे। आम मुस्लिम जनता और उसके प्रतिनिधि हमेशा मुस्लिम लीग से दूरी रखते थे और यह देश के विभाजन तक लगातार चला। विभाजन का जिम्मेवार अभिजात वर्ग था न कि आम मुस्लिम जनता।

जिन्ना गोखले के बहुत करीब थे और जिन्ना ने उनको अपना राजनीतिक गुरु स्वीकार किया। गोखले की तरह जिन्ना भी उदार व वामपंथी राजनीतिज्ञ थे। असल में उनका मानना था कि राजनीति शिक्षित लोगों का काम है, जनता का इससे कोई लेना-देना नहीं है। वे महात्मा गांधी के इस विचार से सहमत नहीं थे कि जनता को राजनीति में लाया जाए। शुरू में जिन्ना ने लीग को एक नरमपन्थी नेतृत्व दिया। 1916 में लखनऊ में कांग्रेस-लीग समझौते का श्रेय जिन्ना को जाता है। जिन्ना ने

इसके लिए कड़ी मेहनत की। फरजाना शेख ने लिखा है, ''भारत में स्वशासन के सवाल पर कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच एकता के प्रयत्न में स्वाभाविक कठिनाइयां निहित थीं। 1909 में मुसलमानों के लिए अलग मतदाता सूची व अधिमान देने से कांग्रेस में काफी रोष था। मुसलमानों की मांगों के प्रति सहानुभूति रखने वाले गोपालकृष्ण गोखले जैसे लोग भी यह सोच कर उनसे कट गए कि उन्हें अपनी संख्या से अधिक प्रतिनिधित्व पाने का लालच हो गया है।''[8] यह तेज बहादुर सप्रू व मोतीलाल नेहरू आदि नरमपन्थी नेताओं का कांग्रेस में प्रभाव था, जिन्होंने कांग्रेस सदस्यों को मुसलमानों के लिए अलग मतदाता सूची की मांग मानने के लिए राजी किया, ताकि संवैधानिक परिवर्तन और स्वशासन के संघर्ष में उनकी मदद ली जा सके। मुसलमानों के एक वर्ग ने सर सैयद अहमद खान के नजदीकी लोगों विशेषकर सैयद हुसैन बिलगरामी ने लखनऊ समझौते का विरोध किया। असल में बिलगरामी ने अपना डर व्यक्त किया कि इस समझौते में स्वशासन पर विशेष बल से जिन्ना जैसे 'निम्न जाति में जनमे' लोगों को भारतीयों पर शासन करने का मौका मिलेगा। इसमें तथाकथित 'उच्चवर्ग' के मुसलमानों का 'निम्न वर्ग' के मुसलमानों के प्रति अभिजात्य पक्षपात साफ नजर आता है। लेकिन विडम्बना यही है कि बाद में जिन्ना ने स्वयं इसी अभिजात वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व किया। इसी तरह बंगाल में भी प्रसिद्ध लीगियों जैसे सैयद नवाब अली चौधरी और सर अब्दुर रहीम ने दावा किया कि समझौते ने अन्यायपूर्ण ढंग से मुसलमानों को 1909 के सुधारों से प्राप्त उपलब्धियों से वंचित कर दिया था और लीग को अधिमान के सिद्धान्त पर समझौता करने के लिए बाध्य किया। फरजाना की टिप्पणी, ''मुस्लिम अशरफ (उच्च वर्ग) से आए लोग जो नेतृत्व पर अपना स्वाभाविक हक समझते थे, मुसलमानों को अतिरिक्त प्रतिनिधित्व और 'राजनीतिक महत्व' के सिद्धांत के प्रति समझौते में अपनाए गए हल्के-फुल्के रवैये से अत्यधिक दुःखी हुए।''[9]

सैयद बिलगरामी, सैयद नवाब अली चौधरी और मियां मुहम्मद शफी (पंजाब से) जैसे अशरफ (अभिजात) मुसलमानों ने हमेशा मुसलमानों के विशेष दर्जे और उनको आबादी से अधिक प्रतिनिधित्व देने पर जोर दिया, जिससे बार-बार समस्या पैदा हुई। इसके विपरीत राष्ट्रवादी मुसलमानों और उलेमाओं ने ऐसी व्यवस्था के लिए कभी जोर नहीं दिया। इस तरह लीग का मुसलमानों में हमेशा सीमित प्रभाव रहा और इसने हमेशा विनम्र प्रार्थना में विश्वास किया (जैसा कि मौलाना शिबली ने भी रेखांकित किया और लीग के इस रवैये की खिल्ली उड़ाई)। महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन की शुरुआत के बाद लीग कांग्रेस पर बोझ बन गई। मुस्लिम जनता अभिजात वर्ग की बजाय असहयोग आन्दोलन के साथ थी।

यह बात ध्यान में रखने की है कि सन्दर्भ बदलने के साथ मानव-व्यवहार भी बदल जाता है। किसी ऐतिहासिक चरित्र के व्यवहार का मूल्यांकन करते समय ऐतिहासिक सन्दर्भ ध्यान में रखना आवश्यक है। जिन्ना का व्यवहार भी अपरिवर्तनशील नहीं था। बदलते राजनीतिक सन्दर्भों के साथ वह बदलता गया। अपने शुरुआती दिनों में जिन्ना भी औरों की तरह ही राष्ट्रवादी थे। सरोजनी नायडू के शब्दों में ''मुहम्मद अली जिन्ना और वजीर हुसैन ने मुस्लिम लीग में शामिल होने से पहले शपथ ली कि मुस्लिम लीग और मुस्लिम हितों के साथ जुड़ाव से किसी भी समय और किसी भी तरह से राष्ट्रीय हितों को आंच नहीं आनी चाहिए, जिसके प्रति उनका जीवन समर्पित था।'' [10] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उन दिनों मुस्लिम हितों के मुकाबले जिन्ना का राष्ट्रीय हितों से गहरा लगाव था और वे मुस्लिम उद्देश्यों के लिए राष्ट्रीय हितों को त्याग देने के विरुद्ध थे, लेकिन इसका यह अर्थ कतई नहीं है कि जिन्ना का मुस्लिम हितों से कोई लगाव नहीं था। राजमोहन गांधी ने कहा, ''ऐसा नहीं है कि 1913 से पहले जिन्ना मुस्लिम हितों के प्रति उदासीन थे। दो साल पहले ही मुस्लिम परिवार के किसी एक सदस्य के मूर्खतापूर्ण कार्यों से परिवार के सदस्यों के हितों की रक्षा के लिए वेलीडेटिंग बिल प्रस्तुत किया था। गोखले और जिन्ना के यूरोप जाने से कुछ समय पहले इसे वायसराय की स्वीकृति मिल गई। यह बिल पारित होने से मुसलमानों में जिन्ना का कद ऊँचा हो गया, निःसन्देह यह मुहम्मद अली की लीग में शामिल होने की इच्छा को व्यक्त करता है।'' [11]

जिन्ना का दृष्टिकोण अपने आप में उदार और आधुनिक था, उन्हें धर्म और राजनीति का घालमेल पसन्द नहीं था। वह खिलाफत के मुद्दे को उठाने के विरुद्ध थे, क्योंकि इससे धर्म का राजनीति में हस्तक्षेप होता था। खिलाफत के सवाल पर जिन्ना के साथ मिलकर सी आर दास और बिपिन चन्द्रपाल ने भी महात्मा गांधी का विरोध किया, लेकिन अली बन्धुओं (मुहम्मद अली व शौकत अली) व मोतीलाल नेहरू के समर्थन से कलकत्ता कांग्रेस में महात्मा गांधी ने बहुमत जीत लिया। अन्य नरमपन्थियों की तरह जिन्ना राजनीति में जनता की भागीदारी के पक्ष में नहीं थे, क्योंकि उन्हें इस भागीदारी से घबराहट होती थी। जिन्ना ने गांधी जी के निमन्त्रण— ''नए जीवन में भाग लो जो कि देश के सामने खुल चुका है, और अपने अनुभव व मार्गदर्शन से देश का भला करो'' [12] का उत्तर यूँ दिया—

''यदि 'नए जीवन' से आपका अर्थ आपके तरीके और कार्यक्रम से है, तो मुझे डर है, मैं उन्हें स्वीकार नहीं कर सकता; क्योंकि मेरा पक्का विश्वास है कि यह विनाश की ओर ले जाएगा। परन्तु वास्तविक नया जीवन जो देश के सामने है वह यह है कि हमारा वास्ता ऐसी सरकार से पड़ा है जो जनता की शिकायतों, भावनाओं

और आस्थाओं की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दे रही। हमारे अपने देश के लोग बंटे हुए हैं, नरमपन्थी दल अभी भी गलत राह पर हैं। आपने अभी तक जिन संस्थाओं में पहुंच बनाई है, आपके तरीकों ने लगभग उन सारी संस्थाओं में विभाजन किया है और देश के जनजीवन में न केवल हिन्दू और मुसलमानों के बीच, बल्कि हिन्दू-हिन्दू के बीच और मुसलमान-मुसलमान के बीच यहां तक कि पिता-पुत्र के बीच भी। देश भर में लोग आम तौर पर मरने-मारने को तैयार हैं और आपके अतिवादी कार्यक्रमों ने कुछ समय के लिए अधिकतर अनुभवहीन युवाओं, अज्ञानी व अनपढ़ लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया है। इसका अर्थ है—पूर्ण बिखराव व अव्यवस्था। इसके परिणामों की कल्पना करके ही डर लगता है, लेकिन मैं स्वयं आश्वस्त हूं कि सरकार की मौजूदा नीति इसका प्राथमिक कारण है और जब तक यह कारण दूर नहीं होता इसके प्रभाव बने रहेंगे। इस कारण को दूर करने की ताकत मुझमें नहीं है, लेकिन साथ ही मैं नहीं चाहता कि मेरे देशवासियों को तबाही के किनारे तक घसीट कर ले जाया जाए।" [13]

स्पष्ट है कि जिन्ना ने गांधीजी के तरीके के खिलाफ कड़ी प्रतिक्रिया व्यक्त की, क्योंकि वे राजनीति में जनता की भागीदारी के पूर्णतः विरुद्ध थे। इस पत्र से एक बात और स्पष्ट है कि जिन्ना देशवासियों से जुड़ाव महसूस करते थे। वह नहीं चाहते थे कि 'देशवासियों को तबाही के कगार तक घसीट कर ले जाया जाए', वे हिन्दू और मुसलमान की दृष्टि से नहीं सोचते रहे थे, बल्कि अपने देशवासियों की दृष्टि से सोच रहे थे। लेकिन सन् तीस के बाद जिन्ना ने सिर्फ मुसलमानों के हितों को ही आगे रखा, ऐसा बदलाव उनमें क्यों हुआ इसकी भी एक रोचक कथा है। इस पर हम बाद में कुछ प्रकाश डालेंगे। यह भी रोचक है कि जिन्ना केवल विचारों और राजनीति में ही उदार नहीं थे, बल्कि पूर्णतः पश्चिमी सभ्यता में रंगे हुए थे। यहां तक कि वह सूअर का मांस खाना भी बुरा नहीं मानते थे। यह एक मजेदार कथा है—"सितम्बर, 1923 के चुनाव-प्रचार अभियान के दौरान (जिन्ना भी चुनाव लड़ रहे थे) जिन्ना और छगला दोपहर के भोजन के लिए जा रहे थे। श्रीमती जिन्ना टॉउन हॉल में खाने का डिब्बा लेकर आईं और सीढ़ियां चढ़ते हुए बोलीं—'जे (वह जिन्ना को यही सम्बोधित करती थीं) मैं तुम्हारे लिए सूअर के मांस की ताजा सैंडविच लाई हूँ।' जिन्ना हक्के-बक्के रह गए, 'हे भगवान्! ये तुमने क्या किया? क्या तुम मुझे चुनाव हराना चाहती हो? क्या तुम्हें अहसास है कि मैं ऐसे क्षेत्र से चुनाव लड़ रहा हूं जिसमें केवल मुसलमान ही वोट डालते हैं। यदि मतदाताओं को पता चल जाए कि मैं दोपहर को सूअर का मांस खा रहा हूँ तो क्या तुम्हें लगता है कि मैं चुनाव जीत जाऊँगा?' 'वे बम्बई के प्रसिद्ध रेस्टोरेंट कोर्नावालिया में गए।

जिन्ना ने दो कप कॉफी, एक प्लेट पेस्ट्री और एक प्लेट सूअर के मांस का अचार मंगाया। तभी मुसलमानी दाढ़ी वाला एक बुजुर्ग लगभग 10 साल के बच्चे के साथ अन्दर आया, शायद वह उसका पोता था। वे आए और जिन्ना के पास बैठ गए। यह स्पष्ट था कि उनको टॉउन हाल से भेजा गया था। तभी मैंने देखा कि बच्चे का हाथ धीरे-धीरे सूअर के अचार की प्लेट की ओर बढ़ रहा था। थोड़े संकोच के बाद उसने प्लेट से एक फांक उठाई, और मुंह में डाल ली और ऐसे चबाने लगा जैसे उसमें उसे बहुत मजा आ रहा हो। मैं बेचैनी से देखता रहा। कुछ समय बाद वे चले गए और जिन्ना मेरी ओर मुड़े और गुस्से में बोले, 'छगला, आपको अपने पर शर्म आनी चाहिए।' मैंने क्या किया?' जिन्ना ने सवाल किया, 'तुमने बच्चे को सूअर के मांस का अचार क्यों खाने दिया?' मैंने कहा, 'देखो जिन्ना, मैंने जल्दी निर्णय लेने के लिए दिमाग की सारी शक्ति लगा दी। मेरे लिए धर्मसंकट यह था कि जिन्ना को चुनाव हार जाने दूं या बच्चे का धर्म भ्रष्ट हो जाने दूँ? मैंने आपके पक्ष में निर्णय लिया।' ''[14] इस तरह जिन्ना की इस्लाम में कोई धार्मिक आस्था नहीं थी। वह सूअर का मांस खाने को भी बुरा नहीं समझते थे, जिसकी इस्लाम में सख्त मनाही है।

राजमोहन गांधी ने महात्मा गांधी और जिन्ना के बीच एक रोचक तुलना की है। उसने कहा कि, ''गांधी और जिन्ना में लन्दन की कानूनी शिक्षा और गुजराती पृष्ठभूमि ही एकमात्र समानता नहीं थी। दोनों हिन्दू-मुस्लिम एकता और स्वशासन चाहते थे। फिर भी उनमें कुछ भिन्नताएं रेखांकित करने वाली हैं—गांधी अपने धार्मिक विश्वासों को प्रदर्शित करते थे, जबकि जिन्ना ने उनके बारे में कभी बात नहीं की। गांधी गरीबी को गले लगाते थे और उसकी वकालत करते थे जबकि जिन्ना ने करोड़ों रुपये कमाए और दूसरों को कमाने के लिए प्रेरित किया, जिन्ना बहुत बढ़िया कोट-पैंट पहनते थे और मालाबार पहाड़ी पर ऐश्वर्यपूर्ण घर में रहते थे, गांधी किसानों के से कपड़े पहनते थे और मरुस्थल के गांव की झोपड़ी में रहते थे। गांधी सभी से गर्मजोशी से मिलते थे, लेकिन बहुत थोड़े लोग जानते हैं कि जिन्ना गर्मजोश हो सकते हैं। गांधी निराशाजनक माहौल में भी खुश रहते थे जबकि जिन्ना खुशगवार माहौल में भी शुष्क रहते थे। गांधी विनम्रता के स्रोत थे तो जिन्ना कई बार अहंकारी नजर आते थे। गांधी जी आम जनता को आन्दोलन में शामिल करना चाहते थे दूसरी ओर जिन्ना अभिजात रहकर ही सन्तुष्ट थे। जिन्ना और गांधी के विरोधों की सूची काफी लम्बी है।''[15]

बाद में, जिन्ना का अभिमानी व्यक्तित्व, अभिजात्यवादी दृष्टिकोण और अहंवादी व्यवहार देश के विभाजन के कारणों में से थे। जिन्ना कड़ा रुख अपनाते थे

और अपना विरोध पसन्द नहीं करते थे। वे 'कट्टर संवैधानिक' थे और जन-आन्दोलनों में जनता की भागीदारी को पसन्द नहीं करते थे।

यद्यपि जिन्ना ने देश के विभाजन का रास्ता तैयार किया, लेकिन वे अकेले ही इसके लिए जिम्मेदार नहीं हैं। और भी कई तथ्य हैं जिनको ध्यान में रखना जरूरी है। यह रेखांकित करने योग्य है कि यद्यपि स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान मुस्लिम राजनीति की कई धाराएं थीं, लेकिन साम्प्रदायिक प्रचार ने पढ़े-लिखे काफी लोगों में यह प्रभाव जमा दिया है कि मुसलमानों में जिन्ना और उनकी मुस्लिम लीग की राजनीति का ही आधिपत्य था, और यह सच्चाई से कोसों दूर है।

मुसलमानों के विभिन्न समूहों में विवादास्पद मुद्दों पर शायद ही कभी सर्वसम्मति हुई होगी। जिन्ना के नेतृत्व में काफी नरमपन्थी मुसलमानों ने खिलाफत आन्दोलन की मदद करने का विरोध किया, जबकि कई जाने-माने मुसलमानों जैसे अली भाइयों, मौलाना आजाद और अन्य कई प्रसिद्ध उलेमाओं ने खिलाफत आन्दोलन का दिलोजान से समर्थन किया। वास्तव में इस आन्दोलन से लाखों मुसलमान कांग्रेस के निकट आए। जैसे कि पहले निष्कर्ष सामने आए हैं कि राष्ट्रवाद और धर्मनिरपेक्षता के विचार भारतीयों की समझ से परे थे और इन विषयों को लेकर मुसलमानों और हिन्दुओं को राजनीति में खींचना लगभग असम्भव होता। गांधीजी जनता की नब्ज को पहचानते थे और भारतीय राजनीतिक परिदृश्य को भांपने में चतुर थे। मुस्लिम जनता को आकर्षित करने और उसे ब्रिटिश-विरोधी आन्दोलन में शामिल करने के लिए गांधी ने खिलाफत मुद्दे को तुरन्त पकड़ लिया। खिलाफत आन्दोलन के कारण मौलाना आजाद, अली भाई व अन्य कई मुस्लिम नेता और उलेमा गांधी जी से जुड़े।

धर्म की, सामान्यतः भारतीय राजनीति में और विशेषतः मुस्लिम राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। कुछ राजनीतिक संघर्षों में धर्म के प्रभाव को जानने के लिए मैक्सी रोडिसन को उद्धृत करना उचित होगा। उन्होंने कहा, ''ईसाई धर्म की तरह इस्लाम की धार्मिक शिक्षाएं समाजवादी कार्यक्रमों द्वारा दिखाए गए रास्ते के अनुसार असमानता के खिलाफ संघर्ष के लिए प्रेरणा दे सकती हैं। इस आधार पर थोड़े से ईसाइयों को हम संघर्ष में भाग लेते हुए देख चुके हैं और पालमिरो टॉग्लियाती जैसे व्यक्ति ने महसूस किया कि न्याय के लिए संघर्ष करने के लिए कुछ लोगों को धार्मिक विश्वास द्वारा प्रेरित किया जा सकता है। उन लोगों के साथ जो धर्मनिरपेक्ष विचारधारा से प्रेरणा प्राप्त करते हैं इस तरह की तुलना अपने आप दिमाग में आती है, क्योंकि जैसा कि कुछ कल्पना करते हैं कि मुस्लिम संस्कृति दुनिया से अलग तरह की नहीं है।''[16]

स्वाभाविक है कि सामाजिक न्याय या राजनीतिक-मुक्ति के किसी संघर्ष में धर्म की भूमिका को नकारना नहीं चाहिए। धर्मनिरपेक्षता पाश्चात्य विचारधारा है, जो शायद भारतीय सन्दर्भों में इतनी सार्थक न होती। आजादी के 48 साल बाद भी धर्म एक बड़ी शक्ति है। बीसवीं शती के आरम्भ के बारे में सोचिए जबकि धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया बहुत धीमी थी और मध्यवर्ग बहुत ही संकुचित था। मेरे विचार से गांधी जी ने साम्राज्यवाद विरोधी-संघर्ष के लिए धर्म का सकारात्मक प्रयोग ठीक ही किया। और फिर, एक राजनीतिक नेता तात्कालिक स्थिति से जुड़ा होता है और उसे तात्कालिक सन्दर्भों में ही निर्णय लेने होते हैं और समय की जरूरत उसे विशिष्ट निर्णय लेने के लिए तैयार करती है। खिलाफत-आन्दोलन में ब्रिटिश-विरोध की बेहद सम्भावना थी। गांधी जैसा नेता उसे कैसे अनदेखा कर सकता था? गांधी जी स्वयं धार्मिक व्यक्ति थे और वे मुसलमानों की गहरी धार्मिक भावनाओं को जानते थे। खिलाफत-आंदोलन के कारण ही लाखों मुसलमानों ने दिलोजान से साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष में भाग लिया। सिर्फ यही नहीं, तमाम उलेमाओं ने घोषणा की थी कि ब्रिटेन के अधीन भारत 'दारूल-ए-हरब' है और मुसलमान का कर्तव्य है कि अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने के लिए जेहाद छेड़ दें। कई मुसलमान नेता जैसे उबैदुल्ला सिन्धी अफगानिस्तान चले गए और संघर्ष जारी रखने के लिए अस्थायी सरकार बनाई।

खिलाफत-आन्दोलन ने मौलाना अबुल कलाम आजाद जैसे बड़े नेता पैदा किए, यद्यपि बाद में खिलाफत-आन्दोलन के बारे में उनके विचारों में बहुत अधिक बदलाव आया, लेकिन यह बाद का घटनाक्रम था। मौलाना आजाद ने गहरी धार्मिक आस्था के कारण खिलाफत आन्दोलन की वकालत की। यह सच है कि मौलाना आजाद स्वतन्त्रता-आन्दोलन में खिलाफत-आन्दोलन के माध्यम से नहीं आए, असल में वे 1905 में ही हिन्दू-क्रांतिकारियों से जुड़ गए थे और अरविन्द घोष के साथी श्याम सुन्दर चक्रवर्ती के माध्यम से उनके एक समूह में शामिल होने का दावा किया था।[17] लेकिन खिलाफत आन्दोलन ने देश की स्वतन्त्रता के लिए उनकी निष्ठा को निश्चित रूप से बढ़ाया। इसके अतिरिक्त देवबन्दी उलेमाओं ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष में कांग्रेस की न केवल मदद की, ब्ल्कि जमाएत-उल-उलेमा-ए-हिन्द नाम का अपना संगठन भी बनाया, जो कांग्रेस के बहुत करीब था। जैसा कि हम बाद में देखेंगे, जमायत ने देश-विभाजन का डटकर विरोध किया। खिलाफत आन्दोलन के दौरान उलेमाओं ने स्वतन्त्रता-आंदोलन में सीधे भाग लिया।

कुछ विद्वान ऐसा मानते हैं कि उलेमाओं ने शक्ति का स्वाद चखा और राजनीति में उनका प्रवेश स्वास्थ्यकर नहीं था, उन्होंने राजनीति को धर्म से जोड़

दिया और धार्मिक कानूनों में बदलाव का विरोध किया। इलाहाबाद के दैनिक 'द इण्डिपेण्डेट' ने 3 जून 1920 के अंक में चेताया, ''कहीं खिलाफत आन्दोलन की बागडोर पूरी तरह से आध्यात्मिक और धर्मवेत्ताओं के हाथ में न चली जाए।'' आधुनिक काल के महत्त्वपूर्ण इतिहासकार मुशीरुल हसन ने भी महसूस किया, ''इस सच्चाई में कोई संदेह नहीं कि मुस्लिम पुजारियों को शामिल करना खतरों से भरा था क्योंकि इन्होंने धार्मिक पक्ष को उठाया और खिलाफत-आन्दोलन के उपनिवेशवाद-विरोधी आयाम को कमजोर किया।'' लेकिन वे भी मानते हैं, ''आन्दोलन की सफलता के लिए उनकी भूमिका मुख्य थी, इस वास्तविकता के कारण पाश्चात्य शिक्षा-प्राप्त मुसलमानों और गांधी जी दोनों ने उलेमाओं के राजनीति से जुड़ाव के स्पष्ट खतरों की चेतावनी को नजरन्दाज करके भी उन्हें राजनीति से जोड़ा।''[18] यहां तक कि पाकिस्तानी विद्वानों ने भी उलेमाओं को खिलाफत राजनीति में जोड़ने पर विपरीत टिप्पणी की।[19] हसन ने रेखांकित किया, ''1921 के आरम्भ तक उलेमा बोझ साबित हो रहे थे और उनके गठबन्धन के पास इसके सारे संकेत थे। अप्रैल 1921 में, मेरठ में अखिल भारतीय खिलाफत कांफ्रेंस में कुछ उलेमाओं ने खिलाफत आन्दोलन में हिन्दुओं के शामिल होने को लेकर आपत्ति करके तथा शरीयत के अनुसार इसका क्षेत्र परिभाषित करने की मांग करके इसका स्पष्ट संकेत दिया। इसके बाद अब्दुल बरी ने गम्भीर चेतावनी दी कि मुसलमान आन्दोलन को छोड़ने और अपनी समस्याओं को हिंसक तरीके से दूर करने के लिए तैयार थे। उलेमाओं ने महात्मा गांधी की उदार और सतर्कतापूर्ण नीति और खिलाफत आन्दोलन के लिए सीमित कदम उठाए जाने के प्रति असन्तोष प्रकट किया। मई 1921 में कुछ उलेमाओं ने प्रयास बन्द कर दिए और बिहार व पश्चिमी सीमान्त प्रदेशों में 'दारुल कला' अदालतों की स्थापना की और ग्रामीण क्षेत्रों में अंग्रेजी शासन के खिलाफ 'जेहाद' का नारा दिया।''[20]

यद्यपि खिलाफत आन्दोलन में उलेमाओं की भूमिका के बारे में मुशीरुल हसन की आलोचना काफी हद तक सच है, लेकिन यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हर मानव-समूह में नरम से उग्र की ओर अलग-अलग रुझान मिलते हैं। कुछ उलेमाओं ने गांधी को अतिरिक्त सावधान और नरमपन्थी समझकर अधीरता दिखाई, तो दूसरों ने गांधी की विवशताओं को समझा। उन्हें पूरे देश के लोगों को अपने साथ लेकर चलना था। खिलाफत संघर्ष पर हिन्दू भी एकमत नहीं थे। कुछ बिल्कुल शान्त रहे, तो कुछ ने विरोध भी किया। वास्तविकता तो यह थी कि उलेमाओं के बीच भी सत्ता-संघर्ष था और कुछ उलेमा उग्र मुद्रा अख्तियार करके दूसरों से पहलकदमी छीनना चाहते थे। भारत जैसे विशाल देश में विभिन्न समूहों और

विभिन्न विचारों में सत्ता संघर्ष का होना स्वाभाविक ही था। इसी कारण साम्राज्यवाद-विरोधी आन्दोलन में धर्म की भूमिका को पूर्णतः नहीं नकारा जा सकता, विशेषकर तब जबकि भारत के लोगों को धर्मनिरपेक्ष मुद्दे इतना प्रेरित न कर रहे हों जितना धार्मिक मुद्दे। खिलाफत आन्दोलन के प्रति आम मुसलमानों के उत्साह ने सभी सीमाओं का अतिक्रमण किया। यहाँ अखिल भारतीय खिलाफत कांफ्रेंस, बम्बई की घटना का जिक्र करना उचित ही होगा। जब मौलवी गुलाम मुहम्मद ने, मौलवियों व अन्य के खिलाफ दर्ज मुकदमों के बारे में प्रस्ताव पेश किया और 200 रुपये का योगदान दिया, तो दूसरों ने प्रस्ताव का समर्थन किया और अपना योगदान देने की घोषणा की। तभी बड़े उत्तेजनापूर्ण माहौल के बीच हैदराबाद का एक फकीर अयूब आगे आया और उसने कहा कि वह भी कुछ देना चाहता है, लेकिन उसके पास पैसा नहीं है। उसने अपने को एक दास के रूप में बेचने को प्रस्तुत किया। उसने कहा कि वह अपने खरीदार की वफादारी से सेवा करेगा बशर्ते उसका क्रय मूल्य इस निधि में डाल दिया जाए। एक मानव-प्रेमी ने उसकी ओर से बीस रुपए जमा करवा कर उसे दासता से बचाया।[21]

खिलाफत आन्दोलन ने हकीम अजमल खान और डॉ० अंसारी जैसे शान्त व नरमपन्थी नेता भी पैदा किए। स्वतन्त्रता आन्दोलन में उनकी भूमिका किसी से रत्तीभर भी कम नहीं है। वे इधर केवल धार्मिक भावनाओं के कारण ही नहीं झुके थे। यहां हम सीमान्त गांधी के नाम से प्रसिद्ध खान अब्दुल गफ्फार खान का जिक्र करना चाहेंगे। खान साहब ने हिंसक पठानों को अहिंसक खुदाई खिदमतगार में बदलने का चमत्कार कर दिखाया। जो खुदाई खिदमतगार बनने का इच्छुक था, वह विधिवत शपथ लेकर घोषणा करता था, ''मैं खुदाई खिदमतगार हूँ, क्योंकि खुदा को किसी सेवा की जरूरत नहीं है, इसलिए मैं उसके जीवों की निस्वार्थ भाव से सेवा करके उसकी सेवा करूंगा। मैं कभी भी हिंसा नहीं करूंगा, मैं किसी तरह का प्रतिकार या बदला नहीं लूंगा, अपने प्रति निर्दयी व अत्याचारी को भी मैं क्षमा कर दूंगा। मैं किसी प्रकार के षडयन्त्र, पारिवारिक कलह और वैर में शामिल नहीं हूंगा, और सभी पख्तूनों को मैं अपना भाई और साथी समझूंगा। मैं बुरे रीति-रिवाज व व्यवहार को त्याग दूंगा। मैं सादा जीवन जिऊँगा, अच्छे कार्य करूंगा और बुरे कार्यों से दूर रहूंगा। मैं अच्छा चरित्र निर्माण करूंगा और अच्छी आदतें डालूंगा। मैं निरर्थक जीवन नहीं जिऊंगा। मैं सेवा के बदले में इनाम की उम्मीद नहीं करूंगा। मैं निर्भय बनूंगा और हर तरह के त्याग के लिए तैयार रहूंगा।''[22]

पठानों में अनुशासनात्मक, शान्तिपूर्ण और अहिंसक शक्ति तैयार करना वास्तव में चमत्कार था। खुदाई खिदमतगार सिर्फ अहिंसक नहीं रहे, बल्कि देश की

स्वतन्त्रता के लिए बड़ी संख्या में अंग्रेजी जेलों में भी गए। ये मुस्लिम साम्प्रदायिक राजनीति के समर्थक नहीं थे, बल्कि उन्होंने अपनी पूरी शक्ति से देश के विभाजन का विरोध किया।

अब्दुल गफ्फार खान पख्तूनों से बात करने गांव-गांव गए। उनके संगियों ने देखा कि उनकी सफेद कमीजें जल्दी ही मैली हो जाती हैं। उन्होंने इन्हें रंगने का निर्णय लिया। उनमें से एक चमड़ा रंगने के कारखाने में गया और उसने अपनी कमीज, पायजामा और पगड़ी को पशुओं का चमड़ा रंगने के लिए बनाए गए घोल में डुबो दिया। उनका रंग गहरा लाल हो गया। दूसरों ने भी ऐसा ही किया। इस रंग ने सबका ध्यान आकर्षित किया। लाल कपड़े वालों को देखने के लिए लोग खेतों में अपना काम छोड़-छोड़ कर आए। वे इन्हें देखकर वशीभूत हो गए। अब्दुल गफ्फार खान ने खुदाई खिदमतगारों के लिए लाल रंग चुना। इसीलिए इन्हें लाल कुर्ती भी समझा जाता है। आजादी उनका मंतव्य था और सेवा उनकी प्रेरणा। यात्रा करते हुए वे गाते थे—

हम ईश्वर की सेना,
मौत और धन से विचलित हुए बिना,
हम और हमारा नेता बढ़ते जा रहे,
मरने को तैयार।
हम कहते हैं सेवा और प्यार
अपने लोगों और लक्ष्य को,
स्वतन्त्रता हमारा लक्ष्य है
हमारा जीवन कीमत है जो हम अदा करते हैं।[23]

खान अब्दुल गफ्फार खान ने अपने साथियों को अहिंसक रहने और गांधी के तरीके का सख्ती से पालन करने के लिए प्रेरित किया। जैसा कि सभी जानते हैं कि खान साहब ने विभाजन का पूर्णत: विरोध किया। उन्होंने हमेशा राष्ट्रवाद में विश्वास किया और अपने राष्ट्रवादी निश्चयों से वे कभी नहीं डिगे। वे सीमान्त प्रान्त के रहने वाले थे जहां धार्मिक और जातीय पूर्वाग्रह बहुत मजबूत थे (आज भी हैं) लेकिन वे खुले विचारों और उदार दृष्टिकोण के थे। एक घटना से उनकी उदार मानसिकता की व्याख्या की जा सकती है। 2 अक्टूबर 1936 को महात्मा गांधी अपना 67वां जन्मदिन मनाकर 'भारत माता' के मन्दिर के उद्घाटन समारोह में भाग लेने बनारस गए। वहां पत्थर पर भारत का मानचित्र उत्कीर्ण किया गया था। भगवानदास ने मेहमानों का स्वागत किया और इस पर जोर दिया कि सभी धर्मों के मूल सिद्धान्त

समान हैं—प्रेम, शान्ति और एकता को बढ़ावा—गांधीजी ने वेद का श्लोक उच्चरित किया, "हे धरती माता, विष्णु की पत्नी, समुद्र जिसके वस्त्र हैं, पहाड़ जिसकी छाती है, मैं तुझे नमन करता हूं। मैं तुझे अपने पैरों से छू रहा हूं इसके लिए मुझे क्षमा करना।" अब्दुल गफ्फार खान ने इस समारोह में उपस्थिति पर आनन्द व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि पुराने जमाने में मस्जिदें इसलिए बनाई गई थीं ताकि सभी धर्मों के लोग वहां जाकर प्रार्थना कर सकें। उन्होंने कहा कि महात्मा गांधी ने जिस मन्दिर का अभी उद्घाटन किया है वह पूजा व प्रार्थना के साझे-स्थल के उच्च उद्देश्य को पूरा करेगा।[24] खान साहब का धार्मिक मान्यताओं के बारे में दृष्टिकोण संकीर्ण नहीं था और उन्होंने साझे पूजा-स्थल का उत्साहपूर्वक स्वागत किया। यदि हिन्दू और मुसलमानों में ऐसा रवैया रहता तो हमारा देश साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक हिंसा के आतंक से बच सकता था। 26 जनवरी 1938 को बन्नू में उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त की सभा में ली गई शपथ से अहिंसा के प्रति उनकी प्रतिबद्धता स्पष्ट है। उन्होंने नेहरू व अन्य लोगों को भी शपथ दिलाई, "हम स्वीकार करते हैं कि हिंसा स्वतन्त्रता प्राप्ति का सबसे कारगर तरीका नहीं है। भारत ने शान्तिपूर्ण व वैध तरीकों से शान्ति व आत्मनिर्भरता प्राप्त की है और स्वराज प्राप्ति के लिए लम्बा रास्ता तय किया है। इन तरीकों को अपना कर ही हमारा देश स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा।" शपथ में आगे है, "हम स्वतन्त्र भारत के लिए शपथ लेते हैं और पूर्ण स्वराज प्राप्ति तक अहिंसक तरीके से स्वतन्त्रता संघर्ष चलाने की प्रतिज्ञा करते हैं।" नेहरू के मन में उनके लिए बहुत सम्मान था। उसी सभा में 20,000 से अधिक लोगों को सम्बोधित करते हुए नेहरू ने कहा, "प्रान्त ने एक महान इन्सान पैदा किया है जिस पर पूरे भारत को नाज है। सारे माहौल को बदलकर उसने सीमान्त पर बसे लोगों को दलदल से निकाला है। इन्होंने खुदाई खिदमतगारों की बड़ी सेना खड़ी की और एक लड़ाकू जाति को अहिंसक स्वतन्त्रता आन्दोलन के लिए संगठित किया। यह चमत्कार है जो उन्होंने किया है। अहिंसा का हथियार शक्तिशाली हथियार है। बहादुर और साहसी ही इसे अपना सकते हैं। हमने बहादुरी से अंग्रेजी सत्ता को चुनौती दी है। इसने भारत की समाप्त हो रही व शिथिल पड़ी चेतना को जीवनी शक्ति दी है। केवल शक्ति ही शक्ति का सामना कर सकती है। हवाई बमों का मुकाबला केवल हवाई-बम ही कर सकते हैं, तीर और धनुष नहीं और यहां तक कि बन्दूक भी नहीं, ये अब अनुपयोगी और पुराने पड़ चुके हैं। इसलिए भारत ने शक्तिशाली शत्रु से मुकाबला करने के लिए अहिंसा के इस नए हथियार को ईजाद किया है और अंग्रेजी साम्राज्य की नींव हिला दी है।"[25] खान साहब दृढ़निश्चयी थे, उनको अहिंसा, शान्ति और साझे राष्ट्रवाद से कोई नहीं

डिगा सकता था।

यह रोचक तथ्य है कि राष्ट्रवाद और हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रति खुदाई खिदमतगारों के उत्साह में 1946 के अन्त तक भी कोई कमी नहीं आई थी। 21 अक्टूबर 1946 को 25 हजार लोगों की विशाल सभा आयोजित हुई जिसमें विभिन्न भागों में रहने वाले लोग और सरदार के पास रहने वाले आजाद मोहम्मद जनजाति के नेता नेहरू का स्वागत करने आए। खुदाई खिदमतगार की ओर से 'केंद्रीय सरकार के उप-राष्ट्रपति' ने नेहरू के स्वागत सम्भाषण में कहा :

''सम्माननीय नेता—आज हम पख्तून खुदाई खिदमतगार के माध्यम से आपका हार्दिक स्वागत करते हैं। हे बहादुर सेनापति, हम सब देश की आजादी के लिए आपकी मेहनत और त्याग की प्रशंसा करते हैं और हम समझते हैं कि लोगों की राजनीतिक तरक्की और अंग्रेजों से सत्ता छीनने में आपका महान योगदान है। पख्तूनं जानते हैं कि आप हिन्दुओं, मुसलमानों और देश के अन्य निवासियों के बीच कोई भेदभाव नहीं करते। दु:खी मुसलमान नागरिकों की ओर से कश्मीर के हिन्दू राजा के साथ आपका व्यवहार इस बात का सबूत है कि आपके दिमाग में साम्प्रदायिकता के लिए कोई जगह नहीं है और यही कारण है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों आपका आदर करते हैं।''[26]

जब साम्प्रदायिक उन्माद पूरे चरम पर था उस समय में दिया गया यह स्तुति पत्र पख्तून और उनके नेता का हिन्दू-मुस्लिम एकता पर आधारित साझे राष्ट्रवाद का समर्थन करने का स्पष्ट प्रमाण था। इससे स्पष्ट होता है कि पाकिस्तान की मांग पर सभी मुसलमान एकमत नहीं थे, जैसा कि आम तौर पर माना जाता है।

खान अब्दुल गफ्फार खान के अलावा काफी मुसलमान नेता और बुद्धिजीवी देश-विभाजन के विचार के पूर्णत: विरुद्ध थे। जैसा कि पहले बताया है कि जमायत-अल उलेमा-ए-हिन्द खिलाफत के समय से ही कांग्रेस का सहयोगी बना और पूरे स्वतन्त्रता-आन्दोलन में उसका समर्थक रहा। वास्तव में मुस्लिम लीग को भी मुसलमान धर्मवेत्ताओं का समर्थन नहीं मिला। दूसरी ओर कांग्रेस की तरफ लगभग सभी भारतीय मुस्लिम धर्मवेत्ता थे। बाद में मुस्लिम लीग केवल एक महत्त्वपूर्ण धर्मवेत्ता—मौलाना शबीर अहमद उस्मानी के कारण शेखी बघारती थी, जो कि जमायत से सांगठनिक सवाल पर अलग हो गए थे। धर्मवेत्ताओं के संगठन में प्रमुख धर्मवेत्ता मौलाना महमुदुल हसन, मौलाना हसन अहमद मदनी, मौलाना हिफजूर रहमान और अन्य थे।

मौलाना महमुदुल हसन स्वतन्त्रता-आन्दोलन के पक्के समर्थक थे और मौका मिलते ही अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालना चाहते थे। जमायत-ए-उल-

उलेमा-ए-हिन्द के अक्टूबर, 1920 के दूसरे वार्षिक अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में मौलाना ने जोर देकर कहा कि अंग्रेज, इस्लाम और मुसलमानों के सबसे बड़े शत्रु हैं, उनके साथ सहयोग न करना हर मुसलमान का धार्मिक कर्तव्य है। उन्होंने कहा कि 'इस्तिखलास-ए-वतन' (देश की आजादी) के लिए लोगों से मदद मांगना उचित है, लेकिन इससे धार्मिक अधिकार प्रभावित नहीं होने चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ने के लिए जिनके पास तोप, बन्दूक, हवाई जहाज आदि नहीं हैं तो उनको धरने-प्रदर्शन, राष्ट्रीय एकता (कौमी इत्तिहाद) और अंग्रेजों से मांगों पर एकमत होकर कार्रवाई जैसे हथियार अपनाने चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि अल्लाह का शुक्र करना चाहिए कि मुसलमानों को उसने इस पवित्र काम के लिए (तुर्की में खिलाफत) देशवासियों से मदद दिलवाई। उन्होंने कहा कि वे हिन्दू-मुस्लिम एकता को सबसे जरूरी और कारगर समझते हैं और एकता के लिए कोशिश करने वालों का बहुत आदर करते हैं, क्योंकि इसके बिना भारत की आजादी हासिल करना असम्भव होगा...यदि भारत की आबादी के ये दो भाग और सिख भी एकता और शान्ति से रहें तो अभी तक ऐसी कोई चौथी शक्ति इतनी ताकतवर नहीं है कि अपने क्रूर तरीकों से इनको दबा या हरा सके। उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक-दूसरे के प्रति दुराग्रह न रखने को चेताया। एक हिन्दू को मुसलमान के बर्तन से पानी पीने को मना नहीं करना चाहिए और मुसलमान को हिन्दू के शव को कन्धा देने से इन्कार नहीं करना चाहिए। यह हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए सामे-कातिल (मारने वाला जहर) है। ये काफी प्रेरक विचार हैं।

उलेमाओं में एक और बड़ा नाम अन्तर्राष्ट्रीय इस्लामिक पाठशाला के दारुल ऊलम, देवबन्द के शेख-उल-जामिया यानि उपकुलपति मौलाना हुसैन अहमद मदनी का है, जो मौलाना महमुदुल हसन के उत्तराधिकारी थे। मौलाना हुसैन अहमद भी सांझे राष्ट्रवाद (मुताहिद कौमियत) की अवधारणा से प्रतिबद्ध थे, वे इसे इस्लाम की शिक्षा के विपरीत नहीं समझते थे। वास्तव में जमायत-अल-उलेमा-ए-हिन्द का मानना था कि पवित्र पैगम्बर ने भी यहूदी, ईसाइयों और मदीना के पेगनों से समझौता (मुआहीदाह) किया था। जब वे मक्का से स्थानान्तरण के बाद उस शहर में गए तो विभिन्न धार्मिक समुदायों से परस्पर शान्ति और सद्भाव से रहने के लिए समझौता किया। इस मुआहीदाह के अनुसार ही एक-दूसरे की धार्मिक स्वतन्त्रता का आदर हुआ।

दिसम्बर, 1937 में जामा-मस्जिद, दिल्ली के बाहर मौलाना हुसैन अहमद मदनी के भाषण के बाद प्रसिद्ध उर्दू शायर इकबाल ने उनको राष्ट्रीयता के सवाल पर

चुनौती दी। इस भाषण में उन्होंने कहा था कि आजकल कौमें वतन (भौगोलिक सीमाओं) की बुनियाद पर बनती हैं, न कि मजहब पर। यह वह समय था जब पाकिस्तान-आन्दोलन जोर पकड़ता जा रहा था और इस आन्दोलन का आधार धार्मिक राष्ट्रवाद था। विचारधारात्मक दृष्टि से इकबाल राष्ट्रवाद का विरोध कर चुके थे। 1930 में इलाहाबाद में मुस्लिम लीग के अध्यक्षीय भाषण में इस विषय पर उन्होंने बोला था कि मुसलमान चाहे किसी भी देश से सम्बन्ध रखता हो, वह इस्लामिक राष्ट्र का सदस्य है। मौलाना की साझे राष्ट्रवाद की अवधारणा से इकबाल बहुत नाराज हुए। मुस्लिम लीग समर्थक उर्दू अखबारों ने इस विवाद को हवा दी। इकबाल ने भी फारसी के कुछ पद संकलित किए जो तमाम अखबारों में प्रकाशित हुए। इन पदों में उसने कहा, "गैर-अरब दुनिया अभी भी धर्म के रहस्यों को नहीं जानती, नहीं तो देवबन्द से हुसैन अहमद के यह अजीब वक्तव्य क्या हैं। धर्म-उपदेशक की गद्दी से कहा कि मिलात (इस्लामिक समुदाय) राष्ट्र (वतन) है। मुहम्मद अरबी (इस्लामिक पैगम्बर) के रुतबे से वे कितने अनभिज्ञ हैं। धर्म की मूर्ति मुस्तफा तक (पैगम्बर) पहुंचो। यदि वहां तक नहीं पहुंचते तो यह सब बू लहावी है (यानि अबू लहान, पैगम्बर का दुश्मन)"।[28]

उर्दू के महान शायर इकबाल के इन पदों ने एक ओर 'वतनीयत' (राष्ट्रवाद) को खारिज किया तो दूसरी ओर राष्ट्रवाद की अवधारणा देने के लिए मौलाना हुसैन अहमद मदनी को लताड़ा। इन पदों ने गहरा विवाद पैदा किया। मौलाना के विरुद्ध सम्पादकीयों, बयानों और लेखों की बाढ़-सी आ गई। मौलाना के शिष्य तलत ने उन्हें अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने इस मामले में तलत को विस्तृत पत्र लिखकर बताया कि लीग के कार्यकर्ताओं का उनकी सभा (राजनीतिक) में विघ्न डालने का इरादा था। भारत की आन्तरिक स्थितियों के सन्दर्भ में उन्होंने कहा कि आधुनिक समय में राष्ट्र, भौगोलिक सीमाओं पर आधारित है नस्ल या धर्म पर नहीं। जो इंग्लैण्ड में रहते हैं, चाहे वे यहूदी, ईसाई, प्रोटेस्टेंट या कैथोलिक कोई भी हों, वे एक राष्ट्र हैं। यही बात अमेरिका, जापान, फ्रांस आदि पर भी लागू होती है। कुछ ने सभा में विघ्न डालना शुरू कर दिया। अगले दिन अल-अमन जैसे अखबारों ने समाचार छाप दिया कि मौलाना अहमद ने कहा कि राष्ट्रीयता देश से तय होती है, धर्म से नहीं। उन्होंने तलत को लिखा, "मेरे भाषण का सन्दर्भ छोड़ दिया गया और मेरे विचारों को जानबूझकर तोड़ा-मरोड़ा गया।" मौलाना ने कहा कि उनका यह आशय बिल्कुल नहीं था कि धर्म और धार्मिक समुदाय (मिलात) भौगोलिक सीमाओं पर निर्भर करती हैं। मौलाना के अनुसार, यहां तक कि इकबाल जैसा व्यक्ति भी 'कौम' और 'मिलात' शब्दों में अन्तर नहीं कर सका, यद्यपि दोनों

शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थ हैं। मिलात का अर्थ है शरीयत और दीन (धर्म) और कौम का अर्थ है स्त्री-पुरुषों का समुदाय जो एक राज्य में रहता है। तब वे इस कथन पर पहुंचे कि हिन्दुस्तानी जनता का अर्थ है जो भारत में रहते हैं चाहे वह गोरा या काला है, बंग्ला या उर्दू बोलता है, हिन्दू या मुसलमान है, पारसी या सिख है, क्योंकि हिन्दुस्तानी एक कौम है।

मौलाना आगे स्पष्ट करते हैं कि इस्लाम नस्ल या भाषायी या भौगोलिक भेदभाव में विश्वास नहीं करता, लेकिन इसका यह अर्थ कतई नहीं है कि वह राष्ट्रीयताओं पर आधारित विशिष्टताओं को कमतर करके देखता है। मौलाना हुसैन का मत है कि शरीयत के अनुसार ऐसे कोई स्पष्ट दिशा-निर्देश नहीं है जो विभिन्न राष्ट्रों पर कौम की अवधारणा के खिलाफ जाते हों। इसके बाद गरीबी और पिछड़ेपन का सन्दर्भ देकर उन्होंने कहा कि धार्मिक भेदभाव व अन्य मतभेदों को भुलाकर बुराइयों के खिलाफ सभी भारतीयों की एकता के अलावा कोई रास्ता नहीं है और इस एकता का आधार सिर्फ भौगोलिक सीमाएं हो सकती हैं। उन्होंने कहा कि भौगोलिक राष्ट्रवाद ही एक रास्ता है। सभी धर्मों, जातियों और भाषायी वर्गों पर आधारित संयुक्त राष्ट्रवाद ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का मकसद था।

रोचक तथ्य है कि मौलाना ने सर सैयद तक की नीतियों की भी आलोचना की और बाद में मुस्लिम लीग की भी। उन्होंने कहा कि सर सैयद ने मुसलमानों को डरपोक और अंग्रेजों का वफादार बना दिया। उनका (सर सैयद) संगठन कांग्रेस विरोधी था। वह लिखते हैं कि यह उनकी नीति ही थी जिसकी परिणति शिमला में अंग्रेजी शासकों के संकेत पर मुस्लिम लीग के निर्माण में हुई। उन्होंने कहा कि भारत की जनता में फूट डालने के लिए अंग्रेजों ने 'शुद्धि और संगठन' को प्रोत्साहित किया। मौलाना ने यहां तक कहा कि लीग हमेशा ब्रिटिश शासकों की सहायक रही है और अपने आकाओं की सेवा के लिए लीग नेताओं ने जमायत-अल-उलेमा-ए-हिन्द व मुस्लिम समुदाय के सच्चे सेवकों और गम्भीर कार्यकर्ताओं पर हमले किए।

लेकिन मौलाना मदनी के दूसरे पत्र, जिसमें उन्होंने डॉ० इकबाल को जवाब दिया, का एक पैरा परेशान करता है। वे लिखते हैं, ''मैं कह रहा था कि वर्तमान समय में राष्ट्र वतन (भौगोलिक सीमा) से बनते हैं। यह वर्तमान समय की मानसिकता और दृष्टिकोण पर टिप्पणी है। यहां यह नहीं कहा था कि तुम्हें ऐसा करना चाहिए। यह मन्तव्य नहीं, बल्कि तथ्य है। किसी (अखबार) ने इसकी रिपोर्टिंग सलाह के रूप में नहीं की और किसी ने इसे निर्देश और अभिप्राय होने का संकेत भी नहीं दिया।''[29]

डॉ० इकबाल की मुस्लिम समुदाय में काफी शह थी, उनसे शान्तिपूर्ण

सम्बन्ध बनाए रखने के लिए यह मौलाना हुसैन अहमद मदनी का कूटनीतिक बयान भी हो सकता है, लेकिन वास्तविकता यह थी कि मौलाना कांग्रेस और इसके साझे राष्ट्रवाद के बहुत बड़े समर्थक थे। मुस्लिम लीग के गुण्डों ने उन पर कई बार हमला किया। ऐसे ही एक हमले का जिक्र उनके अनुयायी मौलाना तैयब साहब, जो बाद में देवबन्द पाठशाला के मुखिया बने, के पत्र में मिलता है।[30]

''आपको पत्र लिखते हुए कलेजा मुंह को आता है। मैं अपनी भावनाओं को दबा नहीं सकता। इसका बयान नहीं किया जा सकता कि मुस्लिम लीग के गुण्डों ने मेरे गुरु व शेखउल (उपकुलपति) इस्लाम मौलाना हुसैन अहमद साहब मदनी को किस तरह तंग किया और उन पर जानलेवा हमला किया। यह देखकर मेरा दिल बहुत दुखी हुआ। जिस व्यक्ति ने अपना जीवन इस्लाम के लिए लगा दिया, मुस्लिम लीगी उससे इस कदर अनैतिक, अनादर, पीड़ादायक व दुष्टतापूर्ण तरीके से पेश आए।

''मगरिब की प्रार्थना के बाद वे सैदपुर के लिए रवाना हुए। वहां मुस्लिम लीग के गुण्डों की भीड़ ने उन्हें व उनके साथियों को घेर लिया और उनका रास्ता रोक लिया। बड़ी मुश्किल से वे प्लेटफार्म से बाहर आए। लेकिन लीग के गुण्डों ने उन्हें आगे नहीं जाने दिया। वे काले झण्डे लिए हुए थे और मुर्दाबाद के नारे लगा रहे थे। बहुत से गुण्डों ने शराब पी रखी थी। एक लीगी ने हजरत मदनी के सिर से टोपी उतार दी। उनके साथियों को बहुत मुक्के मारे। गाड़ीवान घायल कर दिया गया। पुलिस को सूचना दी गई, लेकिन उसने किसी तरह की ज़िम्मेवारी लेने से इन्कार कर दिया, और उनका आगे जाना असम्भव हो गया...उन्होंने स्टेशन पर ही रात बिताई और सुबह कटिहार वापस आ गए। वहां जो घटित हुआ वह शर्मनाक था, लीगियों ने (जिनमें गुण्डों से भी अधिक स्कूलों के बच्चे थे) गड्ढे में कीचड़ भर दिया, एक फटे-पुराने जूतों की माला लाए और मधुमक्खियों के एक छत्ते को गन्दे पानी में डुबोया और काले झण्डे लहराते हुए मुर्दाबाद के नारे लगाए।''

कई प्रख्यात उलेमा कांग्रेस के साथ रहे और लीग व उसकी पाकिस्तान की मांग के खिलाफ लड़े। इसलिए यह सोचना गलत होगा कि पाकिस्तान की मांग धार्मिक कारणों से की गई थी। इकबाल और मौलाना मदनी के बीच बहस से स्पष्ट है कि पाकिस्तान की मांग इस्लाम पर आधारित नहीं थी। जमायत-अल-उलेमा-ए-हिन्द के अलावा पंजाब के अहरारों ने भी पाकिस्तान की मांग का जबरदस्त विरोध किया। अहरार पंजाब के स्वतन्त्रता सेनानी थे। ऐतिहासिक शख्सियत अताउल्ला शाह बुखारी ने इसका नेतृत्व किया। चौधरी अफजल हक भी इसके नेता था।

चौ० अफजल हक ने अपने भाषण में मुसलमानों से कहा कि सच्चे मुसलमान

और ईमानदार राष्ट्रवादी हिन्दू में सोचने के ढंग के अलावा कोई अन्तर नहीं है। व्यवहार में दोनों देश की आजादी की मांग कर रहे हैं और एक-दूसरे के अच्छे पड़ोसी हैं। भारत के हितों से विश्वासघात करने वाले को दोनों देश और समुदाय का गद्दार मानते हैं।[31] चौधरी ने मुस्लिम लीग और इसकी भय की राजनीति का पर्दाफाश किया, उन्होंने कहा कि हालांकि मुस्लिम लीग में ईमानदार लोगों की कमी नहीं है, लेकिन एक पार्टी के तौर पर यह मुसलमानों में हिन्दू वर्चस्व का भय पैदा करती है। चूंकि भय का भूत समुदाय को तबाह कर देता है और समुदाय बिना मारे ही मर जाता है, इसलिए यह भय की राजनीति इस्लाम के शत्रुओं के प्रति नहीं, बल्कि खुद इस्लाम के प्रति ही शत्रुता है।...केवल वही मुसलमान दूसरे समुदायों से डरता है जिसमें इस्लाम के सच्चे सिपाही की भावना नहीं है। ऐश्वर्य में पले-पुसे मुस्लिम लीग के नेता इस्लाम जैसे निर्भय धर्म और शूरवीर मुसलमानों का नेतृत्व नहीं कर सकते। समझदार लोग विचार करें कि लीग में धन के आकर्षण के सिवाय क्या है। मुस्लिम लीग त्याग व बलिदान की भावना से कोसों दूर है। इस्लाम में पूंजीवाद का अस्तित्व अवांछनीय है क्योंकि यह (इस्लाम) के समता के सिद्धान्त के विरुद्ध है। कांग्रेस पार्टी में हिन्दू वर्चस्व के कारण अहरार भी कांग्रेस और इसके कुछ नेताओं के आलोचक थे। उन्हें यह धर्मनिरपेक्ष पार्टी से अधिक हिन्दू पार्टी नजर आई। इस कारण काफी मुसलमान कांग्रेस से अलगाव महसूस करते थे। यद्यपि अहरारों ने आजादी के लिए हिन्दुओं से मिलकर संयुक्त संघर्ष को मान्यता दी, लेकिन उन्होंने कांग्रेस पर हिंदुओं के वर्चस्व पर आपत्ति की और मुस्लिम लीग की राजनीति को पूर्णतः नकार दिया। कांग्रेस अपने में—उग्र दक्षिणपन्थ से लेकर उग्र वामपन्थ तक और धर्मनिरपेक्षता से लेकर साम्प्रदायिकता तक—कई धाराएं समेटे हुए थी। उग्र हिन्दू साम्प्रदायिक संगठन हिन्दू महासभा के सदस्य भी कांग्रेस में थे। इन तत्त्वों के वक्तव्य यह प्रभाव छोड़ते थे जैसे कांग्रेस हिन्दू संगठन था। कांग्रेस में ऐसे तत्वों की मौजूदगी से कांग्रेस और उसकी धर्मनिरपेक्षता के खिलाफ मुस्लिम लीग के प्रचार को बल मिलता था।

पुनः रेखांकित करने की जरूरत है कि साम्प्रदायिकता का धार्मिकता से कोई लेना-देना नहीं था। इसमें किसी को सन्देह नहीं था कि स्वतन्त्र भारत में अल्पसंख्यक मुसलमानों को पूरी धार्मिक आजादी होगी। इस सवाल को तभी सुलझा लिया गया था जब उलेमाओं ने अपने को कांग्रेस से जोड़ा। कांग्रेस ने उनको विश्वास दिला दिया था कि मुस्लिम पर्सनल कानून को नहीं बदला जाएगा और मुसलमानों को पूरी धार्मिक स्वतन्त्रता होगी और उलेमाओं ने भी साझे राष्ट्रवाद की आधुनिक अवधारणा को दिलोजान से स्वीकार किया था। उलेमाओं के साथ-साथ कई प्रमुख मुसलमान

भी कांग्रेस को समर्थन दे रहे थे। वे भी धार्मिक अल्पसंख्यकों के प्रति कांग्रेस की नीति पर किसी तरह का सन्देह नहीं करते थे। असल में विवाद धार्मिक आजादी को लेकर नहीं बल्कि सत्ता में हिस्सेदारी को लेकर था। साम्प्रदायिक सवाल मुख्यत: इसी से जुड़ा था, चूंकि सत्ता में हिस्सेदारी के सवाल का आखिर तक कोई सन्तोषजनक हल नहीं निकला और अन्तत: देश का विभाजन हो गया। यहां तक कि जिन्ना के चौदह सूत्री मांग-पत्र, जो उन्होंने 1929 के प्रारम्भ में ही (नेहरू रिपोर्ट विवाद के बाद) तैयार कर लिया था और जो मुस्लिम लीग के लिए महत्त्वपूर्ण बन गया था, में भी मुसलमानों की धार्मिक आजादी के बारे में कुछ विषेष नहीं था। मुख्यतया यह धर्मनिरपेक्ष मांगों से सम्बन्धित था। यह विधान-मण्डलों में मुसलमानों के प्रभावी प्रतिनिधित्व, बाम्बे प्रान्त से सिन्ध का अलगाव, अलग चुनाव क्षेत्र जारी रखने आदि से सम्बन्धित था।[32] यदि कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों पार्टियां इसका सन्तोषजनक हल निकाल लेतीं तो शायद हमारे देश के विभाजन का सवाल ही नहीं उठता।

नेहरू रिपोर्ट इस मामले में मुख्य पड़ाव है। मुसलमानों के एक वर्ग ने मुख्य मांग उठाई कि केंद्रीय विधानमण्डलों में वे एक-तिहाई प्रतिनिधित्व इसलिए चाहते थे ताकि बहुसंख्यक हिन्दू अल्पसंख्यक मुसलमानों के खिलाफ कोई कानून न बना सकें। 20 मार्च 1927 को दिल्ली में जिन्ना की अध्यक्षता में प्रमुख मुस्लिम नेताओं की बैठक हुई। इसमें सर्वसम्मति से निर्णय लिया गया कि यदि निम्नलिखित सुझाव मान लिए जाएं तो मुसलमान अलग निर्वाचन क्षेत्र की मांग छोड़ देंगे— "(1) सिन्ध को बाम्बे प्रान्त से अलग करके एक अलग राज्य बनाया जाए; (2) पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रान्तों और बलूचिस्तान में भारत के अन्य प्रान्तों की तरह सुधार किए जाएं; (3) पंजाब और बंगाल में आबादी के अनुपात में प्रतिनिधित्व दिया जाए; (4) केन्द्रीय विधानमण्डल में एक-तिहाई से उपरोक्त ढंग से गठित किए सभी प्रान्तों में संयुक्त मतदाता सूची के लिए तैयार हैं और बंगाल, पंजाब व उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रान्तों में जहां हिन्दू अल्पसंख्यक हैं, उनको वही रियायतें होंगी जो हिन्दू बहुल प्रान्तों में मुसलमानों को देने के लिए तैयार होंगे।"[33] जिन्ना ने मुस्लिम दृष्टिकोण इन शब्दों में व्यक्त किया, "मुसलमानों को महसूस हो कि वे बहुसंख्यक समुदाय की ओर से किसी भी अत्याचार से सुरक्षित हैं। राष्ट्रीय सरकार के पूर्णत: विकास के संक्रमण काल के दौरान उन्हें महसूस न हो कि कहीं बहुसंख्यक समुदाय अल्पसंख्यकों को दबाने और उनसे निर्दयता का व्यवहार न करने लगे जैसा कि दूसरे कई देशों की बहुसंख्यक जनता की प्रवृत्ति रहती है।"[34]

काफी हद तक यह देश के विभाजन का कारण बना। धर्म या धार्मिक

आजादी नहीं थी बल्कि सत्ता में हिस्सेदारी व आजाद भारत में मुसलमानों का उचित ध्यान रखने की गारण्टी वास्तविक विवाद थी। हालांकि मुस्लिम जनता प्रतिनिधित्व आदि के इन सवालों के लिए चिन्तित नहीं थी और केवल पढ़े-लिखे मुसलमान ही यह गारण्टी चाहते थे। जिन्ना के 14 सूत्रों में गरीब और अनपढ़ मुसलमान जनता के लिए कुछ नहीं था। कोई आश्चर्य की बात नहीं कि जिन्ना जैसे आधुनिक शिक्षा प्राप्त किए हुए मुसलमानों ने ही पाकिस्तान-आन्दोलन का नेतृत्व किया, न कि धार्मिक मामलों के विद्वान मौलाना अहमद मदनी जैसों ने या धार्मिक नेताओं में उच्च स्थान रखने वाले अबुल कलाम आजाद जैसे लोगों ने, बल्कि ये तो पाकिस्तान के विचार के ही विरुद्ध थे।

ध्यान देने योग्य है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का दिल्ली में मुसलमान नेताओं द्वारा तैयार की गई मांगों के प्रति नकारात्मक रुख नहीं था। कांग्रेस कार्यकारिणी ने संयुक्त मतदाता सूची स्वीकार करने के लिए मुस्लिम नेताओं की सराहना की। अखिल भारतीय कमेटी ने 15 मई, 1927 को बम्बई में होने वाले अधिवेशन में प्रस्तुत करने के लिए हिन्दू-मुस्लिम सवाल पर लम्बा प्रस्ताव पारित किया। यह उल्लेखनीय है कि इसने मुसलमानों के समस्त सुझाव मान लिए। अखिल भारतीय केंद्रीय कमेटी ने थोड़ा सुधार करके इस प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया।[35]

दिसम्बर, 1927 के मद्रास अधिवेशन में कांग्रेस ने मुसलमानों को पूरा आश्वासन दे दिया कि उनके जायज हितों की रक्षा की जाएगी...संयुक्त मतदाता सूची में आबादी के आधार पर प्रत्येक प्रान्त व केंद्रीय विधानमण्डल में सीटें आरक्षित की जाएंगी...। सिन्ध, पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त और बलूचिस्तान से सम्बन्धित अन्य मुस्लिम सुझावों को भी इसमें स्वीकार कर लिया गया।[36]

मद्रास अधिवेशन में पारित प्रस्ताव पर बोलते हुए कांग्रेसी नेता गोविन्द वल्लभ पन्त ने प्रस्ताव के बारे में कहा, "सबसे अच्छा सबसे सही इन्तजाम जिसे दोनों समुदायों से जोरदार समर्थन मिला।" उन्होंने यहां तक कहा कि प्रस्ताव पर एम. आर. जयकर और मदन मोहन मालवीय जैसे हिन्दू महासभा के नेताओं की भी पूरी सहमति थी।[37]

हालांकि जल्दो ही हिन्दू और मुसलमान दोनों की ओर से समस्याएं खड़ी हुईं। मुहम्मद शफी के नेतृत्व में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के विरोधी गुट ने अलग मतदाता सूची त्यागने से मना कर दिया और जिन्ना को इस महत्त्वपूर्ण सवाल पर हिन्दुओं से समझौता करने का दोषी करार दिया। हिन्दू महासभा ने भी किसी भी प्रान्त में किसी भी समुदाय के लिए आरक्षण के सिद्धान्त को रद्द कर दिया, इसने

संयुक्त मतदाता सूची मानने के एवज में नए मुस्लिम प्रान्त के गठन का कड़ा विरोध किया। इसने नए राज्य के निर्माण की अपेक्षा मतदाता सूची को छोटी बुराई माना।[38] इस तरह साम्प्रदायिक समस्याएं पैदा करने के लिए दोनों तरफ से साम्प्रदायिक लोग जिम्मेदार थे। जिन्ना के विचार तर्कसंगत थे और वे कहीं भी विभाजन के नजदीक की बात नहीं कर रहे थे। दूसरी ओर उन्होंने मुसलमान नेताओं को संयुक्त मतदाता सूची स्वीकार करने के लिए राजी किया। अपने एक भाषण में समझौते के संकेत दिए। यह साम्प्रदायिक सद्भाव के प्रबल इच्छुक नेता की आवाज प्रतीत होती है—

"हमारी तरक्की के लिए जरूरी है कि हिन्दू-मुस्लिम की समस्या सुलझाई जाए, हमारे जैसे विशाल देश के समस्त समुदाय मैत्री एवं भाईचारे की भावना से रहें। कोई देश जहां भी ऐसी समस्या पैदा हुई है किसी एक समुदाय का प्रभुत्व बनाकर और अल्पसंख्यकों को सुरक्षा की गारण्टी दिए बिना लोकतांत्रिक संविधान और जनतांत्रिक प्रतिनिधिक संस्थाएं स्थापित करने में सफल नहीं हुआ है। अगर वैधानिक प्रावधानों के तहत स्पष्ट व पूर्ण रूप से अल्पसंख्यकों के हितों और अधिकारों की रक्षा न की जाए तो अल्पसंख्यक पूर्वाग्रही हो सकते हैं, कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय अत्याचारी एवं उत्पीड़नकारी बन सकता है और यह भय और भी बढ़ जाता है जब हमारा वास्ता बहुसंख्यक साम्प्रदायिकता से पड़ता है।"[39]

एकता बनाए रखने के लिए तेज बहादुर सप्रू ने केन्द्रीय विधानमंडल में सीटों के आरक्षण की जिन्ना की मांग का समर्थन किया। उन्होंने इस मांग के बारे में कहा, "यह नेहरू रिपोर्ट की विरोधी नहीं है।" उन्होंने अपने प्रतिनिधि साथियों से कहा, "समस्या को सुलझाने के लिए हमें कुशल राजनीतिज्ञ की तरह व्यवहार करना चाहिए और अंकगणितीय आंकड़ों से भ्रमित नहीं होना चाहिए।"[40]

बहस का उत्तर देते हुए आजादी हासिल करने के लिए जिन्ना ने पुनः हिन्दू-मुस्लिम एकता पर जोर दिया। उन्होंने कहा—

"...यदि आप इस प्रश्न को आज नहीं सुलझाते तो हमें इसे कल सुलझाना पड़ेगा, लेकिन इस दौरान हमारे राष्ट्रीय हितों को नुकसान पहुँचेगा। हम सब इस धरती के पुत्र हैं। हमें मिलकर रहना है। हमें मिलकर काम करना है, और अपने मतभेदों को हर हालत में दूर करना है, न कि अधिक बिगाड़ना है। यदि हम एकमत नहीं होते तो कम से कम हम इस बात से सहमत हों कि मत वैभिन्य हो सकता है और हम दोस्तों की तरह विदा हों (सम्मेलन से—अनु०)। मुझ पर विश्वास करो, मैं एक बार फिर दोहराता हूँ कि जब तक हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता नहीं होती, तब तक भारत कोई तरक्की नहीं कर सकता। हमारे समझौते में कोई तर्क, विचार या कोई और अड़चन न आए। हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता देखने से

अधिक खुशी मुझे किसी चीज में नहीं मिलेगी।'' [41]

इस तरह यह सामने आता है कि 1928 तक जिन्ना हिन्दू-मुस्लिम एकता के हामी थे और कांग्रेस के काफी नेता उनके विचारों का अनुमोदन करते थे। नेहरू रिपोर्ट की असफलता की जिम्मेदार हिन्दू-महासभा थी। एसोसियेटिड प्रेस से साक्षात्कार में उन्होंने कहा, ''सम्मेलन में जयकर के भाषण ने नेहरू रिपोर्ट की नियति पर मुहर लगा दी थी।'' [42] एम. सी. छगला ने नेहरू रिपोर्ट पर बातचीत असफल हो जाने पर निम्नवत बयान जारी किया—

''मैं विशेष रूप से रेखांकित करना चाहता हूं कि मुस्लिम लीग ने सम्मेलन में जो प्रतिनिधि भेजे, वे आधुनिक विचारों के मुसलमान थे, जिनमें से अधिकतर ने पहले ही नेहरू रिपोर्ट पर सहमति दे दी थी, और राष्ट्रीय हितों के लिए उनमें से कई अपने ही साथियों से लड़े हैं और संगठन से अलग हो गए हैं...यदि इन प्रतिनिधियों को साम्प्रदायिक करार दिया जाए जो शायद पूरे देश में एक भी राष्ट्रवादी मुसलमान नहीं है। मैं अभी भी आशा करता हूं कि सम्मेलन के समाप्त होने से पहले लीग की मांगें स्वीकार करने का कोई रास्ता जरूर निकल आएगा। जिस प्रकार मुस्लिम लीग ने संघर्ष किया है और शफी गुट को बाहर निकाल दिया है, उसी प्रकार हर प्रावधान में मुसलमानों द्वारा दिए गए सुझावों, सुधारों और सलाहों पर हर बार सम्मेलन छोड़ने की धमकी देने वाली गूंजों और जयकार से भी निबटना चाहिए।'' [43]

हालांकि सम्मेलन इस मुद्दे को सुलझा नहीं सका और इस कारण जिन्ना के रवैये में बदलाव हुआ, अब वे सोचते थे कि मुसलमानों को एक संस्था के रूप में कांग्रेस के प्रति अपने रुख पर पुनर्विचार करना चाहिए। वे इस विचार से सहमत हो गए कि मुसलमानों के बिखराव के कारण ही एक बार उनकी मांग अस्वीकार करके कांग्रेस उन्हें नजरन्दाज कर रही है। इस प्रकार नेहरू रिपोर्ट साम्प्रदायिक सवाल और कांग्रेस के प्रति जिन्ना के रवैये में बदलाव बिन्दु थी। इसके बाद उन्होंने कड़ा रुख अपनाना शुरू किया। तीस के दशक के आरम्भ में लन्दन में दो गोलमेज कांफ्रेंसों में उनका रवैया इसका प्रमाण है। अभी तक पाकिस्तान के विचार का जन्म नहीं हुआ था और जिन्ना साम्प्रदायिक समस्या को विभिन्न प्रान्तों के विधानमण्डल और संसद में मुस्लिम प्रतिनिधित्व के रूप में सुलझाना चाहते थे। गोलमेज कांफ्रेंस सफल नहीं हुई और अन्ततः अंग्रेजों ने 1935 के संविधान में अपनी योजना के तहत मुसलमानों को संसद में एक-तिहाई प्रतिनिधित्व देने की घोषणा की। नेहरू रिपोर्ट की असफलता के बाद के घटनाक्रम से जिन्ना इतने हताश हुए कि वे भारत छोड़कर लन्दन में बस गए और वहां वकालत शुरू कर दी।

जिन्ना के दृष्टिकोण में दूसरा मोड़ 1937 के चुनावों और कांग्रेस के मुस्लिम

लीग के दो मन्त्री लेने से इन्कार करने पर आया। हालांकि दोनों के बीच औपचारिक या अनौपचारिक कोई समझौता नहीं था, लेकिन चुनावों के दौरान दोनों में कोई टकराव भी नहीं था। वास्तव में कई जगह कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने एक-दूसरे के उम्मीदवारों को समर्थन दिया और उम्मीद थी कि कांग्रेस लीग के प्रतिनिधियों को कैबिनेट में शामिल करेगी। 1937 के चुनाव अभियान के जिन्ना के भाषणों में भी हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रति चिन्ता झलकती है। जनवरी, 1937 को नागपुर में अपने भाषण में उन्होंने कहा—

''हिन्दुओं और मुसलमानों को एक साझे मंच पर आना चाहिए। अपने प्रदेश के कल्याण और मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए उन्हें इकट्ठे रहना और इकट्ठे काम करना चाहिए...यह (लीग) स्वतन्त्र और प्रगतिशील आदर्शों के लिए कटिबद्ध है। उसकी नए विधानमण्डल में सर्वोत्तम प्रतिनिधि भेजने की इच्छा है, जो प्रगतिशील समूहों के साथ मिलकर मातृभूमि की स्वतन्त्रता और विकास के लिए काम करें। मुसलमानों व सहयोगी समुदायों को सलाह है कि वे उत्तम चरित्र-निर्माण करें और स्वतन्त्रता के रास्ते में आड़े आने वाले तत्वों को निकाल बाहर करें।''[44]

जिन्ना के इस भाषण से स्पष्ट है कि 1937 तक वे हिन्दू-मुस्लिम एकता और भारतीय मातृभूमि की बात करते थे और मातृभूमि के विकास एवं तरक्की के लिए दोनों समुदायों के मिलकर काम करने की बात करते थे, लेकिन बाद के घटनाक्रम से कांग्रेस और हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रति उनके दृष्टिकोण में मूलभूत बदलाव आया। कुछ लोगों का कहना है कि यदि कांग्रेस उत्तर प्रदेश में मुस्लिम लीग के दो मन्त्रियों को कैबिनेट में शामिल करती तो यह हिन्दू-मुस्लिम एकता के हित में होता। लेकिन कांग्रेस पर ऐसा करने का कोई बन्धन नहीं था। दूसरी ओर रफ़ी अहमद किदवई जैसे राष्ट्रवादी मुसलमान कांग्रेस-मुस्लिम लीग गठबन्धन को निरस्त करने वालों में थे। 28 मार्च, 1937 को बाराबंकी से उन्होंने पंडित नेहरू को लिखा : ''मेरा मानना है कि यदि कांग्रेस कभी मुस्लिम लीग से समझौता या गठबन्धन करने की सोचती है तो वह भारतीय मुसलमानों के प्रति अपने कर्तव्य को नहीं निभा रही होगी...किसी व्यक्ति-विशेष की सुविधा के लिए कांग्रेस सिर्फ उत्तर प्रदेश में अलग पैमाना नहीं अपना सकती है।''[45]

नेहरू मुस्लिम लीग के दो मन्त्रियों को न लेने के लिए राष्ट्रवादी मुसलमानों के दबाव में थे। यह कहना गलत होगा कि कांग्रेस किसी औपचारिक समझौते से पीछे हटी। 21 जुलाई, 1937 को नेहरू द्वारा राजेन्द्र प्रसाद को लिखे पत्र से यह काफी स्पष्ट है। वह लिखते हैं : ''उत्तर प्रदेश के आम चुनावों में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच अधिक विरोध नहीं था...उत्तर प्रदेश में कांग्रेस और लीग में कोई समझौता

नहीं था, लेकिन एक सहमति-सी बन गई थी...कार्यकारिणी की बैठक से कुछ समय पहले उत्तर प्रदेश मुस्लिम लीग के नेता खालिक जामन और नवाब इस्माइल खान ने कांग्रेस से सम्पर्क किया था...स्वाभाविक तौर पर इसका कुछ सम्बन्ध मन्त्रीपद की सम्भावना से था...जब मौलाना अबुल कलाम आजाद वर्धा से लखनऊ पहुंचे तो वे खालिक से मिले, जिसने उन्हें बताया कि—उनको और उत्तर प्रदेश बोर्ड के अध्यक्ष नवाब इस्माइल खान—दो लोगों को मंत्रिमण्डल में शामिल करने के बदले उन्हें खाली चेक (सीटों के बारे में—अनु०) देने के लिए तैयार हैं। मौलाना ने इस स्थिति को सन्देह की नजर से देखा, लेकिन पूरी मुस्लिम लीग का एक संगठन के रूप में अस्तित्व समाप्त होने और उसके कांग्रेस में विलय की सम्भावना ने उनको आकर्षित किया। हम इन व्यक्तियों को लेना नापसन्द करते थे, जो कांग्रेस के दृष्टिकोण से कमजोर थे। हमें आम कांग्रेसियों की प्रतिक्रिया का डर था।''[46]

इस प्रकार इस बहस के दो पहलू थे। मुस्लिम लीग के दो मन्त्रियों को शामिल करने में—दोनों पार्टियों के बीच मधुर सम्बन्ध और हिन्दू-मुस्लिम एकता बढ़ने की सम्भावना थी। लेकिन कांग्रेस को पार्टी में भी इसके प्रभावों को देखना था। इसे अनदेखा नहीं किया जा सकता था।

हालांकि मंत्रिमण्डल में शामिल न किए जाने से कड़ुवाहट बढ़ी और लीग ने जोरशोर से कांग्रेस-विरोधी अभियान छेड़ दिया। लेकिन लीग द्वारा लगाए गए अधिकतर आरोप झूठे थे। मौलाना आजाद ने कहा, ''मुस्लिम लीग का कांग्रेस के विरुद्ध मुख्य प्रचार यह था कि यह केवल नाम से ही राष्ट्रीय है। कांग्रेस को सामान्य तौर पर बदनाम करने से ही लीग सन्तुष्ट नहीं हुई, बल्कि उसने कांग्रेस के मंत्रियों द्वारा अल्पसंख्यकों पर अत्याचार के आरोप भी मढ़े। इसने एक समिति गठित की जिसने मुसलमानों और अन्य अल्पसंख्यकों के प्रति हर तरह के भेदभावपूर्ण व्यवहार के आरोप लगाए। मैं अपनी जानकारी के आधार पर कह सकता हूं कि ये आरोप पूर्णतः बेबुनियाद थे। वायसराय और विभिन्न प्रान्तों के गवर्नरों का भी यही विचार था। इसलिए लीग द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट को संवेदनशील लोगों में कोई मान्यता नहीं मिली।''[47]

अब मुस्लिम लीग का सरोकार लगाए गए आरोपों की सत्यता के प्रति नहीं, बल्कि मुसलमानों में कांग्रेस के खिलाफ भारी प्रचार से था। केवल इसलिए नहीं कि कांग्रेस ने इनको नीचा दिखाया था, बल्कि इसलिए भी कि वह अभी तक अभिजात वर्ग की राजनीति में विश्वास करती थी। चुनाव-परिणामों ने इसकी आंखें खोल दीं। 1937 के चुनावों में इसकी करारी हार हुई, उसने 482 सीटों पर चुनाव लड़ा जिसमें से केवल 109 सीटें ही जीत पाई। इसके साथ ही, मुस्लिम बहुल चार प्रान्तों में से

किसी भी प्रान्त में बहुमत हासिल नहीं कर पाई।[48] ''मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि होने का दावा करने वाली पार्टी के लिए यह करारा झटका था। लीग चुनाव परिणामों से चिन्तित थी और अब मुसलमानों को रिझाना चाहती थी। यह 'हिन्दू''' कांग्रेस का 'मुसलमानों के प्रति भेदभाव' का भूत खड़ा करके किया जा सकता था। जिन्ना एक कुशल कूटनीतिज्ञ था, उसने मुसलमानों में 'हिन्दू' कांग्रेस के प्रति दुर्भावना पैदा करने के लिए हर सम्भव चाल चली। इस दुष्प्रचार ने मुसलमानों को, विशेषकर पढ़े-लिखे मुसलमानों को कांग्रेस से दूर किया।

यहां पुनः इस बात पर जोर देना जरूरी है, जैसा कि 1937 के चुनावों ने भी दर्शा दिया कि मुस्लिम लीग का आम मुसलमानों में कभी लोकप्रिय आधार नहीं रहा। शिक्षित बुद्धिजीवी वर्ग में भी इसकी अधिकतर स्वीकार्यता केवल उर्दू-भाषी राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश और बिहार के अल्पसंख्यक मुसलमानों में और कुछ हद तक बाम्बे प्रान्त में ही थी, जबकि दक्षिण भारत के मुस्लिम अल्पसंख्यक प्रान्तों में इसका कोई आधार नहीं था। जिन्ना को अपने और पार्टी के सीमित व संकीर्ण आधार का अहसास हुआ, इसलिए उन्होंने मुस्लिम जनता का विश्वास जीतने के लिए नए-नए तरीके अपनाने शुरू किये, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। कांग्रेस के पास आर्थिक कार्यक्रम था, जो बहुत क्रांतिकारी तो नहीं था, लेकिन फिर भी उसने भारतीय जनमानस को अपनी ओर आकर्षित किया। लीग के पास ऐसा कोई कार्यक्रम नहीं था। जब उल्लेखनीय उर्दू शायर इकबाल ने जिन्ना को मुसलमान जनता विशेषकर पंजाब से गरीबी दूर करने के लिए आर्थिक कार्यक्रम को प्राथमिकता देने के लिए लिखा तो उनसे पंजाब मुस्लिम लीग की अध्यक्षता छीन ली गई। जिन्ना को मुसलमानों के शक्ति सम्पन्न वर्गों—जागीरदारों, तालुकेदारों और व्यापारियों का समर्थन हासिल था, इन वर्गों के नाराज हो जाने के डर से वे कोई क्रांतिकारी आर्थिक कार्यक्रम बनाने से बचते रहे। मुस्लिम लीग का मुस्लिम-समाज में अत्यधिक सीमित आधार था। गरीब जनता इसकी ओर कभी आकर्षित नहीं हुई। इस तरह जब 23 मार्च, 1940 को लाहौर में पाकिस्तान प्रस्ताव पारित हुआ तो मुसलमानों ने कोई जोश नहीं दिखाया। दूसरी ओर हजारों अंसारी (जुलाहा) मुसलमानों ने दिल्ली में दो-तीन महीने बाद इसके विरुद्ध प्रदर्शन किया।

उस समय सबको वोट का अधिकार नहीं था। 1935 में अंग्रेजों द्वारा लागू किए गए संविधान के अनुसार दस प्रतिशत भारतीय आबादी को भी वोट का अधिकार नहीं प्राप्त हुआ। जिनके पास कुछ शैक्षिक योग्यता थी या कुछ सम्पत्ति थी, केवल वही वोट डाल सकते थे। इस कारण जनभावना का अनुमान नहीं लगाया जा सकता था और सभी महत्त्वपूर्ण निर्णय लोकप्रिय विचार जाने बिना लिए जाते थे।

मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में मुस्लिम लीग की स्थिति और भी खराब थी। आयशा जलाल ने इस पहलू पर प्रकाश डाला है, वह लिखती हैं कि ''पंजाब और बंगाल प्रान्त अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण थे। इन दोनों प्रान्तों में मुसलमान बहुत कम अन्तर से ही बहुसंख्यक थे, इसलिए दूसरे लोगों के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाए रखने की जरूरत के कारण कट्टर साम्प्रदायिक दृष्टिकोण अख्तियार नहीं कर सकते थे। दोनों प्रान्तों के क्षेत्रीय-दृष्टिकोण जिन्ना के अनिश्चित केंद्रीय जनमत को कमजोर करते थे, इसलिए जिन्ना के लिए इन प्रान्तों पर नियन्त्रण रखना मुश्किल हो रहा था, और साथ ही पंजाब के उत्तर-पश्चिम में स्थित नवगठित प्रान्त सिन्ध व पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में समर्थन जुटाने के लिए उससे भी अधिक मुकिश्लों का सामना करना पड़ रहा था। लीग 1937 के चुनावों में सिन्ध और उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रान्त में सम्मानजनक प्रदर्शन भी नहीं कर पाई थी। असल में मुस्लिम बहुल सीमान्त प्रान्त ने अपने को कांग्रेस से जोड़ लिया था। अल्लाबक्श मन्त्रिमण्डल जो सत्ता से अन्दर-बाहर होता रहा, वह शुरू से आखिर तक कांग्रेस के समर्थन पर निर्भर रहा।''[49]

यह कहना तर्कसंगत नहीं होगा कि भारत के सभी मुसलमान पाकिस्तान निर्माण के जिम्मेदार थे। उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे मुस्लिम अल्पसंख्यक राज्यों का पढ़ा-लिखा अभिजात वर्ग तो अपने विशेषाधिकारों के छिनने के डर से पाकिस्तान के प्रति लालायित था, लेकिन मुस्लिम बहुल प्रान्तों का पढ़ा-लिखा अभिजात वर्ग भी इसे लेकर उत्सुक नहीं था। वास्तव में पंजाब में जिन्ना के लिए यह काम आसान नहीं था। यहां विभिन्न धर्मों के सामन्तों के अवसरवादी घटकों के ढीले-ढाले गठबन्धन से बनी यूनियनिस्ट पार्टी का दबदबा था। लीग को मन्त्रिमण्डल से बाहर रखना यूनियनिस्ट पार्टी के हित में था। मई, 1942 में सिकन्दर हयात खान ने कांग्रेस में शामिल होने की सम्भावनाएं तलाशना शुरू कर दिया था, लेकिन इस वर्ष के अन्त में उनकी मृत्यु हो गई। जिन्ना के रास्ते की सबसे बड़ी रुकावट दूर हो गई। मुस्लिम बहुल राज्यों में अपना रास्ता बनाने में जिन्ना को बड़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा था और इन प्रान्तों में हिंदुओं से कोई डर नहीं था, क्योंकि इनमें से कुछ प्रान्तों में हिन्दू गठबन्धन मंत्रिमण्डल का हिस्सा थे। इन राज्यों में मुसलमान राजनीतिज्ञों को मुस्लिम लीग में शामिल करने के लिए जिन्ना को कई तरह के पापड़ बेलने पड़े। ऐसा करने में वह 1945 के बाद ही कामयाब हो पाये, तेजी से बदल रही परिस्थितियों में जिन्ना उनको यह समझाने में सफल हुए कि बेशक उनको प्रान्तीय स्तर पर कोई डर न हो, लेकिन केन्द्रीय स्तर पर केवल वही (जिन्ना) उनको आवश्यक रियायत दिला सकते हैं।

ध्यान देने योग्य है कि 1945 तक सोचा नहीं जा सकता था कि पाकिस्तान एक सच्चाई बन सकता है। पाकिस्तान बनाने का अन्तिम प्रस्ताव 9 अप्रैल, 1946 को पारित हुआ। प्रस्ताव में अब दो के बजाय एक 'स्वतन्त्र प्रभुसत्ता सम्पन्न देश' की मांग की गई। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए हिन्दू और मुसलमान प्रान्तों के लिए दो अलग-अलग संवैधानिक सभाओं की मांग भी। [50]

कैबिनेट मिशन योजना में भारतीय संघ के ढांचे में राज्यों को पूर्ण स्वायत्तता का उचित सुझाव था। इसमें केन्द्र को केवल तीन विषय—रक्षा, संचार और विदेश नीति-सौंपे जाने थे, शेष सभी शक्तियां स्वायत्त राज्यों को दी जानी थीं और इन राज्यों को दस साल बाद संघ से अलग होने की छूट थी। गहन सन्देह का वातावरण था, जुबान की जरा-सी फिसलन भी विनाशकारी साबित हो सकती थी, कैबिनेट मिशन योजना के साथ यही हुआ। जवाहरलाल नेहरू ने कैबिनेट मिशन योजना के बारे में जो कहा वह जिन्ना के लिए बम का धमाका साबित हुआ। मौलाना आजाद ने उन 30 पृष्ठों में से एक में इसका वर्णन किया है, जो प्रतिबन्धित थे, और 1988 में प्रकाशित हुए हैं—

''इतिहास को बदल देने वाली दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं में से एक घटी। 10 जुलाई को जवाहरलाल नेहरू ने बम्बई में प्रेस कांफ्रेंस में विचित्र बयान दिया। प्रेस के कुछ प्रतिनिधियों ने उनसे पूछा कि क्या अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यकारिणी में प्रस्ताव पारित करके कांग्रेस ने अन्तरिम सरकार की बनावट समेत योजना को पूर्णत: स्वीकार कर लिया है।

''जवाहरलाल ने अपने उत्तर में कहा कि कांग्रेस समझौते से प्रभावित हुए बिना संविधान सभा में जाएगी और वह स्थिति के अनुसार निर्णय लेने में स्वतन्त्र है।

''प्रेस के प्रतिनिधियों ने आगे पूछा कि इसका अर्थ है कि कैबिनेट मिशन योजना में बदलाव किया जा सकता है।

''जवाहरलाल नेहरू ने दृढ़ता से जवाब दिया कि कांग्रेस ने सिर्फ संविधान सभा में भाग लेना स्वीकार किया है, कैबिनेट मिशन योजना के सम्बन्ध में वह इसे बदलने या सुधार करने जैसा वह उचित समझे वैसा करने को स्वतन्त्र है।'' [51]

मुस्लिम लीग ने इस योजना को दबाव में स्वीकार किया था। आजाद के अनुसार, ''जवाहरलाल नेहरू का बयान जिन्ना को बम की तरह लगा। उसने तुरन्त बयान जारी किया कि कांग्रेस अध्यक्ष की इस घोषणा से समस्त स्थिति पर पुन: विचार करने की आवश्यकता है।'' मुस्लिम लीग ने योजना को इस आश्वासन पर सहमति दी थी कि कांग्रेस ने इसे स्वीकार कर लिया है। जवाहरलाल नेहरू के

दुर्भाग्यपूर्ण बयान में यह निहित था कि योजना में बहुसंख्यक हिन्दुओं द्वारा बदलाव किया जाएगा और अल्पसंख्यक मुसलमान बहुसंख्यक हिन्दुओं की दया पर होंगे। 27 जुलाई, 1946 को बम्बई में मुस्लिम लीग परिषद की बैठक में जिन्ना ने पाकिस्तान की मांग दोहराई और इसे मुस्लिम लीग के सामने बचा एकमात्र रास्ता बताया।

तीन दिन की बहस के बाद लीग परिषद ने कैबिनेट मिशन योजना को अस्वीकार कर दिया और पाकिस्तान निर्माण के लिए सीधी कार्यवाही करने का फैसला भी किया। इस अहम् फैसले के बाद जो घटित हुआ, उसे हम सब जानते हैं।

नेहरू ने ऐसा बयान क्यों दिया, जिसने भारतीय इतिहास को बदल दिया? पूछे जाने पर इस घटना के 12 साल बाद भी नेहरू कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दे सके। लेकिन उन्होंने जो कहा वह विचारधारात्मक स्तर पर महत्त्वपूर्ण था: ''मैं समझता हूं कि एक ऐसी बलवती भावना थी कि यदि ऐसा संघ बनता है तो एक तो इससे आन्तरिक दबाव खत्म नहीं होते और दूसरे इसके विभिन्न संघटकों को सत्ता-हस्तान्तरण करने से केन्द्र सरकार बहुत कमजोर रह जाती, वह इतनी कमजोर रह जाती कि यह ठीक तरह से काम करने या प्रभावी आर्थिक कदम उठाने में भी सक्षम नहीं होती। यही असली कारण थे जिनके कारण हमें अन्ततः विभाजन स्वीकार करना पड़ा। यह कितने भारी मन से किया गया चयन था, इसकी आप कल्पना कर सकते हैं। अब यह कहना मुश्किल है कि उन परिस्थितियों में और क्या किया जा सकता था।''[52]

जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल दोनों मजबूत केन्द्र के पक्ष में थे। उन्हें कमजोर केन्द्र और अविभाजित भारत या मजबूत केन्द्र और विभाजित भारत में से एक चुनना था, इन्होंने मजबूत केन्द्र और विभाजित भारत को चुना। यह स्पष्ट है कि दो समुदायों के अभिजात वर्गों के बीच साम्प्रदायिक सवाल का सन्तोषजनक हल नहीं निकल पाया। हिन्दू महासभा की भी साम्प्रदायिक माहौल बनाने में भूमिका रही। वह भी इस विचार की थी कि हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र हैं और ये सद्भावना से इकट्ठे नहीं रह सकते। उन्होंने मुस्लिम लीग के 1940 के लाहौर प्रस्ताव से काफी पहले 1937 में इस आशय का प्रस्ताव पारित किया था। महासभा के नेता भाई परमानन्द ने 1938 में लिखा, ''मि० जिन्ना मानते हैं कि इस देश में दो राष्ट्र हैं...यदि जिन्ना ठीक हैं और मैं मानता हूँ कि वे हैं, तो कांग्रेस की साझी राष्ट्रीयता की अवधारणा ही धराशायी हो जाती है। इस स्थिति के केवल दो ही समाधान हैं। एक तो देश का विभाजन है और दूसरा देश के अन्दर ही एक अलग

मुस्लिम देश विकसित होने देना।''[53] इस तरह हिन्दू और मुस्लिम दोनों साम्प्रदायिक शक्तियों ने धर्म के आधार पर भारत के विभाजन का समर्थन किया। भारत को विभाजित करने के लिए सभी उत्तरदायी हैं।

सन्दर्भ

1. जवाहरलाल नेहरू, ग्लिम्प्स ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री, 1989, ओ. यू. पी., न्यूयार्क, पृ० 336
2. स्टॉन्ले वॉल्पेट, जिन्ना ऑफ पाकिस्तान, ओ. यू. पी. न्यूयार्क, 1984, पेज-22
3. जी. एल्लाना (सं०) पाकिस्तान मूवमेण्ट : हिस्टोरिक डॉक्यूमेण्ट्स वाल्यूम, यूनिवर्सिटी ऑफ कराची, कराची, 1967
4. एल्लाना जी., वही
5. मकलत-ए-शिबली, 1954, आजमगढ़ पृ० 161
6. वही, पृ० 163, 168, 171
7. मकलत-ए-शिबली, वाल्यूम VII, पृ० 152
8. फरजाना शेख, कम्यूनिटी एण्ड कन्सेन्सस इन इस्लाम : मुस्लिम रिप्रेजेंटेशन इन कॉलोनियल इंडिया, 1860-1947, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस एण्ड ओरिएण्ट लांगमैन, 1989, पृ० 169
9. फरजाना शेख, पृ० 171 जी एल्लाना, पाकिस्तान मूवमेण्ट-हिस्टोरिक डॉक्यूमेंट, इस्लामिक बुक सर्विस, लाहौर 1977, पृ० 40
10. हेक्टर बोलियो, जिन्ना-क्रियेटर ऑफ पाकिस्तान, ग्रीनवुड प्रेस, वेस्टपोर्ट, कॉनेक्टिक्ट, पृ० 58
11. राजमोहन गांधी, एट लाइंस, ए स्टडी ऑफ हिन्दू-मुस्लिम एनकाउंटर, 1986, दिल्ली, पृ० 128
12. गांधी टु जिन्ना, अक्टूबर 25, 1920, सी. डब्ल्यू. एम. जी. (III, 15), वाल्यूम XVII-I, पृ० 372 ऑफ वॉल्पेट, पृ० 70
13. एम. एच. सैयद, मोहम्मद अली जिन्ना, एस. एम. अशरफ, लाहौर, 1945, पृ० 264-65
14. एम. सी. छगला, रोज़ेज इन दिसम्बर : एन ऑटोबायोग्राफी, 1974, बम्बई।
15. मैक्सिम रोडिसन, मार्क्सिज्म एण्ड द मुस्लिम वर्ल्ड, ओरिएण्ट लांगमैन, 1979, पृ० 158
17. इयान हेंडरसन डगलस, अबुल कलाम आजाद—एन इंटेलेक्चुएल एण्ड रिलीजियस बायोग्राफी, गेल मिनाल्ट एण्ड क्रिश्चिन डब्ल्यू. ट्रोल, (सं०) ओ. यू. पी., 1988, पृ० 78
18. मुशीरुल हसन, (सं०) कम्युनल एण्ड पॉन-इस्लामिक ट्रेण्ड इन कॉलोनियल इण्डिया, दिल्ली, 1981, पृ० 15
19. उदाहरण के लिए देखें अब्दुल हमीद, मुस्लिम सेप्रेटिज्म इन इंडिया—ए ब्रीफ सर्वे, 1858-1947 (लाहौर, 1971) पुनर्मुद्रित, पृ० 151-52, साथ ही एम. नोमान, राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ द ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग, इलाहाबाद, 1942, पृ० 213-14
20. मुशीरुल हसन, पृ० 15, उद्धृत डब्ल्यू. आर. डी. सी. आई, 11 अप्रैल 1921, होम पोल, डिपासिट, जून, 54, एन. ए. आई।
21. सोर्स मेटीरियल ऑर ए हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेण्ट—खिलाफत मूवमेण्ट—1920-21, वाल्यूम X, गवर्नमेंट ऑफ महाराष्ट्र, बॉम्बे, 1982, पृ० 46
22. डी. जी. तेंदुलकर, अब्दुल गफ्फर खान-फेथ इज ए बैटल, पॉपुलर प्रकाशन, बॉम्बे, 1967
23. अब्दुल गफ्फार खान, उपरोक्त, पृ० 60
24. वही, पृ० 210-11
25. वही, पृ० 226

26. वही, पृ० 389-90
27. मौलाना सैयद मुहम्मद मियां साहेब, उलेमा-ए-हक और इन के मुजाहीदाना कारनामें, 1939, दिल्ली।
28. असगर अली इंजीनियर, 'द उलेमा एण्ड द फ्रीडम स्ट्रगल' और असगर अली इंजीनियर (सं०) द रोल ऑफ माइनॉरिटीज़ इन फ्रीडम स्ट्रगल, 1986, दिल्ली पृ० 8-9
29. मौलाना सैयद मुहम्मद मियां साहेब, असीरां-ए-मलता, दिल्ली, 1976, पृ० 182-83
30. उलेमा-ए-हक, दिल्ली, 1948, वाल्यूम II, पृ० 298-301
31 चौ० अफजल हक, आए-ए-रफ्ता, संकलित द्वारा जांबाज मिर्जा, लाहौर, न. द., पृ० 14
32. शरीफ अल मुजाहिद काएदे-आजम जिन्ना—स्टडीज इन इन्टरप्रेटेंशन, दिल्ली, 1985, पुनर्मुद्रित, पृ० 473
33. जमालुद्दीन अहमद, हिस्टोरिक डॉक्यूमेण्ट ऑफ द मुस्लिम फ्रीडम मूवमेण्ट, लाहौर, 1970, पृ० 86
34. एन. एन. मित्रा, (सं०) इण्डियन क्वाटरली रजिस्टर, 1927, वाल्यूम I, पृ० 37
35. वही, पृ० 15
36. रिपोर्ट ऑफ द इण्डियन नेशनल कांग्रेस, फोरटी सेंकड सेशन, मद्रास, 1927, पृ० 61
37. उमा कौरा, मुस्लिम एण्ड इण्डियन नेशनलिज्म, दिल्ली, 1977, पृ० 31 और देखें रिपोर्ट ऑन इण्डियन नेशनल कांग्रेस, फोरटी-सेशन, वही, पृ० 75
38. पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास पेपर्स, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लाइब्रेरी, न्यू दिल्ली, उद्धृत उमा कौरा, उपरोक्त, पृ० 32
39. द प्रोसीडिंग्स ऑफ द आल पार्टीज नेशनल कन्वेंशन, इलाहाबाद, 1928, पृ० 78
40. वही, पृ० 78 उद्धृत उमा कौरा, उपरोक्त, पृ० 44
41. द प्रोसीडिंग्स ऑफ द ऑल पाटीज नेशनल कन्वेशन, वही, पृ० 94-95
42. द ट्रिब्यून, लाहौर, 2 जून 1929
43. बॉम्बे क्रानिकल, 12 जनवरी, 1929, उद्धृत उमा कौरा, पृ० 46
44. स्टार ऑफ इण्डिया, 2 जनवरी 1937 और देखें पी. एन. चोपड़ा (सं०) टुवर्ड्स फ्रीडम, वाल्यूम I, पृ० 7 उद्धृत खालिक अहमद निजामी मौलाना अबुल कलाम आजाद एण्ड द 30 पेज़ेज ऑफ हिज इंडिया विन्स फ्रीडम, दिल्ली, 1989, पृ० 46-47
45. ए आई सी सी फ़ाईल नं० जी 5 (1) / 1937 टुवर्ड्स फ्रीडम (सं०) पी. एन. चोपड़ा, वाल्यूम 1, पृ० 288-89
46. नेहरू पेपर्स, उद्धृत पी. एन. चोपड़ा (सं०), टुवर्ड्स फ्रीडम, वही, पृ० 736-768, खालिक अहमद निजामी, पृ० 52
47. मौलाना अबुल कलाम आजाद, इण्डिया विन्स फ्रीडम, ओरिएन्ट लांगमैन, 1988 (पूर्ण संस्करणी), पृ० 16
48. द टाइम्स ऑफ इण्डिया, 3 मार्च 1937
49. आयशा जलाल, द सोल स्पोक्समैन—जिन्ना, द मुस्लिम लीग एण्ड द डिमांड फॉर पाकिस्तान, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रैस, 1985, पृ० 109
50. पीरजादा सईद शरीफद्दीन (सं०) फाउंडेशन ऑफ पाकिस्तान : ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग डॉक्यूमेण्टस: 1906-1947, कराची, 1970, वाल्यूम II, पृ० 512-13
51. इण्डिया विन्स फ्रीडम, उद्धृत उपरोक्त, 164-65
52. खालिक अहमद निजामी, उद्धृत, उपरोक्त, पृ० 32
53. एन. एल. गुप्ता (सं०) नेहरू ऑन कम्युनलिज्म, दिल्ली, 1965, 12, पृ० 22

अध्याय-2

सांप्रदायिक दंगे : सामान्य और विशिष्ट कारण

इस पुस्तक के लेखक और अन्य लोगों ने विभिन्न साम्प्रदायिक दंगों का अध्ययन किया है। साम्प्रदायिकता पर एक संपूर्ण सिद्धान्त विकसित करना रोचक होगा। हालांकि इसमें प्रत्येक दंगे की विशिष्टताओं को नहीं लिया जा सकता क्योंकि प्रत्येक दंगे की सामान्य विशेषताओं के साथ अपनी कुछ विशिष्टताएं भी होती हैं। हम ऐसी कुछ विशिष्टताओं पर प्रकाश डालने की कोशिश करेंगे।

देश-विभाजन से पहले के सभी दंगों का कारण अंग्रेजी शासन की ''फूट डालो और राज करो'' की नीति को माना जाता है। यह सच है कि अपना शासन मजबूत करने के लिए अंग्रेजों ने भारतीय समाज को विभाजित करने की कोशिश की, लेकिन हिन्दू और मुस्लिम दोनों सम्प्रदायों के अभिजात वर्ग की भी इसमें भूमिका रही। यहां हम स्वतन्त्र-भारत में साम्प्रदायिकता के कारणों का जायज़ा लेंगे। अंग्रेजों की ''फूट डालो और राज करो'' की नीति इतिहास की विरासत के रूप में होते हुए भी इसकी और अधिक व्याख्या की कोई सार्थकता नहीं है। अब यह सिद्धान्त दफन हो गया है। विभाजन पूर्व के साम्प्रदायिक दंगों की व्याख्या करते हुए आंशिक रूप से इसका प्रयोग किया जा सकता है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में साम्प्रदायिकता के समग्र सिद्धान्त का निर्माण करते हुए यह अति आवश्यक है कि आर्थिक और राजनीतिक घटनाक्रम के साथ-साथ सामाजिक बदलाव को ध्यान में रखा जाए, जो भी सिद्धान्त इसे अनदेखा करने की कोशिश करेगा वह समसामयिक भारत में जातीय और साम्प्रदायिक हिंसा की सही व्याख्या नहीं कर सकता। साम्प्रदायिकता के सिद्धान्त-निर्माण में धर्मनिरपेक्ष होने का दावा करने वाली राजनीतिक पार्टियों की भूमिका को जांचने की आवश्यकता है।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी की नींव धर्मनिरपेक्ष पार्टी के रूप में रखी गई थी और इसने धर्मनिरपेक्षता के झण्डे तले स्वतन्त्रता-संघर्ष का संचालन किया था। तथापि यह कहना गलत नहीं होगा कि कई मौकों पर कांग्रेस किसी संकट को टालने या किसी विशेष सम्प्रदाय के वोट हासिल करने के लिए अपनी धर्मनिरपेक्ष विचारधारा से पीछे हटी है। घटनाओं के दबाव में राजनीतिक पार्टियों ने अपनी विचारधारा से समझौता किया है। इसलिए साम्प्रदायिकता के समग्र सिद्धान्त के निर्माण के लिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जनसंघ (जिसने बाद में अपना नाम बदलकर भारतीय जनता पार्टी रखा) जैसे साम्प्रदायिक समूहों और पार्टियों पर आरोप लगाना ही पर्याप्त नहीं होगा, क्योंकि इन्होंने तो साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक हिंसा को बढ़ावा दिया ही है, लेकिन तथाकथित धर्मनिरपेक्ष पार्टियों ने भी इसमें अपना योगदान दिया।

अस्सी के दशक के प्रारम्भ में कुछ नए साम्प्रदायिक संगठनों का उदय हुआ। विश्व हिन्दू परिषद ने उग्र साम्प्रदायिक भूमिका निभाना शुरू किया, विशेषकर तमिलनाडु जिले के मीनाक्षीपुरम में धर्मान्तरण की घटना के बाद। इसके साथ ही जब रामजन्म भूमि–बाबरी मस्जिद विवाद उत्पन्न हुआ तो बजरंग दल भी राजनीतिक पटल पर उभरा। चूंकि विश्व हिन्दू परिषद और बजरंग दल भारतीय जनता पार्टी की तरह राजनीतिक मुख्यधारा में नहीं हैं इसलिए ये अपने दृष्टिकोण में अधिक उग्र हो सकते हैं। शिवसेना जैसी बम्बई तक सीमित आधार वाली पार्टी ने भी अपना जाल काफी विस्तृत कर लिया है। पहले इसने मराठवाड़ा में अपना राजनीतिक जाल फैलाया और इसके बाद महाराष्ट्र के दूसरे भागों में और अब हिन्दी भाषी क्षेत्र समेत देश के अन्य भागों में अपनी शाखाएं बनाने की कोशिश कर रही हैं। इस संदर्भ में यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि विश्व हिन्दू परिषद, बजरंग दल और शिव सेना आदि साम्प्रदायिक संगठनों ने मुख्य रूप से बेरोजगार युवाओं को अपनी ओर आकर्षित किया है। इस तरह बेरोजगारी की बढ़ोत्तरी ने भी साम्प्रदायिकता के विस्तार में बहुत योगदान दिया। ये संगठन बेरोजगार युवाओं को केवल काम ही नहीं देते बल्कि नेता बनने के अवसर भी प्रदान करते हैं। मराठवाड़ा और रायपुर (मध्य प्रदेश) जिले के अध्ययन से यह स्पष्ट है। इस तरह साम्प्रदायिकता की समस्या को व्यवस्थागत समस्या के रूप में भी देखने की जरूरत है, इसे अलग कर के नहीं देखा जा सकता। इसके अतिरिक्त कई दंगों के अध्ययन से इस बात की पुष्टि हुई है कि आगजनी और लूटपाट में बेरोजगार युवक मुख्य रूप से भाग लेते हैं। इससे उनको कुछ समय के लिए आर्थिक समस्याओं से राहत मिलती है। और उनकी टेलीविजन, वीडियो और फ्रिज आदि उपभोक्ता वस्तुएं रखने की इच्छा पूरी

होती है। दिसम्बर, 1992 व जनवरी 1993 के दंगों के दौरान दंगाइयों ने आमतौर पर ऐसी वस्तुएं लूटीं।

जमात-ए-इस्लामी भी मुख्यत: ऐसे मुस्लिम युवाओं को आकर्षित करने में सफल हुई। इस्लामिक स्टूडेंट मूवमेंट ऑफ इण्डिया (सिमी) ने भी बेरोजगार मुस्लिम युवाओं को अपनी ओर आकर्षित किया। ''सिमी'' नेताओं ने इस्लाम के संदर्भ देकर अत्यधिक भावुकतापूर्ण भाषण दिए। इस तरह हिन्दू और मुस्लिम दोनों साम्प्रदायिकतावादियों ने फ्रायड की मनोवैज्ञानिक शब्दावली प्रयोग करके युवाओं की आर्थिक व सामाजिक हताशा का अपने स्वार्थों के लिए दोहन करने की कोशिश की।

साम्प्रदायिक दंगों का समग्र सिद्धान्त निर्माण करते समय यह ध्यान रखना जरूरी है कि हर दंगे के कुछ सामान्य और कुछ विशिष्ट कारण होते हैं। सामान्य कारण विचारधारात्मक होते हैं और ये राष्ट्रीय स्तर पर होते हैं। विशिष्ट कारण गैर विचारधारात्मक होते हैं और स्थानीय होते हैं। परन्तु सामान्य और विशिष्ट कारण देश के समाजार्थिक विकास की प्रक्रियाओं से एकात्मक रूप से गुंथे होते हैं। दूसरे शब्दों में, समस्त समस्या सामाजिक परिवर्तन और विकास के परिप्रेक्ष्य में देखनी चाहिए। समाज-वैज्ञानिक को संरचना और ऊपरी-संरचना में परिवर्तनों में द्वंद्व को गम्भीरता से देखना चाहिए। यह प्रक्रिया द्वंद्वात्मक है। आधारभूत संरचना में परिवर्तन ऊपरी-संरचना को तथा ऊपरी-संरचना में परिवर्तन आधारभूत संरचना को प्रभावित करते हैं लेकिन आधारभूत संरचना और ऊपरी संरचना में यांत्रिक ढंग से सम्बन्ध स्थापित करना गलत होगा। समस्या को समग्रता में देखने के लिए सम्बन्धों की जटिलता को हमेशा ध्यान में रखना जरूरी है।

आधुनिक भारत में साम्प्रदायिक हिंसा के स्वरूप को समझने के लिए विभिन्न वर्गों, सामाजिक संगठनों, साम्प्रदायिक और धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक पार्टियों और इसमें शामिल सम्प्रदाय के अभिजात वर्गों की आकांक्षाओं को समझना जरूरी है। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि साम्प्रदायिक तनाव का मुख्य कारण धर्म नहीं है, जैसा कि आम तौर पर लोग सोचते हैं। धर्म सिर्फ निहित स्वार्थों का शक्तिशाली हथियार है जिसके माध्यम से वे अपना खेल खेलते हैं। यह कहना गलत होगा कि साम्प्रदायिकता का मूल कारण धर्म है, जैसा कि निहित राजनीतिक व आर्थिक स्वार्थ दर्शाने की कोशिश करते हैं, असल में वे धर्म का नाम लेकर अपनी वास्तविक मंशा को जनता से छुपाना चाहते हैं। धर्म को साम्प्रदायिकता का मूल कारण मानना समस्या के प्रति असामाजिक दृष्टिकोण अपनाना होगा। समाज में और विशेषत: बहुधर्मी समाज में दो या अधिक धार्मिक सम्प्रदायों के बीच राजनीतिक सत्ता और

आर्थिक संसाधनों पर नियन्त्रण के लिए उपजी साम्प्रदायिक हिंसा और धार्मिक हिंसा में अन्तर करना जरूरी है।

इस तरह साम्प्रदायिकता का जन्म मुख्यतः अपने सम्प्रदाय के लोगों की धार्मिक भावनाओं के शोषण के माध्यम से राजनीतिक या आर्थिक शक्ति को नियन्त्रित करने जैसे धर्मनिरपेक्ष मुद्दों से हुआ। साम्प्रदायिकता को आम तौर पर धार्मिक संगठनों और मान्यताओं ने प्रोत्साहित नहीं किया, बल्कि राजनीतिक पार्टियों के धर्मनिरपेक्ष नेताओं ने किया। इस तरह विभाजन–पूर्व भारत में एक ओर मुस्लिम साम्प्रदायिकता को पूर्णतः पाश्चात्य संस्कृति के भक्त व आधुनिक विचारों वाले नेता मुहम्मद अली जिन्ना ने प्रोत्साहित किया तो दूसरी ओर हिन्दू महासभा के विचारक-चिन्तक वीर सावरकर भी आधुनिक दृष्टिकोण के थे और हिन्दू समाज में आधुनिक सुधारों के पक्षधर थे। मुस्लिम लीग या हिन्दू महासभा का नेतृत्व मुल्लाओं या शंकराचार्यों ने नहीं किया। किसी धार्मिक या धार्मिक पंथ के सिद्धान्तों को शामिल किए बिना साम्प्रदायिकता पूरी तरह से धर्मनिरपेक्ष मुद्दों के बारे में थी। इसलिए हम कह सकते हैं कि साम्प्रदायिकता का आधारभूत कारण राजनीति है न कि धर्म, धर्म तो केवल इसका उपकरण या हथियार है। जहां साम्प्रदायिकता का सम्बन्ध राजनीति से है वहीं धर्म का आस्था से है। महात्मा गांधी और मौलाना अबुल कलाम आजाद जैसे सच्चे धार्मिक व्यक्ति कभी साम्प्रदायिक नहीं हुए। इसी तरह मुहम्मद अली जिन्ना और वीर सावरकर जैसे साम्प्रदायिक व्यक्ति की कभी भी धर्म में सच्ची आस्था नहीं रही। इन्होंने धर्म को सिर्फ एक राजनीतिक औजार माना। धर्म में गहरी आस्था रखने वाला व्यक्ति किसी व्यक्ति या वर्ग विशेष की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए उसका इस्तेमाल नहीं करने देगा।

साम्प्रदायिक दंगों के सामान्य कारण

आइये पहले हम साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक हिंसा को बढ़ावा देने वाले सामान्य कारणों पर विचार करें। साम्प्रदायिकता के समग्र सिद्धान्त निर्माण में सामान्य कारणों का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष समाज की वर्गीय संरचना को समझना है और विशेषकर अल्पविकसित अर्थव्यवस्था और सीमित संसाधनों वाले देश में। अल्पविकास अर्थव्यवस्था का परिणाम सम्प्रदाय और क्षेत्र दोनों दृष्टि से असमान विकास होता है और यह असमान विकास अनिवार्य रूप से साम्प्रदायिक और क्षेत्रीय पहचान को बढ़ावा देता है। यह साम्प्रदायिक या क्षेत्रीय पहचान लोगों को एकत्रित करने का शक्तिशाली कारक बन जाती है और लोकतान्त्रिक व्यवस्था में लोगों का एकत्रीकरण महत्वपूर्ण है। पुनः लोकतांत्रिक व्यवस्था में बहुसंख्यक सम्प्रदाय का

अभिजात वर्ग असमान आर्थिक विकास के फायदों पर एकाधिकार जमाना चाहता है। इसी तरह अभिजात वर्ग राजनीतिक शक्ति के ज्यादा से ज्यादा हिस्से पर एकाधिकार जमाना चाहता है। स्वतन्त्र भारत में उच्च जाति के हिन्दू अभिजात वर्ग का राजनीतिक और आर्थिक शक्ति पर एकाधिकार था।

विभिन्न सम्प्रदायों में असमान विकास से एक समान अन्तर्सामुदायिक वर्ग संरचना का विकास नहीं होता, चाहे पूंजीवादी वर्ग का विकास हो या सर्वहारा वर्ग की संरचना हो। कम-विकसित समुदाय अभिजात वर्ग में दूसरे अपेक्षाकृत अधिक विकसित सम्प्रदाय के प्रति प्रतिद्वन्द्विता की तीव्र भावना पैदा होती है। इस स्थिति में अपने सम्प्रदाय की जनता का समर्थन हासिल करने के लिए वर्गों के आर्थिक आधार को छोड़कर सम्प्रदाय के आधार पर शिकायतें गढ़ी जाती हैं और इसमें एक तरफ कुछ धार्मिक-सांस्कृतिक मांग जोड़कर तो दूसरी तरफ अपने सम्प्रदाय के अतीत का मिथकीकरण करके लोगों की आर्थिक मांगों को पीछे फेंक दिया जाता है। इस तरह हम देखते हैं कि दोनों सम्प्रदायों के साम्प्रदायिक तत्वों ने अपने अतीत को वर्गों और धार्मिक पंथों व मतों के द्वन्द्वों से रहित स्वर्ण युग की तरह प्रस्तुत करके महिमामंडित किया। इस तरह किसी सम्प्रदाय के अतीत के मिथकीकरण और रोमांचीकरण ने जनता को एकत्रित करने व सम्प्रदाय की आकांक्षाओं को महसूस करने में शक्तिशाली उपकरण के रूप में कार्य किया। भारत जैसे सामाजिक दृष्टि से पिछड़े समाज में यह उपकरण अत्यधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ।

पिछड़े और साम्प्रदायिक दृष्टि से विभाजित समाज में संप्रदाय की सीमाएं लांघकर वर्ग एकता विशेषकर मेहनतकश अवाम के बीच कायम करना बहुत मुश्किल काम है हालांकि सांप्रदायिक हिंसा का शिकार प्रायः आम जनता ही बनती है। शोषक वर्ग ने उनमें बड़ी चतुराई से मिथकीय इतिहास और अन्य शक्तिशाली मिथकों को डाल दिया क्योंकि ये तत्व वर्ग हितों की राजनीति करने वालों की अपेक्षा अधिक लोगों को एकत्रित करने में सक्षम थे। यह विशेष रूप से शहरी वर्गों के छोटे दुकानदारों के बारे में सच है।

इससे साम्प्रदायिकता का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू हमारे सामने उद्घाटित होता है। सभी समाज-वैज्ञानिक इससे सहमत हैं कि साम्प्रदायिकता एक शहरी परिघटना है जिसकी जड़ें छोटे व्यापारियों में हैं। इस वर्ग में पिछड़े समाज के परम्परागत रूढ़िवादी धर्म का काफी प्रभाव है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जमात-ए-इस्लामी दोनों सम्प्रदायों का वास्तविक आधार शहरी छोटा व्यापारी वर्ग है। दोनों सम्प्रदायों के अभिजात वर्ग ने अपने गैर धार्मिक उद्देश्यों के लिए धार्मिक भावनाओं का सफलतापूर्वक दोहन किया। इस तरह भारत के सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य

पर साम्प्रदायिकता का खतरा मंडराने लगा। छोटे व्यापारी वर्ग की एक और महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह सत्ता के सामने समर्पण करता है, उनकी इस प्रवृत्ति का साम्प्रदायिक पार्टियां पूरा फायदा उठाती हैं और लोकतन्त्र-विरोधी निरंकुश सत्ता के ढांचे का निर्माण करती हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जमात-ए-इस्लामी दोनों का जोर सत्ता के आगे समर्पण की ओर है, स्वतन्त्र विचार और लोकतान्त्रिक कार्य पद्धति की ओर नहीं। ईश्वरीय सत्ता या (पुजारियों द्वारा व्याख्यायित) पवित्र पुस्तकों के आगे अंध श्रद्धा या समर्पण इस प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है और इस तरह समाज में रूढ़िवाद का प्रसार होता है।

साम्प्रदायिकता के समग्र सिद्धान्त निर्माण के सामान्य कारणों में एक और समस्या है, जो देश के सामाजिक परिवर्तनों से गहरे में जुड़ी है। समाजार्थिक परिवर्तनों का समाज के जिन वर्गों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, उनमें असुरक्षा की भावना पैदा होती है, विशेषकर परम्पराबद्ध समाज में। छोटे व्यापारी और मजदूर वर्ग बुरी तरह प्रभावित होते हैं। वे परम्परावादी होते हैं और समाजार्थिक परिवर्तनों से उनमें यह प्रवृत्ति गहरे में बैठ जाती है। इसलिए समाज के ये वर्ग धार्मिक, पुनरुत्थानवादी आन्दोलनों के लिए सबसे अनुकूल होते हैं। समाजार्थिक विकास को सतही या यांत्रिक ढंग से लेने वाले समाजशास्त्रियों को यह बात सबसे अधिक परेशान करती है, वे महसूस करते हैं कि विकास से समाज में विवेकशीलता व वैज्ञानिक सोच विकसित होनी चाहिए थी, जबकि यह सत्य नहीं है। इसके विपरीत ऐसे समाजार्थिक परिवर्तनों से असुरक्षा की भावना पैदा होती है और समाज का बड़ा हिस्सा तो मानसिक सांत्वना और मनोवैज्ञानिक दबाव कम करने के कारण धर्म की ओर आकर्षित होता है। हाल के धार्मिक तत्ववादी उभार को इस परिप्रेक्ष्य में देखना जरूरी है। भारत के सामाजिक-धार्मिक क्षेत्र पटल पर धार्मिक पुनरुत्थानवाद और तत्ववाद की दो श्रेणियां हैं। पहली श्रेणी के धार्मिक पुनरुत्थानवाद में आधुनिक समाज की जीवन शैली से उपजे शहरी तनावों और अन्य दबावों से बढ़ती असुरक्षा को भुनाने वाले योगी, बाबा व अन्य धार्मिक गुरु, शिक्षक और चालबाज ठग हैं। ये एक ओर नव-धनाढ्य वर्ग की सामाजिक पहचान बनाने की आकांक्षा को संतुष्ट करते हैं और तस्करों, काला बाजारियों, मुनाफाखोरों और इसी तरह के अन्य स्रोतों से सत्ताधारी राजनीतिज्ञों तक काले धन का महत्वपूर्ण माध्यम भी बनते हैं। धर्म के नाम पर धोखा देने वाले ऐसे ढोंगी हमारे शहरी समाज में बहुत तेजी से बढ़ रहे हैं; जो विवेकहीनता व अतार्किकता को बढ़ावा दे रहे हैं। शासक वर्ग इन प्रवृत्तियों को इसलिए प्रोत्साहित करता है, कि अविवेक की संस्कृति जनता में भ्रम और मिथ्या चेतना पैदा करके संकटग्रस्त अर्थव्यवस्था को कुछ समय के लिए स्थिरता प्रदान

करती हैं। चूंकि ये स्वयं को राजनीतिक क्षेत्र से बाहर रखते हैं, इसलिए समाज में साम्प्रदायिक तनाव को सीधे तौर पर तो बढ़ावा नहीं देते। ये उभरते व्यापारी वर्ग की आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित नहीं करते बल्कि उनकी शरणस्थली के रूप में काम करते हैं।

दूसरी श्रेणी के तत्ववाद में विश्व हिन्दू परिषद का आन्दोलन और इस्लामिक तत्ववाद आता है। ये आन्दोलन राजनीतिक आकांक्षा लिए हैं और छोटे व्यापारी वर्गों को उभरती आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करते हैं। यह धार्मिक पुनरुत्थानवाद राजनीतिक उद्देश्यों से परिचालित है। चन्द हरिजनों के इस्लाम में धर्मान्तरण को मुद्दा बनाकर देश में साम्प्रदायिक तनाव को सघन बनाने के लिए आक्रामक प्रचार की सोची-समझी योजना के तहत विश्व हिन्दू परिषद की शुरुआत हुई। इस पुस्तक के लेखक को दिसम्बर 1993 में अहमदाबाद, पुणे, सोलापुर, पंढरपुर आदि के साम्प्रदायिक दंगों की जांच-पड़ताल से पता चला कि ये दंगे विश्व हिन्दू परिषद के व्यापक प्रचार अभियान का परिणाम थे। सितम्बर से अक्टूबर 1982 के मेरठ दंगों में विश्व हिन्दू परिषद की भागीदारी किसी से छिपी हुई नहीं थी। उग्र हिन्दूवाद को बढ़ावा देने के लिए विश्व हिन्दू परिषद भारत की विभिन्न भाषाओं में लाखों की संख्या में पर्चे प्रकाशित करती है और अधिकांश शहरों में दीवारों पर भड़काऊ नारे लिखवाती है। यह कहना गलत नहीं होगा कि विश्व हिन्दू परिषद ने साम्प्रदायिकता के विषाणु को नई खुराक दी है, शासक वर्गों के कुछ हिस्सों को व्यवस्था के संकटों से निपटने के लिए ऐसी खुराक की जरूरत थी।

क्षेत्रीय और साम्प्रदायिक पहचान की उग्र घोषणा का सवाल भी साम्प्रदायिकता के सामान्य कारणों में महत्वपूर्ण कारण है। असल में साम्प्रदायिक या क्षेत्रीय पहचान की घोषणा सीमित आर्थिक संसाधनों में हिस्सेदारी के द्वन्द्व का सीधा परिणाम है। जब जन आकांक्षाएं बहुत तेजी से बढ़ रही हों और आर्थिक विकास की गति अत्यधिक धीमी हो, तो समाज के विभिन्न वर्गों के द्वन्द्व या तो क्षेत्रीय पहचान के रूप में या धार्मिक-सांस्कृतिक पहचान के रूप में प्रकट होते हैं। अभी हाल ही में इसकी स्पष्ट झलक असम और पंजाब में देखने को मिली और अब कश्मीर में देख रहे हैं।

असम की स्थिति

असम राज्य लम्बे समय तक उपेक्षित रहा, आर्थिक विकास में उसे उसका उचित हिस्सा नहीं मिला और सरकारी नौकरियों और सांस्कृतिक पदों पर बंगालियों ने एकाधिकार कर लिया। यह बांग्लादेश के गरीब किसानों के निर्वासन से जुड़ गया

और राज्य में तीव्र तनाव पैदा हुआ जिसकी अभिव्यक्ति क्षेत्रीय सांस्कृतिक पहचान के रूप में हुई। असम जातीयता अपने आपको असम के लोगों की सांस्कृतिक पहचान के सवाल के रूप में घोषित कर रही थी। असम के मध्य वर्ग और छोटे व्यापारियों ने आन्दोलन का नेतृत्व किया। ये वर्ग बंगाली पहचान के मुकाबले में अपनी क्षेत्रीय पहचान की अभिव्यक्ति के दौरान आर्थिक विकास में अपने हिस्से का दावा कर रहे थे। आजकल असम की शहरी अर्थव्यवस्था मारवाड़ियों के नियन्त्रण में है। स्थानीय असमी व्यापारी और मारवाड़ियों के बीच तनाव अवश्यंभावी था, इसलिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने वहां की क्षेत्रीय समस्या को साम्प्रदायिक मोड़ दे दिया। इस तरह असमियों का सवाल और अधिक जटिल हो गया। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने चालाकीपूर्ण ढंग से क्षेत्रीय पहचान को कमजोर किया और साम्प्रदायिक पहचान ने अधिक घातक उग्र रूप धारण किया। नेली क्षेत्र में बंगाली मुसलमानों का नरसंहार क्षेत्रीय पहचान से साम्प्रदायिक पहचान पर जोर का प्रमाण है।

यह पूर्व-कल्पना कि जहां क्षेत्रीय और सांस्कृतिक पहचान शक्तिशाली है वहां साम्प्रदायिक प्रवृत्ति कमजोर रहेगी, साम्प्रदायिकता के सिद्धान्त का महत्वपूर्ण पक्ष है। अभी तक हम कश्मीर, असम, पंजाब, केरल, तमिलनाडु आदि राज्यों में यह पूर्व-कल्पना सत्य सिद्ध हुई है। हालांकि बदलती परिस्थितियों में यह कमजोर हो रही है। अब हम इन राज्यों में तीव्र साम्प्रदायिक तनाव को देख रहे हैं। असम, पंजाब, केरल, तमिलनाडु साम्प्रदायिक तनाव की दृष्टि से संवेदनशील क्षेत्र बन रहे हैं। इनके कुछ कारणों को जांचना आवश्यक होगा।

पंजाब

सांस्कृतिक दृष्टि से पंजाबी सबसे अधिक घुले-मिले हैं। सिखों और हिंदुओं में अन्तर्विवाह होते हैं, पंजाबी हिन्दू परिवार के बेटे का सिख बन जाना आम घटनाएं हैं। इतिहास में भी सिखों और हिंदुओं के बीच कभी शत्रुता नहीं रही। विभाजन के समय भी सिख और हिन्दू इकट्ठे रहे। परस्पर घनिष्ठ भाई चारे और सह अस्तित्व के इतिहास के बावजूद हिन्दुओं और सिखों में तीखे साम्प्रदायिक मतभेद उभरे। ऐसा क्यों हुआ ? क्यों एकदम साम्प्रदायिक तनाव पैदा हुआ ?

सिख अपने को कई कारणों से पीड़ित महसूस करते थे, वे अपनी अलग पहचान बना रहे थे। अकाली और सिख उग्रपंथी केवल धार्मिक मांगों के लिए नहीं लड़ रहे थे। केंद्र सरकार ने उनकी मांग मान ली। असली सवाल आर्थिक मांगों को लेकर था। अकालियों ने नदी के पानी में बराबर हिस्सा, पन बिजली घर, चण्डीगढ़ पर कब्जा और अबोहर फजिल्का जिलों की कुछ मुख्य मांगों को आगे किया। दूसरे

शब्दों में, अकाली पंजाब के सिख व्यापारी वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, जिस कारण पंजाबी हिन्दू व्यापारी वर्ग से सीधी टक्कर हुई। असल में अकाली और सिख उग्रपंथी धार्मिक मांगें आगे करके सिखों को लामबन्द करने की कोशिश कर रहे थे। सिख तत्ववाद, सिखों में प्रभुत्वशाली वर्गों की धर्मनिरपेक्ष आकांक्षाओं को जाहिर कर रहा था। धार्मिक और साम्प्रदायिक पहचान की घोषणा अधिकतर ग्रामीण समृद्ध सिखों ने की थी। नई समृद्धि ने जाट सिखों की परम्परागत नैतिक बन्धनों को तोड़ने और आर्थिक विकास में अपनी हिस्सेदारी को बढ़ाने की धर्मनिरपेक्ष आकांक्षाओं को बढ़ाया। परम्परागत धर्म से जाट सिखों के बढ़ते अलगाव ने अकालियों को चेताया कि जाट सिखों पर उनका प्रभुत्व कम हो रहा है, इसलिए उग्र घोषणा द्वारा एक ओर वे उनकी साम्प्रदायिक पहचान को बढ़ाने की कोशिश कर रहे थे तो दूसरी ओर आर्थिक मांगों को आगे करके सिख अभिजात घरानों और व्यापारी वर्ग की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। इस संदर्भ में पंजाब राज्य की पूर्ण स्वायत्तता की मांग करने वाले आनन्दपुर साहिब प्रस्ताव पर नहीं विचार करना चाहिए।

धार्मिक पहचान की उग्र अभिव्यक्ति से जाट सिख किसानों पर अकालियों का वर्चस्व हुआ, जिसने सिखों और पंजाबी हिन्दुओं में तीखे तनाव को जन्म दिया और पंजाब में साम्प्रदायिक घटाटोप छा गया। यह रेखांकित करने की बात है कि लगभग सभी उग्रपंथी नवयुवक थे, उनमें कुछ अभी विद्यार्थी थे और कुछ ने अभी अपनी शिक्षा पूरी ही की थी और रोजगार की तलाश में थे। ये उग्रपंथी आन्दोलन में इसलिए शामिल हुए कि अनुकुल रोजगार न मिलने पर वे हताश-निराश थे। बेरोजगारी भी एक मुख्य कारण था जिसने युवाओं को अतिवादी आन्दोलन से जोड़ दिया। वे महसूस करते थे कि यदि खालिस्तान बन गया तो वे बेरोजगार नहीं रहेंगे। उग्रपंथी आंदोलन ने उनको एक स्पष्ट साम्प्रदायिक पहचान दी, जीवन का एक लक्ष्य दिया और जीवन को सार्थक करने अवसर दिया और काफी हद तक शक्ति की भावना दी।

पाकिस्तान की खुफिया एजेंसी आई.एस.आई. की भूमिका को अनदेखा नहीं करना चाहिए। इसने भी युवाओं को ''हिन्दू भारत से अलग होने और खालिस्तान बनाने के लिए प्रेरित किया। आई.एस.आई. ने उनको हथियार और प्रशिक्षण उपलब्ध कराया। हालांकि कई कारणों से खालिस्तान आन्दोलन अधिक नहीं चल पाया। पहला, सिख युवाओं की ज्यादतियों की वजह से इसने लोगों का समर्थन खो दिया। दूसरे, खालिस्तान आन्दोलन का कोई वास्तविक आधार नहीं था, यह आनन्दपुर साहब प्रस्ताव पर आधारित था, और यह प्रस्ताव अत्यधिक विवादास्पद सिद्ध हुआ

और इसकी व्याख्याएं भी अलग-अलग थीं। मुख्य अकाली दल भी खालिस्तान-निर्माण के बारे में कोई पक्ष लेने में हिचकिचाया। बाद में इसे अमेरिका और कनाडा के सिखों का समर्थन मिला, शायद उन्होंने ये सोचा होगा कि एक बार खालिस्तान बन गया तो वे वहां निवेश करने के लिए स्वतन्त्र होंगे और अपना पूंजीवादी दुर्ग बना सकेंगे, जिसकी भारत में वे कठिनाई महसूस कर रहे थे (अब भारत ने अपनी आर्थिक नीतियां बदलकर उदारवाद को अपनाया और अब यहां प्रवासी भारतीयों के निवेश के लिए बहुत संभावना है) और साथ ही, आई.एस.आई. ने राजनीतिक कारणों से समर्थन वापस ले लिया और खालिस्तान आन्दोलन पूरी तरह खत्म हो गया।

केरल की स्थिति

केरल भी साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए प्रसिद्ध है, और यहां हिन्दू, मुस्लिम और इसाई तीन मुख्य सम्प्रदाय कई शताब्दियों से रह रहे हैं। यह राज्य सांस्कृतिक और भाषायी दृष्टि से एक है। अत: हमारी पूर्व कल्पना के अनुसार यहां सम्प्रदायों के बीच तनाव यदि बिल्कुल गायब नहीं तो बहुत कम था। हालांकि सामाजिक-आर्थिक स्थिति तेजी से बदल रही है और नए राजनीतिक विकास और बदलते राजनीतिक गठबन्धनों से केरल की राजनीति में साम्प्रदायिकता का तत्व शक्तिशाली ढंग से उभरा है। मुस्लिम लीग कुछ शर्तों पर गठबन्धन (जो 1956 में साम्यवादियों को खत्म करने के लिए कांग्रेस ने बनाया है।) में शामिल हुई। ऐसे कई गठबंधन अस्तित्व में आए और गठबंधन के सहयोगियों में विभिन्न साम्प्रदायिक समूहों की मांग मानने की होड़ शुरू हुई। नायरों ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को केरल में अपना आधार मजबूत करने के लिए प्रोत्साहित किया और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के साथ-साथ साम्प्रदायिकता के विषाणु ने भी राज्य में तेजी से फैलना शुरू किया। 1970 के तेलीचेरी के दंगों से पहले केरल में कभी साम्प्रदायिक दंगे नहीं हुए थे (जांच आयोग ने अपनी जांच में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का हाथ माना) लेकिन भारत के मानचित्र पर साम्प्रदायिक दृष्टि से संवेदनशील क्षेत्रों में केरल भी निस्सन्देह रूप से है। हिन्दू-मुस्लिम दंगों के बाद निलिक्कम में क्रास मिलने के सवाल को लेकर हिन्दू ईसाई दंगा हुआ। वास्तव में केरल कांग्रेस पर ईसाइयों का वर्चस्व है और मुस्लिम लीग जैसी पार्टी ने किसी एक या दूसरी सत्तारुढ़ पार्टी से गठबन्धन किया जिससे साम्प्रदायिक समस्या बढ़ी। हालांकि, तुलना की दृष्टि से कहा जा सकता है कि हिन्दू-ईसाई समस्या इतनी गम्भीर नहीं है जितनी कि हिन्दू-मुस्लिम समस्या। बहरहाल इस सबके बावजूद केरल में साम्प्रदायिक समस्या हाशिये पर ही रही और

दूसरे राज्यों की अपेक्षा केरल में साम्प्रदायिक संतुलन बना रहा।

जम्मू-कश्मीर परिदृश्य

यह देखने में आया है कि केंद्र और राज्यों की शासक वर्गीय राजनीतिक पार्टियों ने अधिक से अधिक वोट बटोरने के लिए जातिवादी और साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित किया। 1983 के जम्मू-कश्मीर के चुनावों का उदाहरण लिया जा सकता है। अपनी पार्टी को अधिक सीटें जिताने के लिए श्रीमती इन्दिरा गांधी ने ऐसे भाषण दिए जिनमें साम्प्रदायिकता की बू आती थी। इससे भी आगे जाकर उन्होंने घाटी में एक बात कही तथा जम्मू में उससे अलग कहा। उन्होंने जम्मू में हिन्दू भावनाओं को सहलाया और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ताओं ने उन सीटों पर उनकी जीत के लिए काम किया, जिन पर परम्परागत रूप से भारतीय जनता पार्टी का दावा था। फारुख अब्दुल्ला ने बदले में मीर वाइस से गठबन्धन किया, जबकि मीर वाइस नेशनल कांफ्रेंस और इसके नेता शेख अब्दुल्ला का परम्परागत विरोधी था। इस तरह तथाकथित धर्मनिरपेक्ष पार्टियों ने चुनावों में चन्द सीटें अधिक जीतने के लिए खुलेआम और बेशर्मी से साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया।

कश्मीर में, इन अवसरवादी नीतियों ने अन्ततः सशस्त्र विद्रोह को जन्म दिया। कश्मीर परम्परागत रूप से हिन्दू पण्डितों और मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक शत्रुता के लिए प्रसिद्ध है। आर्थिक और राजनीतिक शिकायतें जल्दी ही धार्मिक अनुगूंजें धारण कर लेती हैं ? यह सच है कि यहां पाकिस्तान की आई. एस. आई. की हथियारों की आपूर्ति और प्रशिक्षण में भूमिका रही है, लेकिन कोई इससे भी इनकार नहीं कर सकता कि कश्मीरी मुसलमानों की समस्याओं को कभी नहीं सुलझाया गया। यहां तक कि इस दिशा में गम्भीर प्रयास भी नहीं हुए। ऐसी समस्याओं को जल्दी ही धार्मिक और जातीय भेदभाव के रूप में देखा जाने लगा और इससे धार्मिक और जातीय पहचान की भावना तीव्र हुई। उग्रवादियों ने कश्मीरी हिन्दुओं को घाटी से बाहर निकाल दिया, जिनके साथ वे अब तक शान्ति और सद्भाव से रहते आए हैं और इसे अब ''शुद्ध इस्लामिक'' समाज बनाना चाहते हैं। कुछ उग्रवादी हरकत-उल-अंसार जैसे संगठनों से संबंधित हैं।

यहां तक कि वे बन्दूक की नोक पर ड्रेस कोड और इस्लामिक नियमों को जबरदस्ती लागू कर रहे हैं। सुरक्षा बलों ने मानवाधिकारों का अत्यधिक हनन किया जिससे जम्मू-कश्मीर के लोगों में अलगाव की भावना और गहरी हुई। अभी तक इस समस्या का कोई आसान हल नजर नहीं आता। इसके साथ ही पण्डितों को घाटी

में वापस लाना भी मुश्किल है। कश्मीर से बाहर गए पण्डितों का संगठन ''पनुन कश्मीर'' भी अलग मातृभूमि की मांग कर रहा है। हालांकि यह बुद्धिमतापूर्ण कदम नहीं है। पण्डितों को घाटी में वापस लाने और दोनों सम्प्रदायों में सद्‌भावना कायम करने के लिए हर तरह के प्रयास करने चाहिए। हालांकि वर्तमान स्थिति में यह कहना आसान है, लेकिन करना बहुत मुश्किल है। कुछ राजनीतिक हल से ही स्थिति सुधर सकती है।

अब से पहले कभी देश में आर्थिक संकट इतना नहीं गहराया था। यह पूरी तीसरी दुनिया के देशों में अल्पविकसित पूंजीवाद का आर्थिक संकट है जो पूंजीवादी विकास के रास्ते तलाश रहा है। विकसित देशों के हित इसमें निहित हैं कि ये देश पिछड़े बने रहें, उनके लिए ये कच्चे माल और सस्ते श्रम के भण्डार हैं और ये उनकी उत्पादित वस्तुओं के लिए लाभकारी बाजार भी उपलब्ध कराते हैं। इसके साथ इन देशों का अभिजात वर्ग पूरी तरह पश्चिमी रंग में रंगा है और भ्रष्ट है। विश्व बैंक के दबाव में उदारीकरण का नया अध्याय शुरू करके इन देशों का शासक-अभिजात वर्ग पश्चिम के विकसित देशों के लिए अपनी अर्थव्यवस्थाएं खोल रहा है। बदले में, उदारीकरण से समाज के नव अभिजात वर्ग को लाभ पहुंचेगा। इन नीतियों से जनता पूरी तरह पिसेगी। उदारीकरण से अन्तर्विरोधी स्थिति पैदा हो रही है। एक ओर यह अत्यधिक पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित, उपभोक्तावादी और धार्मिक विश्वासों व आस्थाओं से मुक्त लोगों को पैदा कर रहा है तो दूसरी ओर यह अपने राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए धर्म का कुटिलतापूर्ण ढंग से दोहन कर रहा है। यह धार्मिक रूढ़िवाद और धार्मिक तत्ववाद को बढ़ावा दे रहा है। उग्रपंथी युवा धार्मिक तत्ववाद को राजनीतिक शक्ति हासिल करने के लिए और समाज से नैतिक भ्रष्टाचार मिटाने के लिए प्रयोग करता है। ऐसी परिस्थितियों में कुछ राजनीतिक दल भी अपने राजनीतिक अवसर बढ़ाने के लिए धार्मिक तत्ववाद का प्रयोग करते हैं। इस तरह, आधुनिक उदारीकृत और पाश्चात्य अर्थव्यवस्था विकासशील देशों में धार्मिक रूढ़िवाद, तत्ववाद और साम्प्रदायिकता के बीज बो रही है। शासक अभिजात वर्ग इस वातावरण को अपने राजनीतिक मंतव्यों के लिए प्रयोग करते हैं और तत्ववाद और साम्प्रदायिकता का आधार मजबूत करते हैं। विश्व हिन्दू परिषद हिन्दू तत्ववाद का प्रसार करके भारतीय जनता पार्टी का आधार मजबूत कर रही है। केवल भारतीय जनता पार्टी ही नहीं बल्कि कांग्रेस जैसी अन्य सत्तारूढ़ पार्टियां भी अपने राजनीतिक हितों के लिए रूढ़िवाद और साम्प्रदायिकता का सहारा ले रही हैं। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने हिन्दू वोटों को पाने के लिए मीनाक्षीपुरम में दलितों के इस्लाम में धर्मान्तरण का खुले तौर पर प्रयोग किया। बाबरी-मस्जिद गिराये जाने के समय जानबूझकर

निष्क्रिय रहकर और उसी स्थान पर पुन: बाबरी मस्जिद के निर्माण के अपने वायदे से पीछे हटकर नरसिम्हाराव ने साम्प्रदायिकता के प्रति नरम रुख अपनाया। अब वे जहां मस्जिद गिराई गई थी, वहीं राममंदिर के निर्माण के लिए चार शंकराचार्यों को मनाने की कोशिश कर रहे हैं। इस तरह सरकार तत्ववाद की चुनौती से मुकाबला करते हुए अपने किस्म के तत्ववाद को प्रायोजित करती है। समसामयिक भारतीय समाज में साम्प्रदायिकता पर समग्न सिद्धांत निर्माण के लिए इन सभी कारणों को ध्यान में रखना जरूरी है।

विशिष्ट कारण

जैसा कि इस अध्याय के प्रारम्भ में ही कहा गया है कि साम्प्रदायिकता की वास्तविक प्रकृति को समझने के लिए सामान्य और विशिष्ट दोनों तरह के कारणों को लेना जरूरी है। साम्प्रदायिक दंगों के सूक्ष्म अध्ययन से ही इसके विशिष्ट कारणों पर प्रकाश डाला जा सकता है। अब हम विभिन्न दंगों के अध्ययनों के आधार पर विशिष्ट कारणों पर प्रकाश डालना चाहेंगे।

किसी कस्बे विशेष में साम्प्रदायिक तनाव, कुछ स्थानीय मुद्दों को लेकर होता है। साम्प्रदायिकता के सिद्धान्त पर विचार करने वाले अक्सर इन स्थानीय मुद्दों के महत्व को अनदेखा करते हैं, इन स्थानीय कारणों को हम विशिष्ट कारण कहते हैं। साम्प्रदायिक हिंसा के कुछ मामलों में स्थानीय कारणों ने मुख्य भूमिका निभाई। स्वतन्त्रता-पूर्व समय में स्थानीय मुद्दे, मस्जिद के सामने संगीत बजाने और गौ-हत्या तक सीमित थे, यद्यपि इन्होंने अभी भी अपनी वैधता नहीं खोई, लेकिन बदली सामाजिक-आर्थिक स्थिति में साम्प्रदायिक परिदृश्य पर नए कारण भी उभरे हैं। इनमें दो सम्प्रदायों के व्यापारी या छोटे निर्माताओं के बीच प्रतिद्वन्द्विता, तस्करी, अवैध हथियार, शराब या इसी तरह की अन्य समाज-विरोधी गतिविधियों में शामिल दो गिरोहों के बीच प्रतिस्पर्द्धा, स्थानीय औद्योगिक रईसों द्वारा कुछ साम्प्रदायिक मुद्दे उभारकर ट्रेड यूनियनों को कमजोर करने की योजना, स्थानीय निकायों या विधान सभाओं या संसदीय सीटों के चुनाव आदि मुख्य हैं।

साम्प्रदायिकता के सिद्धान्त को विकसित करने के लिए साम्प्रदायिक स्थिति की कुछ स्थानीय विशेषताओं को समझना जरूरी है। अधिकांश दंगे मध्यम आकार के कस्बों में (क्योंकि ऐसे शहरों में छोटे दुकानदार अक्सर रूढ़िवादी होते हैं और साम्प्रदायिक प्रभाव की ओर उनका झुकाव होता है) होते हैं। जिन कस्बों में मुस्लिम आबादी 20 से 50 प्रतिशत होती है वे अत्यधिक दंगा संवेदन क्षेत्र हैं। जिन कस्बों में मुसलमान व्यापारी वर्ग के रूप में होता है और वह हिन्दू व्यापारी वर्ग

के एकाधिकार को चुनौती देता है वे कस्बे साम्प्रदायिक दंगों की दृष्टि से अत्यधिक संवेदनशील होते हैं। इसके साथ ही जिन कस्बों का साम्प्रदायिक तनाव का इतिहास है वे और भी अधिक संवेदनशील होते हैं।

इन बातों को ध्यान में रखकर आसानी से समझा जा सकता है कि मुरादाबाद, अलीगढ़, मेरठ, जमशेदपुर, बनारस, भिवंडी, मालेगांव, पुराना हैदराबाद शहर आदि में साम्प्रदायिक दंगों की घटनाएं बार-बार क्यों घटती हैं। हालांकि इसका यह अर्थ नहीं है कि बड़े नगरों या बम्बई जैसे महानगर दंगों के लिए संवेदनशील नहीं हैं। बाबरी मस्जिद गिरने के बाद बम्बई और कलकत्ता में जो घटित हुआ, उसे हम सब जानते हैं। बम्बई में सांप्रदायिक दंगे प्रचण्डता से फैले। वास्तव में बम्बई में 1984 में भी दंगे हुए थे। शिवसेना के उभार से बम्बई अत्यधिक दंगा-संवेदन क्षेत्र बन गई है। हालांकि यहां हम मध्यम आकार के शहरों में साम्प्रदायिकता को हवा देने वाले कुछ कारणों पर प्रकाश डालेंगें।

वोट आधारित लोकतन्त्र में भारी अनुपात में अल्पसंख्यक आबादी वाले शहरों में अभिजात वर्ग के बीच राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता से साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिलता है, क्योंकि दोनों सम्प्रदायों का अभिजात वर्ग साम्प्रदायिक पहचान के आधार पर मतदाताओं को रिझाते हैं और उनको अपने पीछे एकत्रित करने की कोशिश करते हैं। मेरठ में लगभग 40 प्रतिशत मुसलमान हैं। विधानसभा या संसदीय चुनाव में मुस्लिम उम्मीदवार के जीतने की संभावना अधिक होने से कांग्रेस(आई) भी साम्प्रदायिक आधार पर बंट गई। कांग्रेस(आई) में हिन्दू नेतृत्व से निराशा थी उस पर भारतीय जनता पार्टी से गुप्त समझौता करने का आरोप है। 1982 के मेरठ दंगों में मन्दिर-मजार विवाद केवल दो अभिजात वर्गों की राजनीतिक आकांक्षाओं की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति थी। अपने चुनावी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए योजनाबद्ध प्रचार के जरिये हिंदुओं की मानसिकता पर प्रभाव डालने की कोशिश की गई।

बिहार शरीफ दंगा

बिहार शरीफ में 1981 के नरसंहार का मुख्य कारण राजनीतिक नहीं, बल्कि आर्थिक था। बिहार के नालन्दा जिले में स्थित इस कस्बे में लगभग 35 प्रतिशत मुस्लिम आबादी है। यहां मुस्लिम कब्रिस्तान की कुछ जमीनें थीं, इनमें से कुछ प्रयोग में नहीं आ रही थी। इस जिले में आलू की खेती जोरों पर होती थी और काफी फायदेमंद थी। कोल्ड स्टोरेज बनने से एकदम उछाल आया और परिणामस्वरूप जमीन की कीमतें आसमान छूने लगीं। कृषक जाति यादवों की आंख कब्रिस्तान की जमीन पर थी, इस तरह यादवों और मुसलमानों में उत्पन्न विवाद साम्प्रदायिक हिंसा

में बदल गया। इसके अलावा यहां कुछ नहीं था, इन दंगों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शह पर यादव मुख्य रूप से शामिल थे। कारण स्पष्ट है कि यादवों और मुसलमानों के बीच आर्थिक हितों की टकराहट थी, बाद में राजनीतिक कारण भी था। बिहार शरीफ बीड़ी-उत्पादन का मुख्य केंद्र भी है और अधिकांश मुसलमान और निम्न जाति के हिन्दू बीड़ियां बनाने में शामिल हैं। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने बीड़ी बनाने वाले श्रमिकों को ट्रेड यूनियनों में संगठित कर लिया था। साम्प्रदायिक दंगों के विस्फोट के समय यहां भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का मजबूत आधार था, उस समय यहां के एम. एल. ए. और सांसद दोनों भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लिए ये दंगे वर्ग चेतना बदलने का अवसर भी था। यहां तक कि दंगों के बाद गरीब हिन्दुओं और मुसलमानों ने वर्गीय हितों को भुलाकर अपने को साम्प्रदायिक आधार पर पहचानना शुरू कर दिया और अपने सम्प्रदाय के अभिजात वर्ग की चाल में फंसकर उनकी ओर उन्मुख हो गए।

1990 में मंडल कमीशन लागू होने के बाद राजनीतिक स्थिति एकदम बदल गई। यादव पिछड़ी जाति में आते हैं, मुसलमानों के साथ गठबंधन में हैं और अब वे भारतीय जनता पार्टी की साम्प्रदायिक राजनीति का दिलोजान से विरोध करते हैं।

गोधरा दंगा

गोधरा दंगों में विवाद मुख्य रूप से सिन्धियों और गांछी मुसलमानों के बीच था। गांछी मुसलमान परिश्रमी हैं और वे आर्थिक दृष्टि से ऊपर उठ रहे थे। पंचमहल जिले में परिवहन व्यापार में इन्होंने एकाधिकार प्राप्त कर लिया। सिन्धियों और गांछी मुसलमानों में परस्पर प्रतिद्वन्द्विता थी। दोनों सम्प्रदायों के पास मकानों की अत्यधिक कमी थी, गांछी मुसलमानों की तुलना में सिन्धी सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न थे और सिन्धियों की नजर उनकी सम्पत्ति पर थी। इसके साथ ही रेलवे-स्टेशन रोड के साथ-साथ खोखे (दुकान) बनाने को लेकर भी विवाद था। हिन्दुओं और मुसलमानों के दो विशिष्ट समुदायों से साम्प्रदायिक हिंसा की शुरुआत होती थी। गुजराती हिन्दू और अन्य गैर-गांछी मुसलमान साम्प्रदायिक हिंसा में सीधे तौर पर शामिल हो जाते थे क्योंकि वे अपने-अपने हिन्दू और मुसलमान सम्प्रदायों से अत्यधिक सहानुभूति रखते थे। लेकिन बाद के दंगों में गोधरा में हिन्दू और मुस्लिम सम्प्रदाय एक-दूसरे पर टूट पड़े, उस समय दंगों का कारण राम जन्म भूमि-बाबरी मस्जिद का राष्ट्रीय मुद्दा था।

उपरोक्त वर्णनों से देखा जा सकता है कि हिन्दू और मुसलमानों को एकरूप

अविभाजित समुदाय नहीं मानना चाहिए। हिन्दू और मुस्लिम सम्प्रदाय की विशिष्ट जातियां और बिरादरियां वास्तविक विवाद में शामिल होती हैं लेकिन वे अपने सह धर्मियों से काफी सहानुभूति प्राप्त कर लेती हैं। सांस्कृतिक और तकनीकी दृष्टि से किसी धार्मिक सम्प्रदाय को एकरूप समझना भी अत्यधिक भ्रामक धारणा है।

आर्थिक प्रतिस्पर्धा की परिणति साम्प्रदायिक तनाव में होती है और विशेषकर तब जबकि मुसलमान आर्थिक रूप से केंद्रीय हैसियत ग्रहण करने लगें। यह बहुत से स्थानों पर अनुभव सिद्ध तथ्य है। बिहार शरीफ और गोधरा के दो उदाहरण पहले ही दिए जा चुके हैं। अलीगढ़ और मुरादाबाद के और अधिक उदाहरण दिए जा सकते हैं। अलीगढ़ में ताला-उद्योग और मुरादाबाद में तांबा-उद्योग की प्रतिस्पर्धा के कारण साम्प्रदायिक तनाव पैदा हुआ। इस आधार पर कई समाज-वैज्ञानिकों ने तर्क दिया कि आधुनिक भारत में साम्प्रदायिक दंगों ने संरचनात्मक हिंसा बनाई। यह सच है इसके बावजूद कि ऊपर दिए गए कारणों को बराबर या महत्वपूर्ण समझा जाए। इससे यह नियतत्ववादी निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि यदि मुसलमान आर्थिक दृष्टि से जरा सा भी ऊपर उठे तो उन्हें इसकी कीमत अपने खून से देनी पड़ेगी। यह अपने आप में अतिवादी विचार होगा। यह इस ओर संकेत करता है कि पिछड़ी हुई पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में और भारत जैसे बहु-जातीय, बहु-साम्प्रदायिक समाजार्थिक बनावट में सीधा वर्ग संघर्ष अन्तरसाम्प्रदायिक और अन्तर्जातीय संघर्ष में प्रत्यावर्तित होने को बाध्य है, इसमें कभी वर्ग-संघर्ष हावी हो जाता है तो कभी जाति या साम्प्रदायिक कारक हावी होते हैं। असमान विकास और अत्यधिक विभाजित समाज में, भारत जैसे देश की समाजार्थिक संरचना में वर्ग-संघर्ष के यूरोपीय मॉडल को विशुद्ध और सरलीकृत रूप में लागू नहीं किया जा सकता। वर्ग-संघर्ष के बारे में एक और बात कि भारतीय स्थिति की जटिलता और विशिष्टता जाति और साम्प्रदायिक विवाद में प्रतिबिम्बित होती है। इस सन्दर्भ में साम्प्रदायिकता के खतरे को रोकने के लिए हमें दलितों, पिछड़ों और मुसलमानों के बीच गठबन्धन के प्रयासों को देखना चाहिए। उत्तर प्रदेश में इस गठबन्धन ने भारतीय जनता पार्टी और इसकी साम्प्रदायिक राजनीति को हराया। बहरहाल, इस गठबन्धन को साम्प्रदायिकता का स्थायी समाधान नहीं माना जा सकता क्योंकि इसके अपने गम्भीर अन्तर्विरोध हैं।

साम्प्रदायिकता के विशिष्ट कारणों में एक और महत्वपूर्ण कारण शक्तिशाली गिरोहों के रूप में संगठित असामाजिक तत्वों की इस सम्बन्ध में भूमिका को ध्यान में रखना चाहिए। ये गिरोह अपराध जगत में अवैध शराब, विदेशी वस्तुओं की तस्करी या अवैध हथियारों के गैर कानूनी धंधों में लिप्त हैं। एक ओर औद्योगीकरण व शहरीकरण के कारण तो दूसरी ओर हरित क्रांति के कारण अपराधी गिरोहों में

वृद्धि हुई। शहरों में कम वेतन पर काम करने वाले श्रमिकों और गुण्डा तत्वों की बढ़ोत्तरी से सस्ती अवैध शराब की मांग में वृद्धि हुई, काले धन की बढ़ोत्तरी से तस्करी की वस्तुओं की मांग में वृद्धि हुई और गांव व शहरों में बेहतर मजदूरी के लिए बढ़ते आंदोलनों को कुचलने के लिए अवैध हथियारों की मांग में वृद्धि हुई।

साम्प्रदायिक दंगों में इन आपराधिक गिरोहों की भूमिका में वृद्धि हुई है। बड़ौदा के दंगे इसका क्लासिकी उदाहरण हैं। अवैध शराब के हिन्दू और मुसलमान दो गिरोहों के बीच प्रतिद्वन्द्विता सितम्बर-अक्टूबर 1982 में साम्प्रदायिक दंगों के रूप में फैली। शिव कहार के नेतृत्व वाले एक गिरोह पर सत्ताधारी कांग्रेस के एक वर्ग का वरदहस्त था। कथित तौर पर सत्ताधारी पार्टी का यह वर्ग इन तत्वों को प्रोत्साहित कर रहा था। यह भी ध्यान देने की बात है कि आजकल चुनावों में जीत हासिल करने के लिए राजनीतिज्ञों को अपराधियों से धन और बाहुबल दोनों चाहिए। इसके बदले में वे इन गिरोहों को किसी भी कानूनी कार्रवाई से छूट दिलाते हैं। मुरादाबाद और जमशेदपुर के दंगों में भी समाज-विरोधी तत्वों का जुड़ाव जग जाहिर है। इन अनुभवसिद्ध आंकड़ों का यदि कोई संकेत है तो यही है कि भविष्य में यह खतरा और बढ़ेगा। सबसे खराब यह बात है कि अपराधी गिरोह बहुत तेजी से स्वतन्त्र सत्ता ग्रहण कर रहे हैं। राजनीतिज्ञों को उनकी उतनी ही जरूरत है जितनी कि उनको राजनीतिज्ञों की। इसे अपराध का राजनीतिकरण कहा जाए या राजनीति का अपराधीकरण। कई राज्यों के मुख्यमन्त्रियों के भी अपराधियों से सम्बन्ध होने के आरोप हैं। महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री पर भी अपराधियों से गहरे सम्बन्ध होने के आरोप लगे हैं। अपराध जगत के कुछ शक्तिशाली तत्व राजनीति में भाग ले रहे हैं। कहने की जरूरत नहीं कि यह बहुत ही खतरनाक जुड़ाव है। हालांकि मुख्य चुनाव आयुक्त टी एन शेषन द्वारा उठाए गए कदमों का कुछ सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। उन्होंने कुछ हद तक चुनाव आचार-संहिता लागू की। लेकिन स्थायी समाधान में अभी समय लगेगा। शेषन के जाने के बाद स्थिति वैसी ही हो गई है, बल्कि बढ़ गई है। शेषन की नीतियों के बावजूद राजनीति और धन के बीच गुप्त सम्बन्ध जारी है।

समसामयिक भारतीय समाज में साम्प्रदायिकता के समग्र व प्रामाणिक सिद्धान्त निर्माण के लिए सामान्य और विशिष्ट कारकों को ध्यान में रखना जरूरी है। सामान्य कारक राष्ट्रीय स्तर पर हैं जैसे—औद्योगीकरण और आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप समाज में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन और केंद्र व राज्यों में सत्तारूढ़ पार्टियों की नीतियों, तथाकथित धर्मनिरपेक्ष पार्टियों द्वारा गठबन्धन तोड़ने, चुनावों में जीत सुनिश्चित करने के लिए जाति और साम्प्रदायिक समूहों को साथ मिलाना,

अपनी सत्ता के लिए सत्तारूढ़ पार्टियों द्वारा धार्मिक तत्ववाद को जानबूझकर प्रोत्साहित करना आदि। इस संदर्भ में भारतीय जनता पार्टी और कांग्रेस द्वारा रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद का कुटिल दोहन इसका सबसे बुरा उदाहरण है। समसामयिक भारत में राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए धर्म प्रयोग का यह सबसे बुरा उदाहरण है। स्वतन्त्रता के बाद राजनीतिक शक्ति हथियाने के लिए इतने बड़े पैमाने पर पहले कभी धर्म का दोहन नहीं हुआ था। इस तरह अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए साम्प्रदायिक तनाव बढ़ाकर, जाति और साम्प्रदायिक पहचानों को प्रोत्साहन देने के लिए समस्त शासक वर्ग उत्तरदायी है। इसके लिए सिर्फ साम्प्रदायिक पार्टियों और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, जमात-ए-इस्लामी आदि साम्प्रदायिक संगठनों को ही जिम्मेवार नहीं माना जा सकता।

विशिष्ट कारकों या स्थानीय कारणों में मुस्लिम आबादी का अनुपात, दो सम्प्रदायों के व्यापारियों में प्रतिस्पर्धा का स्तर, क्षेत्र में साम्प्रदायिक दंगों का इतिहास, स्थानीय संस्थाओं की चुनावी राजनीति, समाज विरोधी तत्वों की भूमिका, स्थानीय राजनीतिक गठबन्धन आदि शामिल हैं। किसी भी साम्प्रदायिक दंगे में सामान्य और विशिष्ट दोनों कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, लेकिन इनमें विभिन्न स्थानों पर मात्रा की भिन्नता होती है। कुछ चरम स्थितियों में केवल विशिष्ट या स्थानीय तो कुछ में केवल सामान्य या राष्ट्रीय कारक मुख्य कारण बन जाते हैं। उदाहरण के लिए गोधरा और बड़ोदा के दंगों में सिर्फ स्थानीय या विशिष्ट कारक महत्वपूर्ण थे, राष्ट्रीय या सामान्य कारक गायब थे। दूसरी ओर 1969 के अहमदाबाद दंगों के काफी हद तक सामान्य कारक जिम्मेवार थे। सत्ताधारी कांग्रेस पार्टी में विभाजन से, बैंकों के राष्ट्रीयकरण में निहित वामपंथ की ओर विचारधारात्मक झुकाव से जनसंघ जैसी घोर दक्षिणपंथी विपक्षी पार्टियों ने मुस्लिम उग्रता को जोरशोर से उठाया और मुसलमानों की ''राष्ट्रीय मुख्यधारा'' में विलय से इन्कार पर इस हद तक गई कि ''भारतीय मुसलमानों का भारतीयकरण'' करने का प्रस्ताव पारित किया। उस समय कांग्रेस (ओ) ने जनसंघ से गठबन्धन किया। जगन्नाथ मंदिर के पास कुछ अवांछनीय घटनाओं का लाभ उठाकर जनसंघ ने अहमदाबाद में बड़े पैमाने पर दंगे करवाए। एक ओर इसका मकसद श्रीमती इन्दिरा गांधी की सरकार को अस्थिर करना था तो दूसरी ओर वाम-आधारित आर्थिक नीतियों की ओर से जनता का ध्यान हटाकर साम्प्रदायिकता की ओर खींचना था। अस्सी के दशक के अन्त व नब्बे के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद एक अन्य स्थूल कारक था जिससे साम्प्रदायिक आधार पर बड़े पैमाने पर खून-खराबा हुआ। इन दोनों अवसरों पर साम्प्रदायिकता देश में चर्चा का मुख्य विषय बनी। आम आदमी की दूसरी तमाम

महत्वपूर्ण समस्याएं गौण हो गईं।

निष्कर्षत: जोर देकर कहना जरूरी है कि इस देश में वर्गीय-पहचान की अपेक्षा जातिगत और साम्प्रदायिक पहचान भावुकतापूर्ण ढंग से मजबूत है और शासक वर्ग व अन्य राजनीतिज्ञ इसका पूरी तरह दोहन करते हैं। आर्थिक विकास की धीमी प्रक्रिया के कारण संघर्ष तीव्र होना अनिवार्य है—लेकिन भारत का शासक वर्ग गरीबी, बेरोजगारी, मंहगाई आदि आर्थिक समस्याओं के संघर्ष को आसानी से जाति और साम्प्रदायिक समस्याओं में तब्दील कर सकता है। यदि हम साम्प्रदायिकता का वैज्ञानिक सिद्धांत निर्मित करना चाहते हैं तो जल्दी से जल्दी इस सच्चाई को जानना अच्छा रहेगा। आगामी वर्षों में भी जाति और साम्प्रदायिक पहचानें हावी रहेंगी। साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक-हिंसा का समग्र सिद्धान्त निर्मित करते हुए इन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता।

अध्याय-3

बाबरी मस्जिद प्रकरण के बाद बम्बई दंगे

बम्बई दंगों में, शासन करने की इच्छा खो चुके तत्कालीन मुख्यमंत्री के नेतृत्व में महाराष्ट्र सरकार ने साम्प्रदायिक पागलपन का उच्चतम रिकार्ड कायम किया है। जब बम्बई के विशिष्ट नागरिकों का प्रतिनिधिमंडल उनसे साम्प्रदायिक हिंसा को नियंत्रित करने की प्रार्थना करने गया तो उन्होंने कहा कि बाल ठाकरे के पास जाओ और उनसे निवेदन करो। यह सत्ताधारियों द्वारा अपने राजनीतिक दिवालियेपन की स्पष्ट स्वीकृति थी। गुण्डों-लम्पटों की भारी भीड़ के अयोध्या में बाबरी मस्जिद गिराने के बाद 7 दिसम्बर 1992 से जनवरी 1993 तक यानि एक महीने से अधिक तक पूरी बम्बई जलती रही। शहर में स्थिति सामान्य होने में लगभग 2 महीने लगे। बम्बई में दंगे दो दौर में हुए—पहला, अयोध्या में बाबरी मस्जिद गिरने के तुरन्त बाद दिसम्बर में हुआ और फिर छोटे से अन्तराल के बाद जनवरी 1993 में हुआ। हम दंगों पर इन्हीं दो चरणों में विचार करेंगे।

पहला दौर

इसमें कोई संदेह नहीं कि बाबरी मस्जिद का ढहाया जाना राष्ट्र के लिए शर्म की बात थी। जिनके मन में कानून के शासन और संविधान के प्रति जरा भी सम्मान है उनको इसकी घोर निन्दा करनी चाहिए। इसके साथ ही केंद्र सरकार विशेषकर तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव और गृहमंत्री एस०बी०चव्हाण को इस मामले में किसी भी तरह से दोषमुक्त नहीं किया जा सकता। वे जानते थे कि उत्तर प्रदेश की कल्याण सिंह सरकार अयोध्या में मस्जिद तोड़ने से रोकने के लिए कारसेवकों पर गोली चलाना तो दूर, उनको रोकने की भी इच्छुक नहीं है। भारतीय जनता पार्टी

और विश्व हिन्दू परिषद ने पहले ही घोषणा कर दी थी कि वे 2 लाख से भी ज्यादा कार सेवकों को इकट्ठा करेंगे। मुख्यमंत्री कल्याणसिंह ने देश के उच्चतम न्यायालय को विश्वास दिलाया था कि बाबरी मस्जिद की रक्षा की जायेगी।

आश्चर्य होता है, वे मस्जिद की हिफाजत भला कैसे कर सकते थे जबकि दो लाख अत्यधिक गतिशील कारसेवक वहां जमा थे, जिन पर वह गोली चलवाने के लिए अनिच्छुक थे। ऐसा कौन है जो ऐसी भीड़ को नियन्त्रित कर सकता है और प्रधानमंत्री कैसे आश्वस्त हो गए थे ? लाठी और गोली चलाना मुश्किल था क्योंकि भारतीय जनता पार्टी ने अपने नेताओं, विधायकों और सांसदों और कुछ मन्त्रियों को कारसेवा के लिए गोलबंद किया था। यह भी कहा जाता है कि खुफिया एजेंसियों ने केन्द्र सरकार को पहले ही चेता दिया था कि मस्जिद ढहने की घटना घटित होने जा रही है। सारी तैयारियां पहले से ही की जा चुकी थीं।

खैर, 6 दिसम्बर, 1992 को अपरिहार्य घटना घट गई। भारतीय जनता पार्टी और विश्व हिन्दू परिषद् ने देश को धोखा दिया और कानून के शासन का मजाक उड़ाया। और प्रधानमंत्री ने कल्याणसिंह सरकार के आश्वासन को स्वीकार करके देश के सबसे बड़े अल्पसंख्यक समुदाय को धोखा दिया। ऐसी बर्बरता के खिलाफ मुस्लिमों का रोष प्रदर्शन स्वाभाविक था। सबसे बुरा यह था कि प्रशासन के पास इस संकट का पूर्वानुमान लगाने की राजनीतिक कल्पनाशीलता भी नहीं थी। बम्बई या किसी और जगह पुलिस को समुचित निर्देश नहीं दिये गए थे कि अयोध्या में संकट उत्पन्न होने के चलते हिंसा फूट पड़ने की दशा में कौन-कौन सी तैयारियाँ की जाएं। आत्मतुष्टि का ऐसा रवैया अत्यधिक खेदजनक था और यह विनाश का कारण बना। स्थिति से निपटने के लिए पुलिस को अपने ही तरीकों पर छोड़ दिया गया था। कुछ मुसलमान भिण्डी बाजार और बम्बई के दूसरे क्षेत्रों में सरकारी व अन्य सम्पत्ति पर हमले की छिटपुट हिंसा में शामिल हुए। तब पुलिस ने इस हिंसा को अत्यधिक सख्ती से कुचलना शुरू कर दिया।

बम्बई में ऐसे अभूतपूर्व ढंग से हिंसा फूट पड़ने के कारण के बारे में कुछ बातें करनी जरूरी है। भारत के विभिन्न भागों से लगातार लोगों के आने से बम्बई घनी आबादी वाला शहर बन गया है। इसकी आधी से अधिक आबादी झुग्गी-झोपड़ियों में रहती है। इनमें विभिन्न धर्मों, क्षेत्रों और जातियों-समुदायों की मिश्रित आबादी रहती है। ये बस्तियाँ अक्सर तंग रास्तों वाली हैं। कहीं-कहीं तो ये इतनी तंग हैं कि उनमें से एक समय में एक व्यक्ति बड़ी मुश्किल से गुजर सकता है। इस तरह शरारती तत्वों के लिए यहाँ छिपना बहुत आसान है और विधि प्रवर्तन एंजेसियों के लिए इन घुमावदार गलियों और रास्तों में उनका पीछा करना मुश्किल है।

इन मुस्लिम बस्तियों को अलग-अलग स्वयंभू बस्ती-मालिक नियंत्रित करते हैं जो यहाँ अपना शासन चलाते हैं। अक्सर प्रशासन का इनमें किसी तरह का भी दखल नहीं होता। पुलिस भी यहाँ अपनी उपस्थिति मुश्किल से दर्ज करा पाती है। इस प्रकार पुलिस या तो इन दादाओं से मिली होती है या फिर उस वक्त अपनी आंखें फेर लेती है जब वे अपनी सत्ता को लागू करते हैं। धारावी और दूसरी झुग्गी बस्तियों की अधिकतर समस्याओं की जड़ बस्ती के दादा ही होते हैं।

इसके साथ ही बेरोजगारी और मंहगाई के लगातार बढ़ने से अपराध भी बढ़ा है। बम्बई के अपराधी गिरोह लगातार बढ़ रहे हैं। इसने गिरोह-प्रतिद्वन्द्विता को बढ़ावा दिया और यदि ये गिरोह साम्प्रदायिक आधार पर विभाजित हों, जैसा कि अक्सर होता है तो और भी बुरा होता है। अक्सर इन गिरोहों के अपने-अपने राजनीतिक सम्पर्क होते हैं और ये सत्ताधारी पार्टी के विभिन्न गुटों से जुड़े होते हैं। पिछले कुछ समय से महाराष्ट्र में सत्ताधारी राजनीतिज्ञ और अपराध जगत के खूंखार सरगनाओं के बीच सांठगांठ के गंभीर आरोप लगते रहे हैं। ऐसी साठगांठ का दूसरा उदाहरण बिहार राज्य है, विशेषकर भागलपुर, जहाँ अक्टूबर 1989 में बड़े पैमाने पर साम्प्रदायिक हिंसा का विस्फोट हुआ था। भागलपुर आपराधिक गिरोहों के लिए बदनाम है। इन गिरोहों के विभिन्न राजनीतिक पार्टियों और गुटों से संबंध हैं। विभिन्न प्रतिद्वंदी गुट इन गिरोहों का अपनी राजनीतिक दुश्मनी निकालने में प्रयोग करते हैं। यहां तक कि वे अपने प्रतिद्वन्द्वी को बदनाम करने के लिए उनकी मदद से साम्प्रदायिक हिंसा करवाते हैं।

आरोप लगाया जाता है कि बम्बई में भी कुछ अपराधी सरगना शरद पवार गुट के साथ सम्बद्ध है जो तत्कालीन मुख्यमंत्री सुधाकर राव नाइक गुट से लड़ने को तैयार बैठा था। कथित तौर पर शरद पवार गुट की सुधाकर राव गुट से प्रतिद्वन्द्विता भी इन दंगों के इतने लम्बे समय तक चलने का एक कारण बनी, विशेषकर जनवरी दौर के दंगों के। 11 जनवरी, 1993 के *इंडियन एक्सप्रेस* के संपादकीय में आरोप लगाया गया था कि मुख्यमंत्री सेना को न बुलाने पर इसलिए भी अड़े हुए थे कि तब दंगे रोकने का श्रेय उनके प्रतिद्वंद्वी शरद पवार को जाता। यह सच हो भी सकता है और नहीं भी लेकिन निश्चित रूप से बहुत से राजनीतिक विश्लेषकों को ऐसा ही लगता है।

शिवसेना की भी दंगों की आग भड़काने में सक्रिय भूमिका रही। कारण स्पष्ट है। शिवसेना बम्बई समेत पूरे राज्य में अपनी क्षेत्रीय अपील खो चुकी थी। 1984 के बम्बई-भिवंडी दंगों से इसने व्यवस्थित तरीके से हिन्दुत्व मंच का दोहन शुरू किया। *टाइम्स ऑफ इंडिया* के भूतपूर्व संपादक दिलीप पडगांवकर ने महसूस किया

कि मराठी लोग बाहरी व्यक्तियों से बहुत ही चिढ़े हुए थे। 'दिस इज नॉट बाम्बे' लेख में उन्होंने लिखा कि ''मेरी लम्बे समय से आंशका थी कि एक दिन यह शहर आग की लपटों में होगा। जानते हो क्यों? मराठी लोग काफी सालों से हम बाहरी लोगों से चिढ़े हुए हैं। वे हमारी सफलता से ईर्ष्या करते हैं, उनके दिमागों में यह बात बैठाई जा चुकी है कि मद्रासियों, मुसलमानों और उत्तर प्रदेश के भइयों ने स्थानीय लोगों की आजीविका छीन ली है इसलिए जब भी उनको मौका मिला तो वे 'बाहरी लोगों' को सबक सिखाने निकल पड़े। दंगों के बाद बम्बई से जो लोग भागकर गए उनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। परन्तु स्पष्ट है कि मुसलमानों ने सबसे अधिक कष्ट सहे। वास्तव में मराठी पुलिस बुरी तरह से उनके पीछे पड़ गई थी, विशेषकर दिसम्बर दंगों में। (देखें ह्वेन बांबे बर्न्ड, बम्बई, 1993, पेज 5) बहरहाल इस मामले को अन्य राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में भी देखने की आवश्यकता है। यद्यपि भारतीय जनता पार्टी आजकल साम्प्रदायिक भावनाओं का भद्दे तरीके से दोहन कर रही है, इस मामले में शिवसेना उससे भी दो कदम आगे है। यदि शिव सेना को भारतीय जनता पार्टी के मुकाबले अपनी बेहतरी सिद्ध करनी है तो उसे साम्प्रदायिकता के प्रसार में इसे (भारतीय जनता पार्टी को) पछाड़ना होगा और शिवसेना ठीक यही कर रही है। अन्यथा वह भारतीय जनता पार्टी से प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकती, जिसका कि महाराष्ट्र में काफी प्रभाव है। तब कोई आश्चर्य नहीं कि बाल ठाकरे ने शेखी बघारी कि उसके शिव सैनिकों ने बाबरी मस्जिद गिराई है, यद्यपि बाद में पता चला कि बाबरी मस्जिद को गिराने से पहले उसके आदमी अयोध्या नहीं पहुंचे थे। बाबरी मस्जिद के गिरने के बाद उसने यह भी घोषित किया था कि यह बहुप्रतीक्षित समाचार सुनकर वह अपने को संसार में सबसे खुश व्यक्ति महसूस कर रहा है।

इसके अलावा, यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि महाराष्ट्र का कोई भी मुख्यमंत्री फिर चाहे वह ताकतवर ही क्यों न हो, बाल ठाकरे को छू नहीं सकता, इसके उलट उन्हें तुष्ट ही करना पड़ता है। सुधाकर राव नाइक ने पहले इससे हटने की कोशिश की और शिवसेना के प्रमुख नेता भुजबल को उसके साथियों समेत अलग कर लिया। लेकिन जल्दी ही उसे पवार समर्थक असंतुष्टों के गुट का सामना करना पड़ा और अपनी योजनानुसार शिवसेना को और तोड़ने की बजाय नाइक ने बाल ठाकरे से समझौता कर लिया। नाईक की स्थिति इतनी कमजोर हो गई थी कि 7 दिसम्बर को जब सांप्रदायिक दंगे शुरू हुए और शिवसेना के मुखपत्र ''सामना'' में भड़काऊ संपादकीय और लेख आने शुरू हो गए तो पत्र के खिलाफ कोई कार्रवाई करने की बजाए उसने बाल ठाकरे से अनुरोध किया कि शान्ति को बनाए रखने के

लिए ऐसे लेख न लिखें। यह स्पष्ट दिखाता है कि नाईक प्रशासन की स्थिति कितनी दयनीय हो गई थी। इससे पुलिस के उस हिस्से को गलत संकेत गए जो शिवसेना से सहानुभूति रखता था। ऐसे प्रशासन पर कैसे विश्वास किया जा सकता है कि वह शरारती तत्वों के खिलाफ प्रभावी कदम उठाएगा।

6 दिसम्बर 1992 को जब भाजपा विहिप और आर एस एस के गुण्डों ने बाबरी मस्जिद को धराशायी कर दिया तो आम तौर पर पूरे राष्ट्र को और विशेष रूप से मुसलमानों को गहरा सदमा लगा। यहाँ तक कि उदार और प्रगतिशील मुसलमानों ने महसूस किया कि जैसे द्वि-राष्ट्र का सिद्धांत बांग्लादेश के मलबे तले दफन हो गया था उसी तरह भारतीय धर्मनिरपेक्षता का सिद्धांत बाबरी मस्जिद के मलबे तले दफन हो गया। उन्हें भारतीय जनता पार्टी, विश्व हिन्दू परिषद, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कारसेवकों की गुण्डई ने इतना द:ुख नहीं पहुंचाया जितना कि प्रधानमंत्री नरसिम्हाराव के अनिर्णय और निष्क्रियता ने। उन्होंने महसूस किया कि केंद्र सरकार की निष्क्रियता बहुत बड़ा धोखा था। इतिहास इसके लिए उन्हें कभी माफ नहीं करेगा।

जैसे ही मस्जिद गिराये जाने की खबर फैली, बम्बई के तमाम इलाकों के मुसलमान सड़कों पर आ गए और घरों, बसों, टैक्सियों और अन्य सरकारी सम्पत्ति पर हमला करके अपना रोष प्रकट किया। उन्होंने कुछ क्षेत्रों में मंदिरों पर भी हमला किया और उनको आंशिक नुकसान पहुंचाया। उनमें से कुछ समाज विरोधी तत्वों ने हिन्दुओं की दुकानों को भी लूटा। बहरहाल यदि पुलिस समझदारी से काम लेती तो हिंसा को रोका जा सकता था और शरारती तत्वों को गिरफ्तार करके जान और माल के नुकसान को कम किया जा सकता था। लेकिन अधिकतर मामलों में पुलिस ने अंधाधुंध गोलियाँ चलाई और काफी निर्दोष लोग मारे गए।

भिंडी बाजार—नल बाजार क्षेत्र

बी०बी०सी० के समाचार बुलेटिनों में बार-बार मस्जिद का मलबा दिखाया गया और 7 दिसम्बर की सुबह दंगे शुरू हो गए। भारत जैसे देश में अप्रतिबन्धित खबरें कई बार तबाही मचा सकती है। यहाँ तक कि किसी विशेष समुदाय के मरने वाले लोगों के नामों की चुनिंदा रिपोर्ट भी काफी नुकसान का कारण बन ज़ाती है। इसलिए रिपोर्टिंग के लिए कुछ मर्यादाओं को ध्यान में रखना आवश्यक है। तमाम लोगों ने इसे महसूस किया कि बी०बी०सी० के बुलेटिनों में बाबरी मस्जिद का ढहाया जाना बार-बार न दिखाया जाता तो नुकसान को कम किया जा सकता था। मुसलमानों के एक हिस्से ने भिण्डी बाजार के इलाके में पत्थर फेंकना और हिन्दुओं की दुकानों को लूटना शुरू कर दिया था। जे०जे० अस्पताल के नजदीक उन्होंने

ट्रैफिक संकेतों, बस अड्डों, और कुछ बसों को नुकसान पहुंचाया। उन्होंने इब्राहिम रहमातुल्ला रोड पर हिन्दुओं की छः दुकानें लूट लीं। इसके अलावा उन्होंने मौलाना शौकत अली रोड और उन्डेरिया स्ट्रीट के कोने पर स्थित सुलेमान पुलिस चौकी को बहुत अधिक नुकसान पहुँचाया।

यह कुछ घंटों तक चलता रहा और इसके बाद दोपहर के 12 बजे के बाद पुलिस ने गोलियाँ चलाईं। जिस तरह से लोग मरे उससे लगता है कि गोलियाँ भीड़ को तितर-बितर करने के लिए कम और मारने की नीयत से अधिक चलाई गई थीं। 22 वर्षीय महिला नसीम बानो, जिसकी शादी अभी दो साल पहले ही हुई थी, भवन के दूसरे तल पर अपने घर में कपड़े सुखाने की तार से तौलिया उतार रही थी कि कनपटी पर गोली लगी और गोली उसके सिर से पार हो गई और वह उसी समय मर गई। यह लगभग दो-ढाई बजे की बात है। इसी तरह 17 वर्षीय मुख्तार अहमद तेली मोहल्ले में अपने पिता को ढूंढने के लिए घर से बाहर निकला। पुलिस ने मौलाना शौकत अली रोड से गोली चलाई और उसे भी कनपटी पर गोली मारी और गोली ने उसका दिमाग छलनी कर दिया। उसने अपनी माँ की गोद में दम तोड़ दिया। एक और लड़का जिसका नाम पता नहीं लग सका उसे भी गोली लगी, वह 22 वर्ष का था और अस्पताल में उसकी मौत हो गई। यह दोपहर के आस-पास घटित हुआ। यह सब सुलेमान पुलिस चौकी पर मुसलमानों की भीड़ के हमले के बाद हुआ, इस भीड़ ने पुलिस की मोटर-साइकिल जला दी, और दो सिपाहियों पर हमला किया, जिन्हें सामने के भवन में रह रहे मुसलमानों ने बचाया। खांदिया गली के भवन नं. 25 में रहने वाले 11वीं कक्षा के विद्यार्थी 17 वर्षीय जहीद हुसैन खान के बायें कंधे पर निशाना साधकर गोली चलाई गई और गोली उसका हृदय चीरकर निकल गई। वह अस्पताल ले जाते हुए रास्ते में ही मर गया। एक और 32 वर्षीय व्यक्ति असगर को उस वक्त गोली लगी जब वह मौलाना आजाद मोड़ नं० 10 पर लगभग सुबह 11.30 बजे पेशाब करने के लिए बाहर आया था। उसकी भी मौत हो गई। उसके साथियों ने हमें बताया कि हिन्दू कामाठीपुरा की तरफ से और मुसलमान मौलाना आजाद रोड की तरफ से पत्थर और बोतलें फेंक रहे थे। यह सामान्य शिकायत थी कि पुलिस केवल मुसलमानों पर गोलियाँ चला रही थी।

एस वी पी रोड, पर चार नल के नजदीक मुस्लिमों ने सात कारें जला दीं और 38 दुकानें लूट लीं। उस दिन इस क्षेत्र में पुलिस गोलीबारी से सात मुसलमान और एक हिन्दू मारा गया। कम से कम पुलिस बल का प्रयोग करके स्थिति पर नियन्त्रण करने वाले पुलिस अधीक्षक मि० जेन्दे के अनुसार इसी तरह गोधरी मोहल्ले में कर्फ्यू में छूट के दौरान बाहर निकले एक पुलिस सिपाही पर गोलियां चलाईं और

17 गोलियों से उसका शरीर छलनी हो गया। उनके अनुसार पुलिस ने लगभग 4.30 बजे गोलीबारी बन्द की और इसके बाद इस जगह कोई तनाव नहीं हुआ।

नल बाजार मार्किट

नल बाजार मार्किट, पुराने हिन्दू मन्दिर गोल देवल के पास भीड़ भरा बाजार है। इसमें हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों की मांस, सब्जी और अन्य सामानों की दुकानें हैं। अधिकतर दुकानें मुसलमानों की हैं। यह बहुत बड़ी मार्किट है। इसका अच्छा व्यापार होता है। इस बाजार में 512 दुकानें हैं। इन दुकानों में से 40 हिन्दुओं की और बाकी मुसलमानों की हैं। 7 दिसम्बर को दोपहर के लगभग 12 बजे दुकानें लूटने के बाद इस बाजार में आग लगा दी गई। दुकानदार अपनी जान बचाने के लिए भागे। सारी मार्किट जल कर राख का ढेर हो गई। लोबान गली की भी सारी दुकानें जल गईं और आग की लपटें तेजी से सड़क के दूसरी ओर भी फैल गईं और बहुमंजिल इमारत हुसैनी नैसन पूरी तरह नष्ट हो गई। इसमें बहुत से मारवाड़ी परिवार रहते थे। यह पूरी तरह रहस्य है कि नल बाजार मार्किट में आग किसने लगाई? हमने मार्किट के नजदीक के बहुत से लोगों से बातचीत की परन्तु अधिकतर ने अपनी अनभिज्ञता प्रकट की। सभी ने कहा कि जब शरारती तत्वों ने आग लगाई तो वे वहां नहीं थे। क्योंकि वहाँ हिन्दू और मुसलमान दोनों की दुकानें इकट्ठी थीं तो यह रहस्यमय है कि यह कुकृत्य किसने किया। सभी ने कहा कि जब शरारती तत्वों ने आग लगाई तो वे वहाँ नहीं थे। कुछ मुसलमानों का कहना है कि यह हिन्दू शरारती तत्वों का काम है जो गोल देवल के पीछे से आये थे। मुसलमान उस मार्किट पर आग क्यों लगायेंगे जिसमें चार सौ दुकानें मुसलमानों की हों? इससे भी अधिक हिन्दुओं की अधिकांश दुकानें सब्जी की थीं जबकि मुसलमानों की महंगे और खराब न होने वाले सामान की थी लेकिन कोई भी विश्वासपूर्वक नहीं कह सकता कि अपराधी कौन है?

गोल देवल के पीछे अधिकांश मकान हिन्दुओं के हैं। पुलिस का वहाँ गोली चलाना दर्शाता है कि हिन्दू (शिव सैनिक पढ़ें) विध्वंसक थे। गोल देवल के पीछे मुसलमानों की पान, कैसेट, रेडियो व टेलीविजन मरम्मत की कुछ दुकानें थीं, उनको लूटा और जला दिया गया। मुसलमानों की सभी 11 दुकानों का यही हाल हुआ। पुलिस ने शरारती तत्वों पर गोलियाँ चलाईं और वी॰ पी॰ रोड पुलिस थाने के अनुसार दस लोग मारे गए। इसमें मुस्लिम बहुल टैंक क्षेत्र के भी दो लोग थे। ऐसा लगता है कि पुलिस गोलीबारी से सभी हिंदू मारे गए। स्थानीय शिव सेना के बोर्ड ने मारे जाने वालों का नाम प्रदर्शित किया। पुलिस सूत्रों के अनुसार उस दिन

पी०एस०आई० शेख समेत पुलिस के चार सिपाही घायल हुए। उसके नजदीक ही मुस्लिम बहुल क्षेत्र मोहम्मद अली रोड भी तनावग्रस्त हुआ था। 6 दिसम्बर की आधी रात को यहाँ सबसे पहली घटना घटी। मिनारा मस्जिद के पास पुलिस की वायरलेस गाड़ी पर हमला किया गया और पुलिस ने गोलीबारी की।

लेकिन दंगों के दूसरे दौर जनवरी, 1993 में यह और इसके आसपास का क्षेत्र बुरी तरह प्रभावित हुआ। 6 जनवरी को डोंगरी क्षेत्र में दो मथाड़ी मजदूरों (जो सिर पर बोझ उठाते हैं।) की हत्या कर दी गई। कोई नहीं जानता कि उनकी हत्या किसने की। यूनियन की प्रतिद्वन्द्विता का मामला माना गया। लेकिन अफवाह यह फैलायी गई कि उनकी हत्या मुसलमानों ने की है। उस दिन शौकत अली रोड पर फिर मुसलमानों की भीड़ ने हिन्दू टैक्सी ड्राइवर पर हमला किया। इसका पता लगाने के लिए कि वह हिन्दू है या मुसलमान, भीड़ टैक्सी ड्राईवर की पैन्ट उतरवाना चाहती थी और उस शाम डंकन रोड इलाके में बहुत से टैक्सी ड्राइवरों को छुरा घोंप दिया गया। अग्नि शामकों की कालोनी पर, जिसमें सभी हिन्दू थे, कुछ मुसलमानों ने पेट्रोल बम फेंके। इसके बदले में हिन्दुओं ने डोंगरी क्षेत्र में पेहलवी बेकरी और बहुत सी अन्य दुकानों को आग लगा दी।

गोवंडी और अत्यधिक पुलिस गोलीबारी

पूर्वी उपनगर चेम्बूर के पास गोवंडी बम्बई के सबसे बड़े झुग्गी झोपड़ी क्षेत्रों में से एक है जिसमें काफी मुसलमान आबादी है। आमतौर पर बहुत गरीब और समाज में बिल्कुल हाशिये पर पड़े लोग यहाँ रहते हैं। यहाँ की लगभग 70 प्रतिशत आबादी मुस्लिम है। काफी प्रभावित लोगों से हमारी बातचीत दर्शाती है कि पुलिस बुरे तरीके से लोगों से पेश आई और मुसलमानों को अपना विशेष निशाना बनाया। इसके प्रमाण बिल्कुल स्पष्ट है जिनसे हमने बातचीत की कोई वजह नहीं थी कि वे गलत बात बताते। उनमें राजनीतिक जागरूकता लगभग न के बराबर थी और अपना सारा समय कष्टपूर्ण जीवन से निकलने में लगाते थे। हमने बहुत सी महिलाओं से बातचीत की जिन्होंने अपनी बात में सच्चाई प्रस्तुत की। हमारे विचार में इनके द्वारा दिए गए कथन पर शक करने की कोई वजह नहीं है।

भिण्डी बाजार की तरह ही गोवंडी के विभिन्न क्षेत्रों में भी यह सब 7 दिसम्बर को शुरू हुआ। गोवंडी के मुसलमानों ने बाबरी मस्जिद को गिराने पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए सुबह-सुबह छिट-पुट हिंसा की। इन्होंने पत्थर फेंके और कुछ हिन्दू-मन्दिरों को नुकसान पहुँचाया। सुबह 6.30 बजे शिवाजी नगर में कमलाबाई झोपड़पट्टी के प्लाट न० 19 पर बने हनुमान मन्दिर पर हमला हुआ। वहाँ से पत्थर

की मूर्ति को उखाड़कर हटा दिया। मन्दिर के दूसरे भागों को भी नुकसान पहुँचाया। हमने इस क्षेत्र के काफी हिन्दुओं से बात की, लेकिन सबने यह कैसे हुआ इसकी जानकारी होने से इनकार किया। अधिकांश ने महसूस किया कि कुछ बाहरी लोग थे; लेकिन उनकी व्यक्तिगत पहचान और धर्म के बारे में पूरे विश्वास से नहीं कहा जा सकता। इस क्षेत्र के मुसलमानों ने भी किसी तरह की जानकारी होने से इनकार किया, बल्कि कुछ ने जोर देकर कहा कि यह उनका काम नहीं है। लेकिन सभी परिस्थितगत साक्ष्यों से हमें लगता है कि कुछ युवा मुसलमानों ने समाज-विरोधी तत्वों की सहायता से इस मंदिर को नुकसान पहुँचाया होगा। इसी तरह दो और मन्दिरों को भी नुकसान पहुँचा लेकिन उतना नहीं जितना कि हनुमान मंदिर को। दो पुलिस सिपाहियों को भी मार दिया गया और उनकी लाशों को गन्दे नाले में फेंक दिया गया। शव गली-सड़ी हालत में बरामद हुए। ऐसा लगता है कि इसने पुलिस को बदला लेने के लिए उत्तेजित किया।

गोवंडी क्षेत्र में यह संकट की शुरुआत थी। इसके बाद दंगे बैंगनबाड़ी में संजयनगर स्थित नूर-ए-इलाही मस्जिद के पास से शुरू हुए। मस्जिद के इमाम मौलाना हन्नान अशरफ ने हमें बताया कि जब प्लॉट न० 16 की ओर से कुछ शिव सैनिक पुलिस के साथ आए तो मुसलमान मस्जिद की सुरक्षा कर रहे थे। मुसलमानों के सामने आने पर वे पुलिस को आगे करके एक तरफ हो गए। यह 8 दिसम्बर के प्रातःकाल की बात है; सुबह लगभग 7 बजे पुलिस ने मुसलमानों पर गोलीबारी शुरू कर दी। एक लड़का सिबटे नवी मारा गया और कई लोग घायल हो गए। पुलिस वाले आगे बढ़े और संजयनगर के स्कूल नं० 4 के निकट 25 वर्षीय रहीमुल्ला पुलिस की गोली से मारा गया। जैसे ही अफरा-तफरी शुरू हुई, पुलिस की गोली से तीन व्यक्ति सैयद कजीम अली, (25 वर्ष) शमीम (22 वर्ष) और (18 वर्षीय) नसीम मारे गए। लगभग 9:30 बजे के करीब एक और 25 वर्षीय व्यक्ति गोली लगने से घायल हो गया।

इमाम के अनुसार तब पुलिस मस्जिद में घुस गई और उसे आग लगा दी। इमाम समेत मस्जिद में कुल चार व्यक्ति थे। छः पुलिस वाले मस्जिद में घुस चुके थे। उन्होंने अन्दर रह रहे लोगों को बन्दूक के कुन्दे से पीटा और पंक्ति में खड़े होने को कहा। उन्होंने कहा कि वे पहले मस्जिद को जलने से बचाना चाहते हैं। पुलिस ने कहा कि मस्जिद को जलने दो। लेकिन जब उन्होंने आग बुझाने पर जोर दिया तो पुलिस ने ट्रस्टी अब्दुल गफ्फार पर गोली चलाई, वह मर गया। उसे छाती में गोली लगी। दूसरे व्यक्ति मोहम्मद याकूब को टांग में गोली लगी। तीसरे व्यक्ति हाफीज को पुलिस सारे रास्ते पीटते हुए ले गई। वह भी मर गया। मस्जिद के इमाम को भी

राइफल के कुन्दे से पीटा गया। मस्जिद जल गई थी और उसके आस-पास की तीन दुकानें राख हो गईं।

तब सुबह 10 बजे के करीब इस क्षेत्र में कर्फ्यू लगा दिया गया। कर्फ्यू के बाद हाजी बैतुल्लाह की लकड़ी की दुकान जला दी गई। इसके मालिक ने कहा कि यह आग **एस आर पी** ने स्वयं लगाई। इसके मालिक और अन्य लोगों ने आग बुझाने की कोशिश की तो उन्होंने गोलियाँ चलानी शुरू कर दीं। 28 वर्षीय सैयद काजिम हुसैन इसके नजदीक वाली गली में स्थित अपने मकान में खड़ा था, उस पर गोली चलाई गई। उसे अस्पताल में ले जाया गया, जहाँ तीन दिन बाद उसकी मृत्यु हो गई।

शिवाजी नगर प्लाट 31, डी गली में पुलिस करीब 4.30 बजे पहुँची। कुछ लोग चॉल में थे और कुछ सड़क पर खड़े थे। बिल्कुल स्पष्ट था कि इस क्षेत्र में कोई समस्या नहीं थी। पुलिस ने गोलीबारी शुरू कर दी और सड़क पार कर रहा एक मुसलमान मारा गया। दो और व्यक्ति, जिनमें से एक 18 वर्षीय जफर, जो शौचालय में था, पुलिस ने दरवाजे तोड़े और कथित तौर पर गोली चलाकर उसे मार डाला। एक और व्यक्ति जो कि हिन्दू था चाल से बाहर देख रहा था, वह भी पुलिस की गोली से मारा गया। एक महिला ने हमें बताया कि पुलिस उसके बेटे शेख इस्लाम को उसके घर से खींचकर ले गई, उसे गोली मारी और उसे कहीं दूर ले गई। अभी तक उसका पता नहीं चला।

ऐसा ही मामला बैंगनबाड़ी में सुभाषचन्द्र बोस नगर, प्लाट न० 40 ए से रिपोर्ट हुआ। उसकी माँ ने हमें बताया कि 30 वर्षीय आफताब आलम को पुलिस ने घर से खींच कर बाहर निकाला और कथित तौर पर गोली मार दी। महिला के अनुसार आफताब को हाथ और पेट पर गोली मारी गई। इन्सपेक्टर निक्कम की अगुवाई में पुलिस के छः सिपाही थे। उन्होंने घर की दीवारों पर भी गोलियां चलाईं। पुलिस ने घर के बाहर खड़ी टैक्सी को आग लगा दी। हमने टैक्सी का अधजला हिस्सा देखा। इसी क्षेत्र में पुलिस ने मकान न० 115 में रह रहे 30 वर्षीय नवाब अली को गोली मारी। उसे अपने घर से बाहर खींचकर गोली मारी गई थी। पुलिस ने करीब 25 वर्षीय जलील नाम के व्यक्ति को घर से बाहर निकाल कर गोली मारी, लेकिन सौभाग्य से वह बच गया। पुलिस ने मंसूर खान के मकान न० 3 को आग लगाई और वह राख में बदल गया। इसी के साथ लाला भीखाराव जी भालेराव का मकान भी जल गया।

18 वर्षीय मोहम्मद सगीर को भी उसके मकान न० 8 से बाहर खींचकर थोड़ी दूरी पर ले जाकर गोली मार दी गई। उसकी लाश का पता न चल सका। इसी तरह अकबर अली और हमीद को दौड़ाया गया और फिर गोली मार दी गई, लेकिन दोनों

बच गए। फारुख शेख के मामले में, पुलिस उसे घर से खींचकर थोड़ी दूरी पर ले गई और गोली से मार दिया। एक प्रत्यक्षदर्शी ने बताया कि उसे गोली मारते हुए पुलिस "जय श्रीराम" के नारे लगा रही थी। इसी तरह मोहम्मद महबूब शेख को भी गोली मारी गई लेकिन वह सिर्फ जख्मी हुआ।

बैंगनवाड़ी के छिकल्लवाड़ी क्षेत्र में तनाव 7 दिसम्बर को दोपहर 12 बजे के करीब शुरू हुआ। शरारती तत्व, जिन्हें पहचाना नहीं जा सका, बाहर से आए और बस्ती में स्थित मंदिर को जला दिया। पुलिस मौके पर लगभग 12.15 बजे पहुँच गई। एस आर पी ने कई घरों के दरवाजे तोड़कर लोगों को बाहर खींचा और उन्हें पीटा। प्लाट न० 40 के कमरा 6-7 के मोहम्मद उमर के 27 वर्षीय भतीजे को गोली से मारा और मोहम्मद अनवर को बुरी तरह पीटा गया। मोहम्मद उमर को भी पीटा गया। इस मकान के पीछे रहने वाले एक और व्यक्ति को भी कथित रूप से गोली मारी गई; लेकिन उसकी पहचान नहीं हो सकी। वस्त्रों की एक छोटी सी फैक्ट्री लूट ली गई। अफसरी बेगम ने हमें बताया कि उसकी झोपड़ी पूरी तरह नष्ट कर दी गई। हमने स्वयं झोपड़ी के अवशेष देखे।

एस ए रशीद नाम के व्यक्ति ने हमें बताया कि आठ दिसम्बर को प्रात: 10 बजे पुलिस ने गोलीबारी शुरू की जिसके कारण पाँच मुसलमान मरे। छ: व्यक्ति घायल हो गए। दत्ता मन्दिर, प्लॉट न० 30, बी.ई.एस.टी. चाल के हिन्दुओं के कुछ मकानों के साथ मुस्लिम क्षेत्र जलाया गया। पुलिस की गोलीबारी शुरू होने के बाद अज्ञात लोगों (मुसलमान माना गया) ने इस क्षेत्र के मंदिर को नुकसान पहुँचाया। असलम खान और अफसरी बानू ने हमें बताया कि पुलिस ने कर्फ्यू लगाने के बाद प्रात: 11 बजे उनके घरों को जला दिया। उसी दिन पुलिस ने मदरसा जामिया कादरिया के आसपास के मकानों पर गोलियाँ चलाईं। दीवारों पर गोलियों के निशान मौजूद हैं।

बांद्रा प्लॉट, बैंगनवाड़ी में 7 दिसम्बर को दंगे हुए। हमें बताया गया कि प्लॉट न० 37ए, का सलीम उसमान अपने कमरा नंबर ई-8 के नजदीक खड़ा था। पुलिस ने उस पर 2-3 बजे गोली चलाई और जब वह दौड़ा तो पुलिस भी उसके पीछे दौड़ी और उसे दुबारा गोली मारी गई। वह अस्पताल में उसी दिन मर गया। 40 वर्षीय सलीम नाम का व्यक्ति 11 बजे पुलिस की गोली से मारा गया। जब वह अपने काम से घर लौट रहा था। इसी तरह करीब 40 वर्षीय मोहम्मद यूनुस को लगभग इसी समय गोली मारी जब वह काम पर था।

कूड़ा-कचरा डालने वाले मैदान के निकट कमला रमन नगर, गोवंडी में विनाशकारी घटना घटी। इस क्षेत्र की 46 झोपड़ियों में 44 मुसलमानों की और 2 हिन्दुओं की थीं। वहाँ के निवासियों के अनुसार 8 दिसम्बर को दोपहर लगभग 1 से

1.30 बजे के बीच पुलिस आई और पहले गोली चलाना शुरू किया और बाद में बिना किसी कारण आग लगा दी। जब हमने मौके पर जा कर देखा तो वहाँ एक झोपड़ी भी नहीं बची थी। इसमें टैक्सी ड्राइवर हनीफ अहमद रमजान शेख की झोपड़ी भी जल गई थी, उसके अनुसार पुलिस की गोलीबारी से पाँच लोग घायल हुए जिनमें दो हमारे पहुंचने तक भी गायब थे। इसी क्षेत्र में कुछ महाराष्ट्र के लोग भी रह रहे थे; लेकिन उनकी झोपड़ियों को छोड़ दिया गया और उनमें से किसी को भी गिरफ्तार नहीं किया गया।

प्लाट नं. 6 शिवाजी नगर, की 35 वर्षीया अमीर बानो ने हमें बताया कि करीब 2.30 बजे कुछ लोग आए और घर का दरवाजा तोड़ दिया। उनके पास तलवारें, गुप्तियां, सरिये थे और दो पुलिस के सिपाही भी उनके साथ थे। उसे घर से बाहर निकालकर, पुलिस की उपस्थिति में उस पर वार किया गया। उसे पीठ पर गहरे घाव हुए और उसे उसके भाई ने अस्पताल में दाखिल करवाया। उसके घावों को सीने में 45 टांके लगे। इसी तरह 20 वर्षीय मोहम्मद आरिफ को लॉटस कॉलोनी के प्लाट नं० 14 के कमरा न० 930 में पुलिस ने गोली मारी और उसे दूर ले गई। उसके बाद से ही उसका कुछ पता नहीं लगा। पुलिस सूत्रों के अनुसार गोवंडी क्षेत्र में कुल 58 लोग मुख्यत: पुलिस गोलीबारी में मरे, लॉटस कॉलोनी में 10, और चिकलवाड़ी, इन्दिरा नगर, उमेरखादी और ब्रांदा प्लॉट आदि में 48 लोग मरे। हालांकि गोवंडी राहत समिति के अनुसार 92 व्यक्ति पुलिस गोलीबारी से मरे और 210 लोग लाठीचार्ज में घायल हुए। 21 व्यक्ति गुम हैं; 5 वाहन जलाए या तोड़े-फोड़े गए और 45 पान-बीड़ी की दुकानें लूटी गईं या नष्ट कर दी गईं और एक मस्जिद भी जलाई गई। जहाँ गरीब से गरीब लोग रहते हैं वहां पुलिस ने जो भूमिका निभाई उसे कोई भी भली-भांति देख सकता है। पुलिस ने न जिंदा व्यक्ति के लिए आदर दिखाया और न मृत के लिए। कर्फ्यू के दौरान 11 महीने के बच्चे का दवाई के बिना मर जाना सबसे अधिक कारुणिक मामला था। बच्चे की माँ सायरा बानो ने जब पुलिस से सम्पर्क किया और कर्फ्यू के दौरान अपने मृत बच्चे को दफन करने की अनुमति चाही तो पुलिस ने उसे कचरे में फेंकने के लिए कहा। तब बच्चे को नजदीक के कूड़ा-कचरा फेंकने वाले मैदान में कूड़े-कचरे में दबा दिया गया। बच्चे का फूला हुआ शरीर सतह पर आ गया और उसे फिर कचरे में दबाना पड़ा।

जमायत-अल-उलेमा के सदस्य मौलाना मोहम्मद कासिम के अनुसार निर्दोष लोगों को गोली मारने के पीछे मुख्य व्यक्ति सीनियर इंस्पेक्टर भागवत राव पाटिल था। हालांकि पुलिस उप-अधीक्षक पवार और त्यागी ने व्यवस्था बहाल करने में मदद की और उन्होंने पाटिल को, जोकि पागलपन का बहाना बनाकर, इलाज के

लिए अस्पताल में दाखिल हो गया था, को बुरी तरह से डांट फटकार लगाई।

पीपुल्स जांच आयोग के जस्टिस होसपेट सुरेश और जस्टिस एस.एम. दाउद ने गवाहियों की विस्तृत जांच की। उन्होंने भी गोवंडी में पुलिस ज्यादतियों को माना।

''साक्ष्य संकेत करते हैं कि देवनार पुलिस थाना और शिवसेना के बीच स्पष्ट मिलीभगत थी। कुछ क्षेत्रों में पुलिस ने लोगों पर हमला किया और शिवसेना के साथ मिल कर उनके घर जलाए थे। कुछ अन्य मामलों में पुलिस ने पीड़ितों पर हमला करते हुए स्वयं ''जय श्रीराम'' और ''जय शिवाजी'' के नारे लगाए थे। हमारे सामने प्रस्तुत की गई एक रिपोर्ट के अनुसार देवनार पुलिस स्टेशन के सब-इन्सपेक्टर अरुण साखरकर शिवाजी नगर शिवसेना शाखा प्रमुख दिनकर साखरकर के पुत्र हैं।''

बहराम बाग, जोगेश्वरी (पश्चिम)

जोगेश्वरी पश्चिम और पूर्व, साम्प्रदायिक दृष्टि से अत्यधिक संवेदनशील क्षेत्र है। पश्चिम हाई वे के पूर्व की ओर हिंदू-मुसलमानों की विशाल झुग्गी-झोपड़ी वाली मिली-जुली आबादी है जो परस्पर प्रेम से रहते रहे हैं। बाबरी मस्जिद गिरने से उत्पन्न तनाव में 6 से 11 दिसम्बर तक यह क्षेत्र बुरी तरह प्रभावित था। बेहराम बाग जोगेश्वरी-पश्चिम में है। इसमें हिन्दुओं और मुसलमानों की मिली-जुली आबादी रहती है। कुल आबादी का 35 प्रतिशत मुसलमान हैं।

बाबरी मस्जिद गिराने के प्रति अपना रोष प्रकट करने के लिए आठ दिसम्बर को रात करीब 11 बजे मुसलमानों ने पत्थर फेंकने शुरू किए लेकिन पत्थर फेंकने का कोई विशेष लक्ष्य नहीं था। लिंक रोड के नजदीक खड़े तीन-चार वाहनों पर भी पत्थर पड़े लेकिन कोई नुकसान नहीं हुआ। कुछ समय तक पत्थर फेंकना जारी रहा। लगभग दो घण्टे के बाद, दो जीपों में पुलिस आ गई। पुलिस एक मकान में घुस गई, यह घर और फर्नीचर की दुकान थी। इस मकान में छ बढ़ई रहते थे। पुलिस ने उन पर गोलियां चलाईं, चार लोग मारे गए और दो घायल हुए।

लेकिन यादव चाल के निवासी मोहम्मद अशफाक खान ने हमें बताया कि उस दिन पुलिस ने करीब प्रातः 1.45 बजे कुछ वाहन भी जलाए और उन वाहनों के फोटो चित्र भी लिये। इन क्षेत्रों में 9 दिसम्बर को प्रातः 2 बजे कर्फ्यू लगा दिया गया। यहाँ से कुल 21 लोग गिरफ्तार किए गए, जिनमें से 19 मुसलमान और दो हिन्दू थे। बहरहाल, दंगों के दूसरे दौर में जोगेश्वरी क्षेत्र बुरी तरह प्रभावित हुआ।

इन्कम टैक्स कॉलोनी में मुसलमानों के काफी घर लूटे और तहस-नहस किए गए। प्रेमनगर और अमीना नगर कालोनियों के हिन्दू निवासियों ने मुसलमानों द्वारा

तंग किए जाने की शिकायत की। वास्तव में वे 1992 के दशहरा के समय दी गई धमकियों की बात कर रहे थे। ये धमकियां अस्पष्ट व गाली गलौज के रूप में थीं जिनका भाव था कि हिन्दू इस क्षेत्र को छोड़कर चले जाएं। सर्वोदय नगर में देर रात को कुछ हिन्दुओं के दरवाजे रहस्यपूर्ण ढंग से खटखटाए गए थे। डरे हुए निवासी घर छोड़कर चले गए। जब शान्ति बहाल हुई तो उन्होंने अपने घर लुटे हुए पाए। 1992 के लगभग पूरे दिसम्बर महीने तनाव रहा, इधर-उधर बार-बार घटने वाली घटनाओं के कारण माहौल पूरी तरह सामान्य नहीं हो पाया।

मलाड पूर्व, पठानवाड़ी और इस्लाम पुरा

पठानवाड़ी मुसलमान बहुल क्षेत्र है। यहाँ लगभग 80 प्रतिशत मुसलमान हैं। इसके निकट एम.एच.वी. कालोनी में मुख्यत: हिन्दू रहते हैं। बाबरी मस्जिद गिरने के बाद इस क्षेत्र में भी काफी तनाव था। अपना रोष प्रकट करने के लिए 8 दिसंबर को कुछ मुस्लिम युवाओं ने पत्थर फेंकने शुरू किए। पुलिस आई और लाठियाँ बरसाना शुरू कर दिया। लेकिन मुस्लिम युवाओं ने पुलिस पर पत्थर फेंके। तब पुलिस ने गोलियाँ चलाईं इसमें तीन मुसलमान घायल हुए, लेकिन किसी की जान नहीं गई।

इस्लामपुरा भी मलाड, पूर्व का हिस्सा है लेकिन यहाँ मुसलमान 6-7 प्रतिशत से अधिक नहीं हैं। यहाँ एक मस्जिद है जहाँ से असली इस्लामपुरा शुरू होता है। 10 दिसम्बर को करीब 11.30 बजे प्रात: लगभग 100 हिंदू युवाओं ने मस्जिद पर पत्थर फेंकने शुरू कर दिए। इस्लामपुरा के मुस्लिम युवाओं ने अपना बचाव किया। हालांकि अपने क्षेत्र को बचाने के लिए कुछ हिंदू भी मुस्लिम युवाओं के साथ शामिल हुए। हिन्दू युवाओं ने अम्बे मंदिर से हमला करना शुरू किया। अब उन्होंने इस्लामपुरा की ओर सोडा बोतलें और पेट्रोल बम भी फेंके। लेकिन इस्लामपुरा की ओर के हिन्दू-मुस्लिम युवा समूह ने इसके जवाब में कुछ नहीं किया क्योंकि इससे मंदिर को नुकसान होता। दिल को छूने वाली बात यह थी कि हिन्दू और मुसलमान दोनों ने मिलकर इस्लामपुरा मस्जिद को बचाया। शंकर भट्टाचार्य और जुबेर मलिक ने इस एकता के लिए अपने-अपने समुदायों की अगुवाई की। बहरहाल, हिन्दू दंगाई अब लक्ष्मणनगर की ओर चले गए और वहां एक मस्जिद में तोड़फोड़ की और उस मस्जिद के वानगी (जो मुसलमानों को प्रार्थना के लिए अजान देता है।) चाँदमिया को छुरा भोंक दिया। अब्दुल रशीद के अनुसार इस क्षेत्र में हिंसा के विस्फोट को रोकने में पुलिस ने बहुत शानदार भूमिका निभाई।

मलाड पूर्व क्षेत्र में स्थित स्क्वैटर्स कॉलोनी भी बुरी तरह प्रभावित थी। यह

चिंचोली रोड फाटक के पास स्थित है। इस क्षेत्र में मिली-जुली आबादी है जिसमें लगभग एक तिहाई आबादी मुसलमानों की है। यहाँ 7 दिसम्बर से तनाव होना शुरू हुआ। 8 दिसम्बर को मोटी-मोटी झड़पें हुईं लेकिन गंभीर कुछ नहीं हुआ। 9 और 10 दिसम्बर को दोनों समुदायों के बीच एक दूसरे पर जल्दी ही हमले की अफवाहें थीं। लेकिन 11 दिसम्बर रात को लगभग 11 बजे मुसलमान युवाओं ने पत्थर फेंकना शुरू किया। उन्होंने पेट्रोल बम भी फेंके। हिन्दुओं ने भी इस पर प्रतिक्रिया की। दोनों तरफ लगभग 400 लोग थे। हिन्दुओं ने अल-फलह स्कूल और एक मस्जिद में आग लगा दी। लगभग 11.45 बजे मुसलमानों ने गजानन मंदिर पर हमला किया और उसे बुरी तरह क्षति पहुंचाई। कुछ मुसलमान छुरे और तलवारें लिए हुए थे। उन्होंने पुजारी लक्ष्मीनारायण के बेटे को छुरा घोंप दिया, उस समय पुजारी लक्ष्मीनारायण घर से बाहर था। मुस्लिम भीड़ ने पुजारी परिवार की गाय पर भी तेजाब फेंका। इन्होंने 19 वर्षीय प्रह्लाद शिन्दे को भी मार डाला जो अपने घर में था।

हिन्दुओं की भीड़ को तितर-बितर करने के लिए सब-इन्सपेक्टर नदफ (मुसलमान) ने लाठी बरसाई। 800 हिन्दू पुलिस थाने तक गए और हिन्दुओं पर लाठीचार्ज करने के कारण उसके तबादले की मांग करने लगे। इसकी अगुवाई शिवसेना के नेताओं ने की। सायं 7 बजे कर्फ्यू लागू कर दिया गया और एक घंटे बाद स्वान भारती कोआपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी के पास एक 19 वर्षीय मुस्लिम लड़के सैयद को जिन्दा जला दिया गया।

कहा जाता है कि तनाव में कुछ भवन-निर्माताओं का हाथ था क्योंकि गोविन्द नगर क्षेत्र गोविन्दराय सेक्सारिया का था, जो इसके प्लॉट बनाना चाहता था। भवन-निर्माता दीवार बनाने की कोशिश में था ताकि बाद में वह प्लाट बना सके। कहा जाता है कि दो सम्प्रदायों की संयुक्त बैठक में किसी ने दीवार बनाने का सुझाव दिया और भवन निर्माता ने इसे तुरन्त मान लिया था। दीवार की लागत का अनुमान लगभग 10 लाख रुपये था। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि इस जमीन की कीमत कितनी होगी।

बांद्रा पूर्व, भारतनगर और निर्मल नगर

भारत नगर में 70 प्रतिशत मुसलमान औरं 30 प्रतिशत हिन्दू आबादी है। यहाँ का एम०एल०ए० शिवसेना का मधुकर सरपोतदार है, जोकि अपने साम्प्रदायिक उत्तेजक भाषाणों और मुस्लिम विरोधी रवैये के लिए जाना जाता है। यहाँ भी मुसलमानों ने 7 दिसम्बर को 9.30 बजे प्रात: पथराव शुरू कर दिया। उन्होंने सोडा

की बोतलें और अन्य चीजों को पुलिस पर फेंका। लगभग साढ़े दस बजे प्रातः पहले बिना लाठीचार्ज किए या अश्रु गैस छोड़े पुलिस ने गोलीबारी शुरू कर दी। पुलिस की गोलीबारी रुक-रुक कर तीन दिन तक चलती रही। मुसलमानों की ओर से पथराव भी तीन दिन तक चलता रहा। पुलिस की गोलीबारी में 12 मुसलमान मारे गए लगभग 48 व्यक्ति घायल हुए जिनमें चार हिन्दू थे। हालांकि लोगों को उनके घर से निकालने और मारने की कोई घटना नहीं हुई। इस इलाके में पुलिस की ज्यादतियों की कोई शिकायत नहीं थी।

इस क्षेत्र में हनुमान जनरल स्टोर और चामुण्डा जनरल स्टोर थे। इनके मालिकों का विचार था कि इस क्षेत्र में हिन्दू-मुस्लिम विवाद बिल्कुल नहीं था। यह पुलिस और मुसलमानों के बीच था। लेकिन बांद्रा पूर्व सरकारी कॉलोनी में शिव-सैनिकों ने मुसलमानों की 10 से 12 दुकानें लूट ली थीं। पुलिस थाने के नजदीक लगभग दस ट्रक खड़े थे जिनमें से एक मुसलमान का था, वह भी शिवसैनिकों ने जला दिया।

बान्द्रा पूर्व में बेहरामपाड़ा बहुत बड़ी झोपड़पट्टी है, जिसमें आबादी का 85 प्रतिशत मुसलमान हैं। खरेनगर हाउसिंग बोर्ड कालोनी बेहरामपाड़ा से सटी हुई है जिसमें सिर्फ 10 प्रतिशत मुसलमानों के घर हैं। यहाँ खेरवाड़ी रोड क्षेत्र अर्द्ध-स्लम क्षेत्र है जिसमें लगभग 30 प्रतिशत मुसलमान हैं। सड़क के नजदीक भगवान गणेश का मन्दिर है। कथित रूप से इस मंदिर को मुसलमानों ने नुकसान पहुंचाया है। कुछ मुसलमानों ने कहा कि उन्होंने इसे नुकसान नहीं पहुंचाया। उन्होंने ध्यान दिलाया कि वे बेहरामपाड़ा के अन्दर बाईं ओर स्थित गणेश मंदिर को आसानी से नुकसान पहुँचा सकते थे, लेकिन वह मंदिर बिल्कुल सुरक्षित है।

जैसे ही मन्दिर को क्षति पहुँचाने की खबर फैली शिवसेना की भीड़ इकट्ठा होना शुरू हो गई। पुलिस ने उसको रोकने की कोशिश की, लेकिन भीड़ ने पुलिस की ओर ध्यान नहीं दिया और पत्थर फेंकना शुरू कर दिया। समझाने-बुझाने से भीड़ तितर-बितर नहीं हुई तो पुलिस ने गोलीबारी शुरू कर दी लेकिन अजीब ढंग से भीड़ की ओर नहीं, बल्कि बेहरामपाड़ा कॉलोनी की ओर। गोलीबारी में कई लड़के मारे गए। यहाँ भी पुलिस घरों में घुसी; वहाँ के निवासियों को पीटा और निर्दोष पीड़ितों को गिरफ्तार करके बर्बरतापूर्वक ढंग से पेश आई लेकिन दंगाइयों को नहीं पकड़ा गया। अगले दिन पुलिस ने इस क्षेत्र पर दोबारा हमला किया और कई लोगों को पीटा और भेदभावपूर्ण ढंग से गोलियां बरसाईं। औरतें इकट्ठी हुईं और पुलिस से निवेदन किया कि बच्चों और निर्दोष लोगों पर गोलियाँ न चलाएँ। इम्तियाज की पत्नी नीलम जो केवल पुलिस से गोली न चलाने का निवेदन कर रही थी, को गोली

लगी। मौके पर ही उसकी मृत्यु हो गई। बेहरामपाड़ा के काफी लोगों ने पुलिस की ज्यादतियों को प्रमाणित किया। उन्होंने साक्षी दी कि 10 दिसम्बर की रात को पुलिस ने बस्ती में प्रवेश किया और गश्त करनी शुरू कर दी। अखबारों में रिपोर्ट थी कि पुलिस ने चाकू, दराती, केमिकल्स, देशी बंदूकें और पेट्रोल बम बरामद किए। एल०आई०जी० और एम०आई०जी० कालोनियों में ऐसी गश्त नहीं की गई यद्यपि बस्ती पर अत्यधिक हमले यहीं से शुरू हुए थे। यह भी कहा जाता है कि शिवसेना विधायक मधुकर सरपोतदार, और इस क्षेत्र के शिव-सेना शाखा प्रमुख अशोक शिन्दे भी पुलिस के साथ थे। इस क्षेत्र की सामाजिक कार्यकर्ता पलाविया एग्नेस के अनुसार 8 दिसम्बर को पुलिस पर कोई हमला नहीं हुआ और उस दिन की गोलीबारी का कोई औचित्य नहीं था। हालांकि, कुछ मुसलमानों की चश्मदीद गवाही के अनुसार जब भीड़ इकट्ठी होनी शुरू हुई तो—तबलाहट जमात के अमीर, मोहम्मद अली बाबा भाई और एफ०ए० बाबा ने उन्हें उत्तेजित न होने के लिए समझाया क्योंकि इससे मुसलमानों को नुकसान होगा। लेकिन उनकी बात का आंशिक प्रभाव पड़ा। दोनों तरफ की भीड़ ने पत्थर फेंकने शुरू कर दिये। 7 दिसम्बर की प्रात: 10 बजे के दंगे बहुत गंभीर थे। मुस्लिम भीड़ उत्तेजित हो गई और हिन्दुओं को छुरे घोंपना शुरू कर दिया जो लगातार तीन दिनों तक चला और आठ लोग मारे गए। बाद में तीन लाशें नजदीक के ड्रेन और पाँच लाशें नाले से भी बरामद हुईं। मरने वालों में पुलिस का सिपाही अफजल इस्लाम शेख (ई०सी० न० 270) भी था। शायद यह सही पहचान न होने के कारण हुआ। यह सिपाही नासिक ग्रामीण जिला पुलिस से सम्बन्धित था। छुरेबाजी की शिकार एक शेवन्तबाई नाम की महिला भी थी।

8 दिसंबर को पुलिस इंस्पेक्टर केसबेकर ने तीन सिपाहियों के साथ प्रात: लगभग 11.30 बजे प्रात: बिना किसी प्रकट कारण के गोलीबारी शुरू कर दी। नीलम मजहर खान नामक एक महिला गोलीबारी में मारी गई। यद्यपि एस०ई०एम० और कांग्रेस सेवा दल के सदस्य सरफुल हुड्डा ने कहा कि पुलिस उसे मारना चाहती थी। बेहरामपाड़ा पुलिस की गोलीबारी में छ: मुसलमान मरे और 15 अन्य मुसलमान घायल हो गए।

धारावी

धारावी को एशिया का सबसे बड़ा स्लम क्षेत्र माना जाता है। यहाँ विभिन्न जातियों और सम्प्रदायों के लोग रहते हैं। यहाँ काफी बड़ी संख्या में तमिल हैं, हिन्दू और मुसलमान दोनों ही। अधिकांश तमिल मुसलमान चमड़े के काम में हैं। यहाँ

अन्ना डी०एम०के० और डी०एम०के० की इकाइयाँ भी मिल जायेंगी। सामान्य तौर पर सोचा जाता है कि तमिल हिंदू और तमिल मुसलमान भाषायी और सांस्कृतिक दोनों दृष्टियों से काफी घुले-मिले हैं। तमिलनाडु में दो सम्प्रदायों के बीच सांप्रदायिक विवाद का कोई इतिहास नहीं है और इससे यह सोचा जाता था कि भाषाई और सांस्कृतिक मेलजोल दो सम्प्रदायों के बीच सद्भाव बनाने में सहायक है। इसी तरह मलयाली हिन्दू और मुसलमान दोनों आपस में अच्छी तरह घुले-मिले हैं और उनमें भी साम्प्रदायिक वैमनस्य अधिक नहीं है। लेकिन साम्प्रदायिक माहौल ने मलयाली व तमिल हिन्दुओं तथा मुसलमानों के बीच इस मेलजोल को तो पीछे फेंक दिया और साम्प्रदायिक मतभेदों को बढ़ावा दिया, उन दिनों धारावी में भी तमिल मुसलमानों और तमिल हिन्दुओं के बीच तनावपूर्ण सम्बन्ध थे।

इसके अलावा धारावी अपराधियों और झुग्गी बस्ती के दादाओं का अड्डा है। यहाँ जुए के अड्डे और अवैध शराब के केंद्र मिल जायेंगे। कुख्यात अपराध सरगना वरदराजन का भी इस क्षेत्र में काफी दबदबा है। इस तरह यह समझना आसान है कि यदि एक बार हाथ से निकल जाए तो धारावी में स्थिति कितनी भयंकर हो सकती है और बाबरी मस्जिद गिरने के बाद यह हाथ से निकल गई थी। सभी तरह के अन्तर्विरोध सतह पर आ गए थे।

छः दिसम्बर को कुछ हिन्दुओं ने करीब छः बजे सायं विजय जुलूस निकाला। जुलूस में शामिल लोग एक नारा यह लगा रहे थे "तलवार लेंगे और मंदिर बनायेंगे।" जुलूस में 500 लोग शामिल थे और पुलिस ने इसे रोकने के लिए कोई कदम नहीं उठाया। हालांकि, जब मुसलमानों ने विरोध स्वरूप जुलूस निकाला तो हिन्दू बहुल क्षेत्र कुम्भारवाड़ा की ओर से पथराव हुआ। पथराव के फलस्वरूप अफरा-तफरी मच गई। तब पुलिस ने जुलूस निकालने वालों पर गोलीबारी शुरू कर दी लेकिन कुम्भारवाड़ा की दिशा में नहीं। मुसलमानों के घर और दुकानें लूट और जला दी गईं।

मुसलमानों ने कहा कि रिपब्लिकन पार्टी के स्थानीय नगर सेवक शिंदे की अगुवाई में 100 लोगों की भीड़ ने लगभग 2 बजे दोपहर को खड्डा क्षेत्र के मुस्लिम घरों पर हमला किया। लगभग 56 घरों को लूटा और जला दिया गया। मुसलमानों को वहां से बाहर खदेड़ दिया गया। 8 दिसम्बर को दोनों तरफ से एक-दूसरे पर पत्थरों की बौछार शुरू हो गई। ध्यान देने की बात यह थी कि हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच पूर्णतः ध्रुवीकरण हो चुका था। अपनी क्षेत्रीयता को भूलकर तमिल, मराठी, गुजराती और अन्य सभी हिन्दू एक तरफ थे और सभी मुसलमान दूसरी ओर चाहे उनका क्षेत्रीय मूल कोई भी हो।

8 दिसम्बर को 11.30 बजे प्रातः चमड़ा बाजार में पुलिस आई और गोलीबारी शुरू कर दी जिसमें तीन मुसलमान मारे गए और 4 घायल हुए। मुसलमान युवाओं ने, जिनमें कुछ पत्थर फेंक रहे थे, पुलिस के समक्ष समर्पण करने की कोशिश की लेकिन पुलिस ने गोलीबारी नहीं रोकी। इसके बाद 27 मुसलमानों को गिरफ्तार किया गया। वसीम अहमद नामक व्यक्ति ने बताया कि एक पुलिस अधिकारी ने कहा कि यदि मुसलमान ज्यादतियों को सहन नहीं कर सकते तो पाकिस्तान चले जाएं। हिन्दुओं ने भी एक मुसलमान व्यापारी के चमड़े के सामान का गोदाम लूटा, जिसमें 45,000 रुपये का सामान था।

सोशलनगर, धारावी में मुस्लिम बहुसंख्यक हैं। विजय जुलूस इस क्षेत्र से भी गुजरा। जुलूस में शामिल लोग जोर-जोर से नारे लगा रहे थे कि "कमर पे लुँगी; मुँह में पान, भागो लांडिया पाकिस्तान"। 9 दिसम्बर को हिन्दू भीड़ आई और 50 झोंपड़ियों में आग लगा दी जिसमें से 46 मुसलमानों की थी। सभी मुसलमान वहां से मुस्लिमों द्वारा स्थापित नजदीकी राहत शिविर में भागे। झोपड़ियां रात के 9 बजे जलायी गईं और अग्निशामक आग बुझाने के लिए प्रातः 2 बजे पहुंचा। करीब 2 बजे प्रातः जब पुलिस दल आया तो उसने गोलियां चलाना शुरू कर दिया, जिसमें छः मुसलमान मारे गए और 18 बुरी तरह घायल हो गए। घायलों में एक हिन्दू भी था। स्पष्ट है कि यहाँ पुलिस की मुस्लिम विरोधी भूमिका रही थी। शरारती तत्वों ने जिनकी झोपड़ियाँ जला दी थीं, पुलिस ने सिर्फ उन्हीं पर हमला किया। सोशल नगर और उसके आस-पास दो हिन्दू मन्दिरों को नुकसान पहुँचा। मुसलमानों ने भी हिन्दुओं के लगभग पचास घरों को जलाया जबकि अलग-अलग घटनाओं में 100 मुसलमानों की झोपड़ी जलकर राख हो गई। मुसलमानों का कहना था कि जब उन्होंने कुछ करने की कोशिश की तो पुलिस ने उन पर गोलियाँ चलाईं, लेकिन हिन्दुओं ने शरारत की तो पुलिस ने गोलियाँ नहीं चलाईं। यही कारण है कि धारावी में पुलिस गोलीबारी में मरने वाले अधिकतर मुसलमान थे।

इसी तरह मुकुन्द नगर क्षेत्र (दमन कम्पनी क्षेत्र के नाम से भी जान जाता है) में 90 प्रतिशत मुस्लिम आबादी है; यह भी बुरी तरह प्रभावित हुआ। यहाँ रुक-रुक कर समस्याएँ पैदा होती रहीं और पुलिस ने बार-बार गोलीबारी की, जिसमें कुल पाँच व्यक्ति मारे गए, ये सभी मुसलमान थे और 45 बुरी तरह घायल हुए और 150 व्यक्तियों को हल्की-फुल्की चोटें आईं, इनमें तीन हिन्दू भी थे। मुसलमानों ने शिकायत की कि हिन्दू भीड़ ने 38 घरों को लूटा और जला दिया। लेकिन पुलिस ने आज तक कोई कार्रवाई नहीं की। इस बात की शिकायत जब 80 मुस्लिम औरतें पुलिस में करने गईं तो पुलिस ने उन पर गोली चलाई जिससे एक मुस्लिम महिला

घायल हुई। मुसलमानों ने कहा कि शिवसैनिकों ने पुलिस की उपस्थिति में इन औरतों पर हमला किया और पुलिस ने शिवसैनिकों पर गोली नहीं चलाई। मुकुन्द नगर के मुसलमानों ने यह भी कहा कि जब से पुलिस उप-अधीक्षक पाण्डे आए हैं तब से वे पुलिस की भूमिका से संतुष्ट हैं।

इन घटनाओं के अलावा धारावी में आगजनी और लूटपाट की अनेक घटनाएं घटीं। इसने पूरी धारावी में आतंक का माहौल पैदा कर दिया। झुग्गी बस्ती के दादाओं और अन्य अपराधियों ने भी इसमें पूरी भूमिका निभाई। इनमें से कइयों ने कुछ धन वसूल करने या किराये आदि में वृद्धि करने के लिए उन घरों पर अपने ताले लगा दिए जिन्हें लोग छोड़ कर चले गए थे। बम्बई दंगों के पहले दौर दिसम्बर में यहाँ कुल मिलाकर 42 लोग मरे, जिनमें 40 पुलिस गोलीबारी में और 2 भीड़ की हिंसा में मरे। पुलिस गोलीबारी में मरने वालों में 30 मुसलमान और 10 हिन्दू थे। भीड़ की हिंसा में जो मरे उनमें एक ईसाई और दूसरा दलित था। इसके साथ ही, 300 व्यक्ति पुलिस गोलीबारी में घायल हुए। लेकिन पुलिस सूत्रों के अनुसार कुल 32 व्यक्ति मरे और जिनमें 22 की लाशें (17 मुसलमान और 5 हिन्दू) मिल गईं और 10 अभी ढूंढ़नी हैं। प्रशासन के अनुसार 200 लोग घायल हुए। कुल मिलाकर 489 घर जलाए गए और 91 दुकानें लूटी गईं और जला दी गईं। इसके साथ ही 35 वस्त्र फैक्ट्री और 60 व्यापारी संस्थान लुटे थे।

माहिम और दरगाह मख्दूम मोहिउद्दीन

माहिम में, विशेषकर दरगाह मखदूम मोहिउद्दीन के पास मुसलमानों की विशाल आबादी है। इसके कुछ भागों में मध्य और उच्च-मध्यवर्गीय मुसलमान हैं और अन्य भागों में मुसलमान कच्चे या आधे पक्के मकानों या झोपड़ियों में रहते हैं। इन क्षेत्रों में हिन्दू और ईसाई भी हैं। लेकिन इनकी संख्या बहुत कम है। इन्हीं क्षेत्रों में ऐसी बस्तियाँ भी हैं जिनमें मुसलमान अल्पसंख्यक हैं और हिन्दू बहुसंख्यक हैं। बी ई एस टी डिपो के पीछे बहुत बड़ा स्लम है जिसमें मुसलमान बहुसंख्या में हैं और अन्य भागों में शिवसेना के समर्थक कोली (मछली मारने वाले लोग) रहते हैं। इस क्षेत्र में कुछ ईसाई भी हैं।

ध्यान देना जरूरी है कि साम्प्रदायिक दृष्टि से माहिम अत्यधिक संवेदनशील क्षेत्र है। इस क्षेत्र में कई बार साम्प्रदायिक समस्याएं पैदा हुईं हैं। इस बार भी 7 दिसम्बर को यह दोबारा उजागर हुई। प्रात:काल ही कोलियों ने अपनी कॉलोनी से बी ई एस टी डिपो के साथ बसे मख्दूम नगर पर पत्थर फेंकना शुरू कर दिए। प्रतिक्रिया में मख्दूम नगर के युवाओं ने भी कोलियों पर पत्थर फेंके। कोलियों ने

हाउसिंग बोर्ड के मकानों के छज्जे से बहुत अधिक मात्रा में पत्थर फेंके; हालाँकि बहुत अधिक नुकसान नहीं हुआ। इसी दौरान माहिम के अन्य क्षेत्रों जैसे बंजावाड़ी, माहिम बाजार, दरगाह गली में जब माँ-बाप स्कूल जाने वाले अपने बच्चों की सुरक्षा का पता लगाने के लिए निकले तो तनाव शुरू हो गया। पुलिस ने एम्बुलेंस को रोक लिया। अफवाह फैल गई कि कुछ अनहोनी घट गई है और लोगों ने पुलिस की ओर पत्थर फेंकने शुरू कर दिए। तब पुलिस ने पत्थर फेंकने वालों पर गोलीबारी की और इसमें पाँच व्यक्ति मारे गए। यदि पुलिस अमीन खंडवानी को गिरफ्तार न करती तो शायद इतना नुकसान न होता, जिसकी वजह से तनाव बढ़ा और पुलिस को अधिक गोलीबारी करनी पड़ी।

10 दिसम्बर को अचानक अफवाह फैल गई कि शिवसेना के बाल ठाकरे को गिरफ्तार किया गया जो कि सच नहीं थी। ऐसा लगता है कि समस्या पैदा करने के लिए यह अफवाह जानबूझ कर फैलाई गई थी। ज्यों ही अफवाह फैली कोलियों में से कुछ शरारती तत्वों ने मख्दूम नगर पर पेट्रोल बम फेंकने शुरू कर दिए। उन्होंने इस स्थान को पूरी तरह राख में तब्दील कर दिया। 680 से अधिक झोपड़ियाँ जल गईं और लगभग 1000 परिवारों को स्थान छोड़ना पड़ा। उन्होंने दरगाह के नजदीक खुले विभिन्न राहत शिविरों में शरण ली। लगभग 5000 बेघर-बेसहारा लोगों को कुछ भी वापस नहीं मिल सकता था।

जोगेश्वरी क्षेत्र

जोगेश्वरी भी साम्प्रदायिकता की दृष्टि से अत्यधिक संवेदनशील क्षेत्र है, और अक्सर हिंसा ग्रस्त रहा है। बम्बई के पश्चिमी किनारे पर स्थित यह सघन झोपड़-पट्टी क्षेत्र है। यहाँ हिन्दू और मुसलमान बिल्कुल साथ-साथ रहते हैं। पास्कल कालोनी और शंकरवाड़ी क्रमशः मुस्लिम और हिन्दू बहुल क्षेत्र हैं। यहाँ भी अन्य स्थानों की तरह ही 7 दिसम्बर को तनाव शुरू हुआ था। दोनों तरफ से जब भीड़ इकट्ठी हुई तो महिलाओं ने उनको अपने-अपने घर वापस आने की सलाह दी और अपने-अपने सम्प्रदायों के युवाओं को समझाया। पुलिस ने भी उनको तितर-बितर करने में बहुत अच्छी भूमिका निभाई, लेकिन भीड़ दोबारा इकट्ठी हो गई और एक मुस्लिम गैराज (कार ठीक करने की दुकान) को तोड़ दिया जिससे तनाव अधिक बढ़ गया। अत्यधिक तनावपूर्ण माहौल में समझाने का कोई लाभ नहीं हुआ और हिंसा भड़क गई।

कहा जाता है कि मुसलमानों ने एक हिन्दू ब्राह्मण को जिन्दा जला दिया था। इसी तरह कब्रिस्तान के लिए जाती मुस्लिम भीड़ पर हमला हुआ। पुलिस ने हिंसक

भीड़ को तितर-बितर करने के लिए गोलीबारी भी की और सात व्यक्ति मारे गए। बाद में दो मुसलमानों को छूरा घोंप कर मार दिया गया। पहले दौर की साम्प्रदायिक हिंसा में जोगेश्वरी में कुल 9 व्यक्ति मारे गए थे।

कुर्ला हलाऊ पुल और अन्य क्षेत्र

कुर्ला बम्बई के पूर्वी किनारे का हिस्सा है। कुर्ला के कुछ क्षेत्र अत्यधिक संवेदनशील हैं और इसमें हिन्दुओं और मुस्लिमों की मिली-जुली आबादी है। यहाँ मराठी भाषी लोगों पर शिवसेना का असर है। 7 दिसम्बर को दोपहर 2.30 बजे के करीब मुसलमानों ने जगर चाल क्षेत्र में स्थित हिंन्दू मंदिर पर हमला कर दिया। अगले दिन इसकी प्रतिक्रिया में हिन्दुओं ने महाजनवाड़ी में एक मस्जिद और मुस्लिम स्कूल (एम ई एस स्कूल) पर हमला किया। सुलेमान शेख की साड़ी की फैक्ट्री जला दी गई। स्थानीय कार्पोरेटर फिरोज मन्त्री के कार्यालय को तहस-नहस कर जला दिया गया। 35 वर्षीय महिला इसरत भी हलाऊ पुल क्षेत्र में पुलिस की गोली से मारी गई। 27 वर्षीय मनुमंत रमा अरोटे नाम के मुसलमान को छूरा घोंपकर मार दिया गया। पुलिस गोलीबारी में तीन अन्य लोग घायल हो गए। इसके अलावा कुर्ला क्षेत्र में छूरा घोंपने के अनेक मामले हुए परन्तु उनकी विस्तृत जानकारी होना कठिन है क्योंकि लोग बोलते हुए डरते हैं।

बहरहाल, जस्टि्स हास्पेट सुरेश और जस्टि्स एस. एम. दाउद की जांच समिति ने अपनी रिपोर्ट दी। पीपल्स वरडिक्ट में कुर्ला की थोड़ी सी भिन्न तस्वीर दी गई है। इस रिपोर्ट के अनुसार दंगे की पहली घटना छः दिसम्बर की सुबह घटित हुई। शिवसैनिकों और दलितों की भीड़ यूनुस सेठ नाम के व्यक्ति की चाल में घुसी और उसमें आग लगा दी। जब यह जल रही थी तो पुलिस खड़ी तमाशा देख रही थी।

रिपोर्ट आगे कहती है कि 7 दिसम्बर को, तानाजी चौक पर मुस्लिम विरोधी नारे लगाती एक विशाल भीड़ इकट्ठी हुई, एक बेकरी लूटी गई और उसके कारिन्दों को पीटा गया। दो घण्टे तक भीड़ ने मुसलमानों के घरों पर पत्थर फेंके और उन्हें लूटा। उसी रात 9.30 बजे के लगभग मोहम्मद सलीम और इरफान नाम के दो लड़कों पर तलवारों और गंड़ासों से हमला हुआ जिस कारण दोनों की मृत्यु हो गई। टकियावाड़ी में तलवारों, गुप्तियों और गंड़ासियों से लैस हिन्दुओं की भीड़ ने सोनाबाई चाल पर हमला किया। 8 दिसम्बर को शिवसेना ने दुकानदारों को दुकानें बंद रखने का निर्देश दिया। भयाक्रांत दुकानदारों ने उनका कहना माना और दुकानदारों की अनुपस्थिति का फायदा उठाकर शिवसैनिकों की भीड़ ने दुकानों को लूटा और

तोड़-फोड़ की। पुलिस इसे रोकने की बजाए खुद भी इस लूटपाट में शामिल हो गई। अपराधियों के नाम पुलिस को दिए गए थे लेकिन जिसने उनकी गिरफ्तारी का दिखावा करके बाद में उन्हें छोड़ दिया।

25 दिसम्बर को हिन्दुओं की भीड़ ने एक मस्जिद पर धावा बोला। पुलिस की प्रतिक्रिया यह थी कि वह मुसलमानों के घर में घुसी, मुसलमानों को बाहर निकाल, और गिरफ्तार करके उन पर आरोप मढ़ दिए। उसी दिन दो मुसलमानों पर हमला हुआ और वे घायल हुए। 30 दिसम्बर को पुलिस ने अमीर बख्श की चाल पर धावा बोला। पुलिस के हाथ जो भी लगा उसी से अन्दर के लोगों को पीटा। डरे हुए लोगों ने कोई विरोध नहीं दिखाया। एक सिपाही से इस पर कुछ कहने के लिए कहा गया तो उसने कहा कि लोगों के विरोध न करने ने पुलिस को अपने लक्ष्य से वंचित कर दिया। जब एक सिपाही आदमी के गले पर कूद रहा था तो पुलिस इन्सपेक्टर बागडे और सत्रे भी वहाँ मौजूद थे, कांस्टेबलों द्वारा 70 मुसलमानों को घुमाया गया और उन्हें पीटा गया। (देखें—पीपल्स वरडिक्ट; वही, पेज 58-59)

घाटकोपर, असाल्फा गाँव

घाटकोपर, असाल्फा गाँव और उसके आसपास का क्षेत्र दंगों से बुरी तरह प्रभावित था। सारा क्षेत्र जल रहा था और बहुत भयानक दृश्य था। अधिकांश मुसलमान इस क्षेत्र से भाग गए और जो रह गए थे वे इतने दुःखी थे कि उनकी आवाज भी नहीं निकल रही थी। गोवंडी के बाद यह क्षेत्र सबसे अधिक प्रभावित था, लेकिन गोवंडी और यहाँ में एक अन्तर था। जहाँ गोवंडी में जानों का अधिक नुकसान हुआ तो असाल्फा में सम्पत्ति का सबसे अधिक नुकसान हुआ। इस स्थान पर अकेले होना ही भयाक्रांत करता था। एक मुसलमान की लकड़ी की दुकान को आग लगा दी गई और उसमें रह रहे लोग जिन्दा जल गए। एक भवन निर्माता दामजी वाल्जी इस जगह को विकसित करना चाहता था, लेकिन इसका मालिक इसे खाली नहीं कर रहा था। कथित तौर पर टिम्बर मार्ट को बिल्डर द्वारा जला दिया गया। खैरानी रोड क्षेत्र में मुसलमानों की बड़ी संख्या में कबाड़ी की दुकानें हैं। ऐसी पांच सौ दुकानें जला दी गईं। इन दुकानों के पीछे कुछ परिवार रहते थे, सौभाग्य से किसी की मृत्यु नहीं हुई। 9 दिसम्बर को ये दुकानें जलाई गईं। कथित तौर पर शिवसेना के समर्थकों ने इन्हें जलाया। सुभाष नगर, भारत मार्किट, घाटकोपर में हिन्दुओं और मुसलमानों की लगभग साठ दुकानें थीं जो पूरी तरह जला दी गईं।

पूरी बम्बई में बहुत सी अन्य छोटी घटनाएं भी घटीं। पुलिस सूत्रों ने कुल 202 लोगों की मृत्यु स्वीकार की जिनमें से 137 पुलिस गोलीबारी में मरे। बहरहाल; यह

बहुत कम कर के आंका गया है। मरने वालों का आंकड़ा 400 पार कर गया दिखाई देता है। इनमें से अधिकतर पुलिस की गोलीबारी से मरे हैं। वास्तविकता तो यह थी कि कुछ स्थानों को छोड़कर यह पुलिस दंगा था जो कि मुसलमानों और पुलिस के बीच था, हिन्दू और मुसलमानों के बीच नहीं। बम्बई पुलिस ने स्पष्ट तौर पर मुस्लिम-विरोधी भूमिका निभाई। बम्बई पुलिस ने आधिकारिक रूप से मुस्लिम विरोधी भेदभाव दिखाया यद्यपि कुछ अधिकारी पक्षपात रहित भी थे। लेकिन दंगों के दूसरे दौर में स्थिति बिल्कुल भिन्न थी।

दूसरे दौर के दंगे

दूसरे दौर के दंगे 6 जनवरी, 1993 को शुरू हुए। इस दौर के दंगे दिसम्बर 1992 के दंगों से जान और माल के नुकसान में बहुत आगे निकल गए थे। इनमें पुलिस की मुस्लिम-विरोधी भूमिका भी बहुत अधिक स्पष्ट थी। दूसरे दौर के दंगों में मुसलमानों को जो नुकसान हुआ उसे शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। यह माना जाता था कि साम्प्रदायिक दंगों में आम तौर पर उच्च वर्ग के मुसलमानों को अधिक नुकसान नहीं होता, लेकिन जनवरी के दंगों ने इस धारणा को झूठ साबित कर दिया है। गरीब और अमीर दोनों को नुकसान हुआ और दोनों ही भयभीत थे। लगता है कि शिवसेना और संघ परिवार ने इस दौर के दंगों के लिए पूरी तैयारी कर ली थी। बहरहाल यह विवाद का विषय है कि दंगे किस घटना से शुरू हुए। इसके बारे में कई धारणाएं हैं। कुछ कहते हैं कि दंगा डोंगरी क्षेत्र में गोदाम के भीतर दो मथाड़ी मजदूरों की हत्या से शुरू हुआ। कथित रूप से मुसलमानों ने साम्प्रदायिक द्वेष के कारण उनकी हत्या की थी। यह भी कहा जाता है कि मथाड़ी मजदूर यूनियन की प्रतिद्वन्द्विता में मरे थे। पुलिस ने भी इसकी पुष्टि की लेकिन तब तक बहुत अधिक नुकसान हो चुका था।

यह भी कहा जाता है कि दंगे भिण्डी बाजार, नल बाजार और मुहम्मद अली रोड में इस अफवाह के कारण शुरू हुए कि हिन्दुओं ने माहिम में मुस्लिम दरगाह गिरा दी थी। यह सच है कि इन क्षेत्रों में छुरा घोंपने के कुछ मामले दर्ज हुए हैं। और शायद इन्होंने दंगों के लिए मौका दिया हो। लेकिन यह कहना अत्यधिक सरलीकरण होगा कि मुसलमानों ने दंगे शुरू किए और जो बाद में हुआ वह शिव सेना व अन्यों की 'स्वत:स्फूर्त' प्रतिक्रिया थी। वास्तविकता तो यह है कि शिवसेना दूसरे दौर के दंगों के लिए व्यापक स्तर पर व्यवस्थित ढंग से तैयारी कर रही थी। वह सिर्फ किसी उचित मौके की प्रतीक्षा में थी, और भिण्डी बाजार, मुहम्मद अली रोड की घटनाओं ने उसे यह अवसर प्रदान किया। महाराष्ट्र सरकार ने सांसदों के लिए जो

टिप्पणी तैयार की उसमें 6 जनवरी से 8 जनवरी के बीच की केवल उन घटनाओं को ही शामिल किया जिनमें अल्पसंख्यक समुदाय ने हिन्दुओं पर हमला किया था। यह बहुत पक्षपातपूर्ण विचार था। ऐसा करके महाराष्ट्र सरकार ने शिवसेना के इस विचार को ही स्वीकार किया था कि दंगे मुसलमानों ने शुरू किए थे और जो बाद में हुआ वह शिव-सेना और अन्य लोगों की 'स्वत:स्फूर्त' प्रतिक्रिया थी।

लेकिन घटनाओं की सूक्ष्म जांच सरकार के इन दावों को नकारती है। अन्य चीजों के अलावा, महाआरतियों ने साम्प्रदायिक तनाव उत्पन्न किया। इन आरतियों के मुस्लिम विरोधी दुष्प्रचार ने साम्प्रदायिक तनाव को सघन किया और साम्प्रदायिक हिंसा के लिए आधार तैयार किया। कई मामलों में महाआरतियों के बाद मुसलमानों की जान व माल पर हमले हुए। सरकार अपनी टिप्पणी में स्वीकारती है कि 26 दिसम्बर और 5 जनवरी के बीच ऐसी 33 महा आरतियाँ हुईं। ये उन घटनाओं से पहले हुईं, जिनको सरकार ने दंगों का संभावित कारण माना। इस तरह से देखा जा सकता है कि 26 दिसम्बर को पहली महा आरती के बाद से साम्प्रदायिक तनाव बढ़ना शुरू हो गया था। सरकार ने इस बात को स्वयं स्वीकार किया है।

8 जनवरी को पुलिस कमिश्नर ने भी स्वीकार किया था कि ऐसी 113 आरतियां पहले ही हो चुकी हैं। सबसे बुरी बात यह है कि पूरे दंगों के दौरान इन आरतियों को होने दिया गया। सरकार के अनुसार ''5 फरवरी तक 498 ऐसी आरतियां हो चुकी थीं, इनमें 172 में लगभग 1500 से अधिक की उपस्थिति थी। गौरतलब है कि दंगे वास्तव में 2 जनवरी को धारावी में शुरू हुए थे जिसने कि मुस्लिमों के निष्क्रमण को जन्म दिया, जैसा कि 3 जनवरी के 'द टाइम्स ऑफ इण्डिया' ने रिपोर्ट किया। इसे निश्चित रूप से अनदेखा नहीं करना चाहिए जिसे सरकार की टिप्पणी अनदेखा करती है।

असल में दूसरे दौर के दंगे शुरू होने से पहले व्यवस्थित तरीके से काफी तैयारियाँ कर ली गई थीं। यहाँ तक कि मुसलमानों के घरों, रिक्शों, टैक्सियों और कारों की पहचान के सर्वेक्षण किए गए। उदाहरण के लिए सायन-कोलीवाड़ा के नजदीक प्रतीक्षा नगर में दंगे शुरू होने से पहले और शुरू होने के बाद एक सप्ताह तक इस तरह का सर्वेक्षण किया गया। जिन मकानों को मुस्लिम मकानों के रूप में पहचाना गया वे गिरा दिए गए। बाल ठाकरे अक्सर इन पर विदेशी तत्व, राष्ट्र विरोधी तत्व का आरोप लगाते हैं। यहाँ तक कि वह राष्ट्र विरोधी तत्वों को 'पाकिस्तानी' के रूप में पहचान करता है, उसके अनुसार उनमें से एक करोड़ भारत में घुस गए हैं और पूरे भारत में फैले हैं। इसके अलावा वे देश में बांग्लादेशी मुसलमानों की घुसपैठ का जिक्र करते हैं। शिव-सेना के दंगों में शामिल होने के बारे

में उन्होंने कहा कि, ''हमें शामिल होने के लिए मजबूर किया गया, क्योंकि बदला लेना हमारा काम है। यदि शिवसेना न हो तो हिन्दुओं को काट दिया जाएगा।''

इसके पहले, राज्यसभा में शिव सेना नेता प्रमोद नवलकर ने ''टाइम्स ऑफ इण्डिया'' के राजदीप सरदेसाई से बातचीत में स्वीकार किया था कि ''हमारे लड़के दंगों में शामिल थे।'' इसमें और जोड़ते हुए कहा, ''लेकिन प्रत्येक 5 शिव- सैनिकों के साथ 20 समाज विरोधी तत्व शामिल थे।'' शिव सेना के तत्कालीन वरिष्ठ एम एल सी और अब महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री मनोहर जोशी ने राजदीप से कहा कि ''मैं उन्हें शिवसैनिक नहीं कहूंगा। वे सभी आक्रोशी हिन्दू थे, जो जोगेश्वरी की घटना पर स्वत:स्फूर्त प्रतिक्रिया व्यक्त कर रहे थे।'' (8 जनवरी को जोगेश्वरी स्लम में चार हिन्दुओं को जिन्दा जला दिया गया था)। शिवसेना के कुछ जमीनी कार्यकर्ताओं ने सरदेसाई को बताया कि शहर में लगभग 220 'सक्रिय' शाखाएँ हैं। औसतन प्रत्येक शाखा में लगभग 200 प्रतिबद्ध सदस्य हैं। पुलिस के तीस हजार सिपाहियों के मुकाबले शिवसेना के पास 40,000 सैनिकों की सेना है।

राजदीप के अनुसार, ''शाखाओं में जो योजना बनाई गई वह सीधी थी— अफवाह फैलाओ कि लोगों की जान को खतरा है, मंदिर तोड़े जा सकते हैं और अत्याधुनिक हथियार शहर में पहुँच रहे हैं। अधिक सक्रिय शिव सैनिकों ने कुछ क्षेत्रों में मतदाता सूची के माध्यम से भवनों और दुकानों के मालिकों के नामों का पता लगाना शुरू कर दिया। मतदाता सूचियां 6 दिसम्बर के दंगे के तुरन्त बाद शाखा प्रमुखों के पास थीं।''

यह सब जनवरी के दंगों में शिवसेना की व्यापक स्तर पर भागीदारी को दर्शाता है। शिवसेना ने जानबूझकर यह अफवाह फैलाई कि दंगों में प्रयोग करने के लिए खतरनाक आधुनिक हथियार आ गए हैं, लेकिन आश्चर्य की बात है कि तत्कालीन पुलिस कमिश्नर बापत ने प्रेस में बयान दिया कि मुहम्मद अली रोड क्षेत्र की मस्जिद से एक घंटे तक ए०के-47 राइफल से गोलियाँ चलाई गईं। उसने यहाँ तक कहा कि ''खोल बरामद हुए हैं।'' यद्यपि राइफल अभी प्राप्त नहीं हुई। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण बयान था और बाद में कमिश्नर ने स्वीकार किया कि ए०के-47 होने के कोई निशान नहीं मिले थे और ऐसा कोई हथियार प्रयोग नहीं किया गया होगा। लेकिन जब दंगे हो रहे थे, उस समय ऐसा बयान देना अत्यधिक गैरजिम्मेदाराना कार्य था।

अत्यधिक दुखदायी यह था कि महाराष्ट्र के राज्यपाल सी० सुब्रह्मण्यम ने इस्तीफा देने से पहले प्रेस के सामने बयान दिया कि ''इन दंगों को करवाने में विदेशी हाथ था,'' और यहाँ तक वादा किया कि फिर किसी दिन इसकी विस्तृत

जानकारी देंगे, जो उन्होंने कभी नहीं दी। राज्यपाल जिसे धर्मनिरपेक्ष माना जाता है ने या तो संतुलन खो दिया या फिर उनके पास गलत सूचना थी। यह सामान्य समझ की बात है कि ऐसे जिम्मेदारी के पदों पर विराजमान लोगों को घोर साम्प्रदायिक माहौल में प्रेस के सामने कोई बयान देते समय अत्यधिक सतर्क रहना चाहिए।

दूसरे दौर के दंगों के बारे में एक धारणा यह है कि ये दंगे भवन-निर्माताओं ने करवाए। ''भवन-निर्माता संगठन'' ने प्रेस बयान में इसका खंडन किया। इसके अलावा हमारी जाँच के दौरान भी मलाड की घटना के अलावा कहीं कोई ऐसा सबूत नहीं मिला। मलाड में बहुत संभव है कि पहले चरण में लोकल बिल्डर शामिल रहा हो। यह कहना कि भवन-निर्माता गुट व्यवस्थित ढंग से दंगे करवाने में शामिल था, तथ्यों से मुँह मोड़ना होगा। कम से कम हमें ऐसा कोई साक्ष्य नहीं मिला। निस्सन्देह समाज-विरोधी तत्व अपने फायदों के लिए या निहित स्वार्थी तत्वों की वजह से दंगों में शामिल हुए।

इन दंगों को कांग्रेस के दो गुटों की लड़ाई के रूप में भी लिया गया। एक गुट तत्कालीन मुख्यमंत्री सुधाकर राव नाईक का था और दूसरा तत्कालीन रक्षा मंत्री शरद पवार का। इस धारणा के अनुसार शरद पवार गुट नाइक मंत्रिमंडल को अस्थिर करने के लिए दंगों को हवा दे रहा था। यह भी कहा जाता है कि जब नाइक ने शरद पवार गुट से सम्बन्धित कांग्रेसी विधायकों पप्पू कालानी और भाई ठाकुर को गिरफ्तार किया और उनकी अवैध सम्पत्ति को गिरा दिया, तो इस गुट ने दूसरे दौर के दंगे करवाए। हालांकि इस धारणा की सत्यता जानना बहुत कठिन है।

सुधाकर नाइक ने दंगों के जो कारण दिए उनमें कहा कि विभिन्न लॉबियों और माफिया के उच्च स्तरों पर सम्बन्ध हैं। उन्होंने शरारती तत्वों को हिंसा के लिए उकसाया और विशेष कर इस कारण कि उन्होंने उनको रोकने की कोशिश की थी। यहाँ, शायद वे उन दो विवादास्पद विधायकों की तथा शरद पवार से उनके सम्बन्धों की ओर संकेत कर रहे हैं। लेकिन साथ ही उन्होंने अल्पसंख्यक बहुल क्षेत्रों में बम्बई नगर निगम द्वारा चलाई गई तोड़-फोड़ की गतिविधियों और अन्य ऐसी घटनाओं का भी उल्लेख किया। सुधाकर नाइक मंत्रिमंडल को अस्थिर करने के लिए दंगे करवाए गए थे इसमें कुछ सच्चाई हो सकती है। आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक जैसे राज्यों में ऐसे उदाहरण मिलते हैं। 1990 में हैदराबाद और कर्नाटक में तब तक दंगे चलते रहे जब तक कि इन राज्यों के मुख्यमंत्रियों को हटा नहीं दिया गया।

लेकिन, एक बात पूरी तरह से निश्चित है कि स्थिति को नियन्त्रित करने में नाईक मन्त्रिमंडल पूरी तरह असफल रहा। स्थिति इतनी भयावह थी कि जे आर डी टाटा और नानी पालकीवाला समेत कई लोगों ने आंशिक इमरजेन्सी घोषित करने

और शहर को सेना के हवाले करने की मांग की। बम्बई शहर में इतने व्यापक स्तर पर दंगे कभी नहीं हुए थे। यहाँ तक कि जनवरी '93 के दौरान के दंगों में जो घटित हुआ उसने 1984 के दंगों को भी मीलों पीछे छोड़ दिया। सारा शहर आग में जल रहा था और शहर के लोग विशेषकर मुसलमान घने आतंक के साये में समय बिता रहे थे। आम तौर पर गरीब लोगों को अधिक निशाना बनाया जो मरे, जिनको लूटा और तहस-नहस किया गया। लेकिन इन दंगों के दौरान अमीर से अमीर मुसलमान भी सुरक्षित नहीं था। उनके फ्लैट गगनचुंबी इमारतों में स्थित थे और उन्हें भी धमकियाँ मिल रही थीं और तमाम लोगों को अपनी जान बचाने के बदले धन देना पड़ा। यहाँ तक कि उनकी कारें इन इमारतों के परिसर में खड़ी बाहर मिलीं और कई जला दीं गईं। उत्तर प्रदेश के मुसलमानों की सैंकड़ों बेकरियां जलकर राख हो गईं, जिसके कारण कई दिनों तक ब्रेडों का गम्भीर संकट रहा। आम दिनों में 4 रुपए में बिकने वाला पैकेट 10 रुपए तक बिका। फैक्ट्रियों और उद्योगों को भी नहीं बख्शा गया। ऐसा लगता है कि मुसलमानों को आर्थिक दृष्टि से तबाह करने की योजना के तहत ऐसा किया गया। वोहरा और ख्वाजा सबसे शान्तिप्रिय समुदाय हैं, जो राजनीतिक विवाद में कभी हिस्सा नहीं लेते, इनकी दुकानों को भी नहीं छोड़ा गया। सैंकड़ों वोहरों और ख्वाजों का सब कुछ बरबाद हो गया और बहुतों ने शहर छोड़ दिया।

पहली बार इतनी बड़ी संख्या में लोग शहर छोड़ कर चले गए। बम्बई में जो लोग आते हैं, वे यहां से वापस नहीं जाते। इन दंगों के दौरान ही विशाल मानव समूह ने जाना शुरू कर दिया। यह कहा जाता है कि लगभग 2 लाख हिन्दू और मुसलमान शहर छोड़कर चले गए। उनके लिए विशेष रेल-गाड़ियाँ चलाई गईं। कोई नहीं जानता कि कितने लोग वापस लौटे हैं। ऐसा कोई सर्वेक्षण नहीं किया गया। गैर-मराठी हिन्दुओं ने शिवसेना के हमलों के डर से शहर छोड़ा और कुछ ने मुसलमानों के हमले के कारण शहर छोड़ दिया।

इस सब के बावजूद सुधाकर राव नाइक ने कहा कि वे अपना कर्तव्य पूरा करने में असफल नहीं हुए। उन्होंने कहा कि, "स्थिति को सामान्य करने के लिए मैंने हर संभव कदम उठाया। मैं अपनी जिम्मेवारी निभाने में असफल नहीं हुआ और इस असामान्य स्थिति से निपटने के लिए कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी। राज्य प्रशासन के स्तर पर कोई खामी नहीं थी। इसके विपरीत उसने चौबीसों घण्टे काम किया।" उन्होंने साथ में यह भी जोड़ा कि हिंसा की नैतिक जिम्मेदारी लेते हुए वे इस्तीफा नहीं देंगे क्योंकि "राज्य के मुखिया के नाते मुझे स्थिति से "दृढ़ता से निपटना" है जो होगा देखा जाएगा लेकिन मुझे स्थिति से भागना नहीं है। स्थिति से

जैसे वे निपटे वह अब इतिहास बन गया है। असल में, वे बहुत बुरी तरह से असफल हुए। वे पूरी तरह निष्प्रभावी रहे, शायद असहाय भी। यदि बिना किसी पक्षपात के कहा जाए तो ऐसा लगा कि जैसे शिवसेना प्रमुख बाल ठाकरे की सत्ता थी। वे बम्बई पुलिस का दृढ़ता से साम्प्रदायिक हिंसा को समाप्त करने का आह्वान नहीं कर सके। कुछ अखबारों ने उनकी तुलना नीरो से की है, जो जब रोम जल रहा था, तो बांसुरी बजा रहा था।

कुछ अपवादों को छोड़कर पुलिस पूरी तरह साम्प्रदायिक हो चुकी थी। इसके पुख्ता प्रमाण हैं कि पुलिस शिवसेना का पक्ष ले रही थी। यहाँ तक कि पुलिस ने अपने वायरलेस संदेशों में, जिन्हें हमेशा टेप किया जाता है मुसलमानों के प्रति अपमानजनक भाषा का प्रयोग किया। एक रिकार्डिड संदेश में, शरारती तत्वों द्वारा कुछ घरों में आग लगाने पर, ड्यूटी पर तैनात पुलिस के आदमी ने अग्निशामक भेजने की मांग की तो पुलिस नियंत्रक कक्ष के अधिकारी ने पड़ताल की कि किस समुदाय के घरों में आग लगी है, जब उसे बताया गया कि मुसलमानों के घरों में, तो उसने कहा कि उन्हें मरने दो और अगर कोई जिन्दा बाहर निकले तो उसे गोली मार दो। लोकतान्त्रिक अधिकार रक्षा समिति ने एक याचिका में अदालत को यह कैसेट अपने कब्जे में लेने की प्रार्थना की जिसमें बातचीत रिकार्ड है।

बहरामपाड़ा, बान्द्रा जैसे विभिन्न क्षेत्रों के लोगों ने हमसे शिकायत की कि "शिवसेना के गुण्डों ने पेट्रोल बम फेंककर हमारे घरों को आग लगाई और जब हम आग बुझाने के लिए बाहर निकले तो पुलिस ने हम पर गोलियाँ चलाईं।" कुछ ने यहाँ तक कहा कि पुलिस कुछ शरारती तत्वों की अगुवाई कर रही थी। यद्यपि इसकी सत्यता जांचना बहुत कठिन है लेकिन यह कहा गया कि कुछ पुलिसवालों ने अपनी वर्दी शिवसैनिकों को दे रखी थी। यह सच भी हो सकता है और नहीं भी। लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि बुम्बई पुलिस मुसलमानों के प्रति पूरी तरह पक्षपातपूर्ण व्यवहार कर रही थीं। उसने दंगों को रोकने के लिए कुछ नहीं किया। तत्कालीन पुलिस आयुक्त ने दंगों को रोकने के लिए अपने लोगों की असफलता को कभी स्वीकार नहीं किया। दूसरी ओर, वह उनका बचाव कर रहा था। हालांकि उसे अपनी कोताही की कीमत चुकानी पड़ी जब उसे इस पद से हटा दिया गया। परन्तु इस कार्रवाई में बहुत देरी हुई, क्योंकि तब तक शरारती तत्व निर्बाध ढंग से वह सब कर चुके थे जो वे करना चाहते थे। सेना पूरी तरह पुलिस पर निर्भर थी, इसीलिए वह उतनी प्रभावी भूमिका नहीं निभा सकी जितनी उससे अपेक्षित थी। बहरामपाड़ा की घटना के उदाहरण से इसे देखा जा सकता है।

बहरामपाड़ा पर हमला करने में स्थानीय शिवसेना विधायक मधुकर सरपोतदार

की महत्वपूर्ण भूमिका बतायी गई। उसके पास एक रिवाल्वर और गुप्ती थी और सेना ने उसे गिरफ्तार कर लिया। लेकिन मराठी महिलाओं के थाने के बाहर प्रदर्शन करने पर पुलिस ने उसे छोड़ दिया और बाल ठाकरे ने इसे पुलिस का 'ठीक कार्य' कहा। स्पष्ट नजर आता है कि पुलिस शिवसेना की गतिविधियों के प्रति पक्षपातपूर्ण रुख अपना रही थी। शिव-सेना के मुखपत्र "सामना" में बाल ठाकरे अत्यधिक भड़काऊ संपादकीय लिख रहे थे, फिर भी नाइक प्रशासन ने कोई कार्रवाई नहीं की।

महाराष्ट्र सरकार के पूर्व मुख्य सचिव जे वी डिसूजा और एक पत्रकार दिलीप ठाकोर की याचिका खारिज करके बम्बई उच्च न्यायालय ने भी "सामना" में बाल ठाकरे के लेखन के प्रति नरम रवैया अपनाया। इन्होंने बाल ठाकरे के भड़काऊ लेखन पर भारतीय दण्ड-संहिता की धारा 153-ए, 153-बी और 107 के तहत महाराष्ट्र सरकार को उस पर मुकदमा चलाने का निर्देश देने के लिए याचिका दायर की। विख्यात पत्रकार प्रफुल्ल बिदवई के अनुसार, "26 दिसम्बर, 1994 को बम्बई उच्च न्यायालय ने जनवरी 1993 के साम्प्रदायिक दंगे भड़काने में अपनी भूमिका के लिए बाल ठाकरे पर राज्य को उन पर मुकदमा चलाने के निर्देश देने की याचिका खारिज करके धर्मनिरपेक्षता और कानून के शासन को नुकसान पहुँचाया है। याचिका दायर करने वाले दो नागरिकों में एक महाराष्ट्र के भूतपूर्व मुख्य सचिव भी हैं। पुलिस की महीनों की निष्क्रियता के बाद डिसूजा और ठाकोर द्वारा दायर की गई याचिका सार्वजनिक दायित्वों के जज्बे से लैस नागरिकों के सांप्रदायिक शक्तियों के आगे घुटने टेक चुकी सरकार को उसका वैधानिक कर्तव्य पूरा करने और ठाकरे के खिलाफ आगे बढ़ाने के लिए अनुकरणीय प्रयास का प्रतिनिधित्व करती है... याचिका में शिवसेना के मुख पत्र "सामना" के एक-के-बाद एक संपादकीयों के उदाहरण दिए ताकि यह दर्शाया जा सके कि वे मुस्लिमों की 'राष्ट्र-विरोध' के रूप विद्वेषी छवि प्रस्तुत करते हैं जिनमें मुसलमानों को "राष्ट्र-विरोधी," जिन्होंने "मिनी पाकिस्तान" बना लिया है, और "गद्दार" जिन्हें "गोली" मार देनी चाहिए "और जिन्हें बाबरी मस्जिद के गुंबदों की तरह नेस्तानाबूद कर देना चाहिए..."

वे आगे कहते हैं, "यदि साम्प्रदायिक हिंसा भड़काने का कोई बिल्कुल स्पष्ट प्रमाण है तो वह यह था। वास्तव में मि० ठाकरे ने बार-बार अपनी भूमिका स्वयं बताई है। यह महाराष्ट्र सरकार की अंतर्रात्मा को धिक्कार है कि उसे गिरफ्तार करने में असफल रही। अब उच्च न्यायालय ने सरकार की निष्क्रियता को माफ कर दिया है।" (देंखे टाइम्स ऑफ इण्डिया, बम्बई 6 अक्टूबर, 1994) यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि बम्बई उच्च न्यायालय ने याचिका को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि संपादकीय पूरे पढ़े जाने चाहिए और तभी यह पता चलेगा कि "सामना" के

संपादक ''राष्ट्र विरोधी 'मुसलमानों की बात कर रहे हैं न कि सभी मुसलमानों की। फैसला यह भी कहता है कि जो बीत गया, सो बीत गया, दो साल पहले जो हुआ था उसे भूल जाओ। हालांकि, यदि ध्यान से पढ़ा जाए तो संपादकीय ये स्पष्ट संकेत करते हैं कि बाल ठाकरे सभी मुसलमानों के बारे में बात कर रहे हैं; सिर्फ राष्ट्रविरोधी मुसलमानों के बारे में नहीं।

प्रधानमन्त्री नरसिम्हाराव भी उतने ही निष्प्रभावी रहे। जब बम्बई जल रही थी तो वे दिल्ली से बाहर नहीं निकले। जब दिल्ली में कुछ फिल्मी कलाकार उनसे मिले और बम्बई जाने की प्रार्थना की तो उन्होंने कहा कि वे मकरसंक्राति (14 जनवरी) के बाद ही ऐसा कर सकते हैं। उस प्रधानमंत्री से क्या उम्मीद की जा सकती है, जो बम्बई में खून-खराबे की अपेक्षा अपने धार्मिक विश्वासों को ज्यादा महत्व देता था? अन्तत: जब वे बम्बई आए तो दंगे पहले ही बंद हो चुके थे। वे दंगे रोकने नहीं आए बल्कि केवल औपचारिक दौरा करने आए थे और वे अपनी कार से नीचे उतरे बिना दंगा प्रभावित क्षेत्र से केवल गुजरे। जब कार से नीचे न उतरने के बारे में उनसे पूछा गया तो उन्होंने कहा कि सुरक्षा अधिकारियों ने उन्हें इसकी अनुमति नहीं दी। उनका यह व्यवहार 1947 के खून-खराबे में जवाहरलाल नेहरू के व्यवहार के बिल्कुल विपरीत था। जाकिर हुसैन, उस समय जामिया मिलिया के कुलपति थे। उनको उनके विद्यार्थियों समेत कुछ शरारती तत्वों ने घेर लिया। उन्होंने नेहरू को फोन किया और पुलिस भेजने की प्रार्थना की। नेहरू स्वयं कार में जामिया की ओर चल दिए, वे कार से नीचे उतरे और भीड़ को तितर-बितर कर दिया।

प्रधानमंत्री अपने रक्षा मंत्री शरद पवार को भेज कर संतुष्ट हो गए। शरद पवार टेलीविजन पर आए और शान्ति की अपील की, लेकिन यह प्रभावी नहीं थी। यद्यपि शहर में दंगे कम हो रहे थे परन्तु वे शहर के बाहरी क्षेत्रों में फैल रहे थे। कोई नहीं कह सकता कि शरद पवार ने दंगे रोकने के कड़े प्रयास किए या नहीं। बहुत लोगों ने कहा कि मि० नाइक को उखाड़ फेंकने के लिए दंगे करवाए गए थे। यह भी सच है कि जब बम्बई में दंगे हो रहे थे तो कांग्रेस में विवाद हो रहा था। यहां तक कि प्रसिद्ध फिल्मी कलाकार और बम्बई से सांसद सुनील दत्त ने इससे दुखी होकर अपना त्यागपत्र दे दिया था। अपने इस्तीफे के बाद प्रेस बयान में उन्होंने कहा कि तमाम दंगा-पीड़ितों ने उनसे सम्पर्क किया लेकिन उन्होंने खुद को असहाय पाया। उन्होंने उनकी कराह सुनी, लेकिन वे कुछ कर नहीं सके और इसलिए उन्होंने त्यागपत्र दे दिया।

15 जनवरी के ''टाइम्स ऑफ इण्डिया'' के संपादकीय ''टेल मोर, मि० नाईक'' में महाराष्ट्र कांग्रेस के आपसी-युद्ध को बताया गया है कि, लोगों की नजरों

में, बम्बई में व्यापक स्तर पर लगातार चली समस्या के लिए काफी हद तक कांग्रेस की आपसी कलह जिम्मेवार हैं। कुछ लोग यहां तक भी कहते हैं कि इस समस्या की जड़ तत्कालीन मुख्यमंत्री सुधाकर राव नाइक और रक्षा मंत्री शरद पवार की आपसी प्रतिद्वन्द्विता में है। मि० नाइक ने स्वयं संकेत दिए हैं कि वे उन तत्वों का पर्दाफाश करेंगे जो दंगे करवाने में शामिल हैं। मुख्यमंत्री ने कहा कि विभिन्न लॉबियों और माफिया जगत के शीर्ष स्तरों (शरद पवार पढ़ें) पर सम्पर्क हैं। उन्होंने हिंसा को उकसाया है क्योंकि उन्होंने उन पर रोक लगाई थी। जो मि० नाइक ने कहा यदि उसमें जरा सी भी सच्चाई है तो उनको अपने विरुद्ध किए गए षड्यंत्र की विस्तृत जानकारी देनी चाहिए।''

16 जनवरी को भाजपा नेता लालकृष्ण आडवाणी ने भी बम्बई का दौरा किया। वे सर्वप्रथम जोगेश्वरी गए, जहाँ मुस्लिम दंगाईयों ने हिन्दू परिवार के चार सदस्यों को जिन्दा जला दिया था। उन्होंने भी साम्प्रदायिक हिंसा में ''विदेशी हाथ'' बताया, बिना इसका खुलासा किए कि दंगों में किस देश का हाथ है। उन्होंने अधिकतर हिन्दू क्षेत्रों का दौरा किया, यद्यपि कुछ मुस्लिम पीड़ितों से बातचीत भी की। उन्होंने यह भी कहा कि बम्बई में जोगेश्वरी में राधाबाई चाल की घटना के बाद ही दंगे सघन हुए। हालांकि, उन्होंने ये नहीं कहा कि 600 व्यक्तियों की मृत्यु इसकी प्रतिक्रिया में हुई।

दंगों में जिस तरह क्रूरता से बहुत से लोगों को मारा गया, वह सबसे अधिक बेचैन करने वाली बात है। बहुत अधिक कटी-फटी होने के कारण बहुत सी लाशों की पहचान नहीं हो पा रही थी। कई लोगों को काट कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया था, यहाँ तक कि कुछ के सिर को धड़ से अलग कर दिया गया। कुछ मामलों में मौत को पीड़ादायक बनाने के लिए व्यक्ति को छुरा घोंपा गया, उसके जिन्दा रहते-रहते उस पर पेट्रोल छिड़ककर आग लगा दी गई। के०ई०एम० अस्पताल में सबसे अधिक दुखदायी घटना घटी। शरारती तत्वों ने गम्भीर रूप से घायल व्यक्ति को छुरा घोंप दिया। उन्होंने सोचा कि यदि इसे स्वास्थ्य सहायता मिली तो वह बच सकता है। वास्तव में यह गलत पहचान का मामला था, संबधित व्यक्ति हिन्दू था और शरारती तत्वों ने उसकी दाढ़ी से अनुमान लगाया कि वह मुसलमान था। इससे अलग हटकर कि शरारती तत्व हथियारों सहित ''ओप्रेशन थियेटर'' में कैसे आ गए। ऐसी क्रूरतापूर्ण हत्याएँ भारतीयों की संवेदनशून्यता और मारने वालों की अमानवीयकरण की हद को दर्शाती हैं। यह सिर्फ दूसरों को मारने का सवाल नहीं था बल्कि अमानवीयकरण और संवेदनहीनता का भी था, और सिर्फ मारने वालों की नहीं बल्कि उस समुदाय की भी जिससे वे सम्बन्धित थे। हमारे सर्वेक्षण के निष्कर्ष

से भी यह प्रतीत होता है कि जो कुछ घटित हो रहा था, उसकी सामान्य तौर पर स्वीकार्यता थी। इसके विरुद्ध किसी रूप में कोई विरोध नहीं था। महाराष्ट्र के मध्यवर्गीय लोगों की शिवसेना से सहानुभूति थी। बहुत जागरूक और प्रतिबद्ध लोगों ने ही शान्ति जुलूस निकाले या उनमें भाग लिया। ट्रेड यूनियनें भी इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकीं, वामपंथी ट्रेड यूनियनें भी नहीं, क्योंकि मजदूर उनके साथ नहीं थे। इस तरह वामपंथी ट्रेड यूनियनों की स्थिति दयनीय थी। उनके नेता स्वयं प्रभावी ढंग से हस्तक्षेप करना चाहते थे लेकिन मजदूर उनके साथ नहीं थे। नगर निगम मजदूर यूनियन के प्रधान शरद राव को महाआरतियों की अपनी निन्दा और साम्प्रदायिक स्थिति पर उनके दुष्प्रभावों के बारे में स्पष्टीकरण देना पड़ा।

यह समझना जरूरी है कि ऐसे घोर साम्प्रदायिक माहौल में मजदूरों की एकता आदि की भावनात्मक अपील के मुकाबले धर्म की भावनात्मक अपील बहुत अधिक शक्तिशाली थी। इसके अलावा यह एक हद तक मजदूरों को राजनीतिक रूप से शिक्षित करने के ट्रेड यूनियन नेताओं के प्रयासों की कमी का नतीजा भी है। ट्रेड यूनियनों की गतिविधियां कमोबेश अधिक मजदूरी, मंहगाई भत्ता आदि आर्थिक माँगों तक सीमित हो गई हैं। दंगों के बाद, कुछ स्थानों पर शिवसेना ने मुस्लिम मजदूरों को अपनी ड्यूटी पर पुनः आने से रोकने की सफल कोशिश की। यहाँ तक कि यह मझगाँव गोदी में भी हुआ जिस पर केंद्र सरकार का स्वामित्व है।

शिव सैनिकों ने 1984 के दंगों में भी मुसलमान मजदूरों को काम पर वापस जाने से रोकने की कोशिश की थी, लेकिन यह इतने व्यापक स्तर पर नहीं थी। इस बार इन्होंने सिर्फ मजदूरों को नहीं रोका, बल्कि मुसलमानों के बच्चों को भी स्कूल जाने से रोकने की कोशिश की। उन्होंने स्कूल के प्रधानाचार्यों को मुसलमानों के बच्चों को अपने स्कूलों में न लेने की धमकियाँ दीं यहाँ तक कि पूर्णतः महिला संगठन—"लिज्जत पापड़" ने भी मुस्लिम औरतों को काम पर आने से रोकने की कोशिश की। व्यापक स्तर का यह साम्प्रदायीकरण हमारी राष्ट्रीय अखंडता के लिए खतरा है। साझे धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद की अपेक्षा हिन्दू राष्ट्रवाद की अपील अधिक है। अभी तक हमारी प्रमुख सांस्कृतिक प्रकृति कहीं अधिक बहुलतावादी और दूसरों की सांस्कृतिक परम्पराओं को सम्मान करने वाली रही है। चूंकि रामजन्म भूमि का प्रचार पाँच साल से अधिक समय से चल रहा था, इसलिए हिन्दुओं में असहिष्णुता बढ़ी और बहुलतावादी परम्पराओं का अवमूल्यन हुआ। सभी मुसलमानों को "बाबर की औलाद" के रूप में देखा जा रहा था और इस्लाम को सिर्फ विजातीय धर्म के रूप में ही नहीं बल्कि आक्रमक, असहिष्णु और उन्मादी धर्म के रूप में भी देखा गया। मिले-जुले राष्ट्रवाद की अपेक्षा लोगों के मन में हिन्दू राष्ट्रवाद स्वीकार्य हो रहा था।

भारतीय जनता पार्टी, विश्व हिन्दू परिषद, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के धुआँधार प्रचार से साझी संस्कृति के प्रति सर्वसम्मति समाप्त हो रही है। भक्ति-सूफी उदारता समन्यवय की जगह उग्र हिन्दुत्व ले रहा है। यह माना जाता है कि हिन्दू एकरूपता इस्लामिक एकरूपता से झगड़ रही है! वास्तव में ये दोनों ही एकरूप धर्म नहीं हैं। ऐसी कृत्रिम एकरूपताएँ और विवादी रवैये के प्रोत्साहन से राजनीतिज्ञों को अत्यधिक लाभ होगा। आखिरकार धर्म का अत्यधिक भावनात्मक प्रभाव होता है जिसे हमें कमतर करके नहीं आंकना चाहिए।

भारतीय जनता पार्टी के प्रचार ने हिन्दुओं के दिमाग को भयंकर रूप से प्रभावित किया है, विशेषकर महाराष्ट्र के हिन्दुओं को। शिवसेना इस प्रचार में और भी अधिक घातक है और इसने निम्नवर्गीय-हिन्दुओं को प्रभावित किया है। इस वर्ग के लोग लूट, आगजनी और हत्याओं में सबसे अधिक भाग लेते हैं। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि बम्बई में दंगों का बहुत अधिक फैलाव था। केवल बम्बई का दक्षिणी किनारा ही इसका अपवाद था।

पुलिस व्यवहार के कई स्तब्ध कर देने वाले मामले श्रीकृष्ण जांच आयोग के सामने प्रकाश में आए। पुलिस ने वडाला मस्जिद में दोपहर की नमाज अदा कर रहे मुस्लिमों पर गोलियाँ बरसाईं। एक चश्मदीद गवाह 27 जून को श्रीकृष्ण जांच आयोग के सामने पेश हुआ। उसने बताया कि 10 जनवरी, 1993 को रफी अहमद किदवई मार्ग, पुलिस थाना के इन्सपेक्टर कापसे ने हरि मस्जिद, वडाला में दोपहर की नमाज अदा करते हुए छः युवाओं को गोली मार दी। अन्य सात लोग गोली से घायल हुए। जमायत-अल-उलेमा-ए-हिन्द के वकील हारून सोल्कर ने कहा कि आज तक भी मस्जिद की दीवारों पर गोलियों के निशान देखे जा सकते हैं। उसने आयोग से मौके पर चलकर गोलियों के निशान देखने की प्रार्थना की। जस्टिस श्रीकृष्ण मस्जिद का निरीक्षण करने को सहमत हो गए।

(29 जून, 1994, उर्दू दैनिक *इंकलाब,* बम्बई,)

65 वर्षीय रोशनबाई नाम की एक अन्य महिला ने आयोग के समक्ष अपनी गवाही में बताया कि '10 जनवरी को मेरा बेटा मोहम्मद आदम, हरि मस्जिद में दोपहर की नमाज अदा करने गया था। जब पुलिस ने मस्जिद में गोलीबारी की, तो वह बाहर भागा, लेकिन इन्सपेक्टर कापसे ने उसे पकड़ लिया और उसे मस्जिद में से लाशों को उठाकर पुलिस की गाड़ी में लादने को कहा और उसके बाद उसे गिरफ्तार कर लिया। उसके बाद आज तक उसका कहीं पता नहीं चला।' (*इंकलाब,* 8 जुलाई, 1994 बम्बई) इसी तरह 27 जुलाई, 1994 को कुछ गवाहों ने आयोग के सामने बताया कि काला चौकी के सामने अबुध्या नगर में 8 जनवरी को जब कुछ

दंगाई घरों और दुकानों को लूट रहे थे तो पुलिस खड़ी रही और मूक दर्शक बनी देखती रही और उन्हें बचाने का कोई प्रयास नहीं किया। (28 जुलाई, 1994, *इंकलाब*)। अल्पसंख्यक समुदाय के शरारती तत्वों के प्रति पुलिस के अलग-थलग रहने के मामले भी प्रकाश में आए हैं। पुलिस क्षेत्र-I के पुलिस उपायुक्त, अजित प्रांसिस ने जांच आयोग के सामने कहा कि जिन लोगों ने मस्जिद पर लगे लाउड स्पीकरों के माध्यम से एक समुदाय को दूसरे समुदाय के खिलाफ हथियार उठाने को उकसाया न तो उनकी पहचान के लिए कोई जांच की गई और न ही उनके खिलाफ कोई आपराधिक मामला दर्ज किया गया। गवाह इससे सहमत थे कि कानून के अनुसार ऐसा आह्वान करना जुर्म है विशेषकर दंगों की पृष्ठभूमि में।

(11 जून, 1994, *टाइम्स ऑफ इंडिया)*

मझगांव गोदी पर मुसलमान मजदूरों को प्रवेश न करने देने का मामला भी आयोग के सामने आया। मझगांव गोदी की यूनियन शिवसेना के नियन्त्रण में है। 1992-93 के दंगों के बाद यूनियन के प्रतिनिधियों ने मझगाँव गोदी के प्रशासन से बैठक कर मांग की कि गोदी क्षेत्र को अत्यधिक सुरक्षा की जरूरत है, इसलिए 'राष्ट्रविरोधियों' को यहाँ काम करने की अनुमति न दी जाए। 'राष्ट्र विरोधी' का प्रयोग उन मुसलमानों के लिए था जिन्होंने दंगों में भाग लिया था। मझगांव गोदी के केवल पाँच मुस्लिम कर्मचारी दंगों के सम्बन्ध में गिरफ्तार हुए थे, लेकिन यूनियन ने माँग की कि सारे मुसलमान एक समुदाय के तौर पर ही अविश्वसनीय हैं इसीलिए मझगांव गोदी के क्षेत्र में आने से सभी मुसलमान श्रमिकों को रोकना चाहिए। आयोग के सामने यह रहस्य पुलिस थाना के सीनियर इन्सपेक्टर ने बताया। उससे यह नहीं पूछा गया कि क्या शिवसेना ने हिन्दू दंगाईयों को भी राष्ट्र-विरोधी माना है।

(देखें, 16 मई, 1994, *टाइम्स ऑफ इण्डिया*)

दूसरे दौर के दंगों के दौरान सबसे भयावह घटना जोगेश्वरी में बाने कम्पाउंड, राधाबाई चाल में हुई जहां पर चार हिन्दुओं को जिन्दा जला दिया जिसमें से एक अंधरंग का मरीज था। शिवसेना ने स्वीकार किया है कि इस घटना से जनवरी दौर के दंगे शुरू हुए। यद्यपि आग लगाने वाले की पक्की पहचान साबित नहीं हो पाई लेकिन अनुमान लगाया गया कि मुसलमानों ने इस चाल में आग लगाई थी। इस घटना के बारे में कई तरह के विचार हैं। कुछ मानते हैं कि यह सब भवन-निर्माताओं ने किया, दूसरों का कहना है कि यह व्यक्तिगत बदले की घटना थी। अपराधियों का असली मंतव्य पता लगाने में पुलिस भी नाकाम रही। पुलिस ने काफी समय बाद एक मुसलमान महिला और उसके साथियों को गिरफ्तार किया। बहरहाल शिवसेना ने जोगेश्वरी की घटनाओं का बेतरह बदला लिया। विभिन्न घटनाओं की

विस्तृत जानकारी जस्टिस हास्पेट सुरेश और एस एम दाउद ने 'पीपुल्स 'वरडिक्ट' में दी है।

दूसरे दौर में मध्य बम्बई में तुलसीवाड़ी भी बुरी तरह प्रभावित हुई थी। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि इस क्षेत्र में दलित काठियावाड़ी महिला पार्षद ने मुसलमानों के खिलाफ हमलों की अगुवाई की। मुसलमानों के खिलाफ हमलों की अगुवाई करते हुए वह स्वयं पुलिस की गोली का शिकार हुई। तुलसीवाड़ी के मुसलमानों को मजबूरन यह क्षेत्र छोड़ना पड़ा और अपूरणीय नुकसान उठाना पड़ा; इसमें मुसलमानों की उनके पड़ोसियों समेत 250-275 झोपड़ियाँ राख के ढेर में बदल गईं। काठियावाड़ी दलित भी इस नुकसान से अछूते नहीं रहे, उनकी भी 17-18 झोपड़ियाँ जल गई थीं।

बान्द्रा पूर्व में बहरामपाड़ा में दूसरे दौर में भी दोबारा दंगे फैल गए। 15 जनवरी को सबसे बुरी घटना घटी, जब पुलिस ने बहरामपाड़ा के अन्दर गोलीबारी की। जस्टिस सुरेश और दाउद ने इसे इस तरह बताया है:-

दूसरी घटना नमाजियों पर हमले से सम्बन्धित है। विभिन्न अखबारों ने विभिन्न पाठ दिए हैं। घटना 15 जनवरी 93 को घटी। पुलिस ने बहरामपाड़ा में चारों ओर से गोलियाँ चलाईं। मस्जिद के केवल 500 फुट की दूरी से गोलीबारी हो रही थी। चूंकि आदमी नमाज के लिए गए हुए थे इसलिए जब गोली चलाई गई तो औरतें और बच्चे ही बस्ती में थे। औरतें बाहर निकलीं और पुलिस से गोली न चलाने की प्रार्थना की, लेकिन पुलिस न मानी। 10 वर्ष की लड़की शबन को कन्धों और जांघ में गोली से चोटें लगीं और 10 वर्षीय बबलू को टाँग में चोट आई। उसकी टाँग में सरिया डालना पड़ा। वह अभी तक अस्पताल में है। 55 वर्षीय अधेड़ महिला जीनातुन्नीसा आबिदा को गोली लगी। वह अपने 10 महीने के बच्चे को अपना दूध पिला रही थी तो उसकी जांघ में गोली लगी। पुलिस के अनुसार गोलीबारी में तीन व्यक्ति मारे गए और 14 घायल हुए। मरने वालों में 50 वर्ष का अधेड़ व्यक्ति भी था, जब उसे गोली लगी तो वह अपने घर की सीढ़ियों पर चढ़ रहा था।''

प्रतीक्षा नगर में पहले दौर में कोई साम्प्रदायिक समस्या नहीं थी, लेकिन जनवरी 1993 में यहाँ भयावह घटनाएं घटीं। शिवसेना ने घटनाओं की अच्छी तरह से योजना बनाई थी। उन्होंने मुसलमानों के घरों का सर्वेक्षण किया था और उन्हें लूटने और जलाने के लिए चिह्नित किया था। मुसलमानों का शायद ही कोई घर अछूता बचा हो। 8 जनवरी को अफवाह थी कि शिवसेना दफ्तर में हथियार इकट्ठे किए गए हैं। उसी दिन प्रमोद ठाकुर (शिवसेना नेता) की पत्नी दौरे पर निकलीं और 500 रु० प्रति परिवार के हिसाब से मुसलमानों के परिवारों से सुरक्षा देने के

नाम पर धन इकट्ठा किया। हालांकि उसके बाद मुसलमानों की काफी दुकानों, टैक्सियों, बेकरियों पर हमला हुआ। इसने इलाके में आतंक पैदा किया। काफी संख्या में मुसलमान बाहर खुले में निकले और पुलिस से अपनी सुरक्षा करने या इस इलाके से सुरक्षित बाहर निकालने की प्रार्थना करने लगे। पुलिस ने मुसलमानों से कहा कि कर्फ्यू का समय शुरू हो गया है और मुसलमान अपने घरों में वापस चले जाएं। इसके बाद हमले शुरू हुए और 9 जनवरी से 12 जनवरी तक जारी रहे। मुसलमानों की टैक्सियों, रिक्शों, दुकानों आदि को जलाने के अतिरिक्त उनके घरों पर हमले किए गए, उनका सामान लूट लिया गया और जो वहाँ मिले, उन्हें पीटा गया। लगभग 40 शिव सैनिकों ने इस क्षेत्र की मस्जिद पर तलवारों, गुप्तियों, गड़ासियों, लाठियों आदि से हमला किया। पुलिस पास खड़ी सारी घटना को देखती रही। सब-इन्सपेक्टर पाटिल और उसके साथ के सिपाहियों ने इन्हें नहीं रोका तथा दंगा-पीड़ितों की शिकायतों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। मुसलमानों ने लगातार मिल रही धमकियों के साए तले खुले मैदान में तीन दिन बिताये, लेकिन पुलिस सहायता के लिए नहीं आई। वे भूखे मर रहे थे, यहाँ तक कि उन्हें पानी से भी मना कर दिया गया। उन्हें अपना पेशाब पीने के लिए कहा गया। पुलिस ने उनको छोड़ने की अनुमति के लिए 20 रुपए प्रति परिवार वसूल किया लेकिन इसके बाद भी कोई इंतजाम नहीं किया। जब कुछ मुसलमानों ने टेम्पो में भागने की कोशिश की तो शिवसैनिकों ने तलवारों से उसके टायरों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। लगभग 3000 मुसलमानों को बहुत अधिक यातनामयी प्रतीक्षा के बाद सेना की मदद से निकाला गया। यहाँ तक कि इनके रास्ते में सभी रुकावटें पैदा की गईं और बहुत उत्साही प्रयास करके ही इनकी जान बचाई जा सकी।

इन दंगों में कुछ पत्रकारों को भी निशाना बनाया गया। हिन्दी, मराठी, उर्दू अखबारों को, जिसने भारतीय जनता पार्टी, शिवसेना के खिलाफ लिखा, उनको शिवसैनिकों का कोप झेलना पड़ा। 'महानगर' से सम्बन्धित दो पत्रकारों से अखबार के कार्यालय में हाथापाई की गई और हारुन रशीद जैसे उर्दू पत्रकार अपने घरों से ठीक समय में बच निकले लेकिन उनका घर पूरी तरह मिट्टी में मिला दिया गया और सब कुछ लूट लिया गया। उन पत्रकारों की प्रशंसा करनी चाहिए कि इन आतंकित करने वाली घटनाओं से वे डरे नहीं और मुस्तैदी से अपना कर्तव्य निभाते रहे।

दूसरे दौर के दंगों में मरने वालों की संख्या बहुत अधिक थी। 22 जनवरी, 1993 को 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के सूत्रों ने मरने वालों की संख्या 551 बताई। उन्होंने सरकारी सूत्रों की 458 संख्या में सिर्फ 99 लोगों को जोड़ दिया था। क्योंकि

अस्पताल के सूत्रों ने अभी और मौतों को कोरोनर की न्यायालय में रिपोर्ट किया जहाँ पुलिस ने इन आंकड़ों को स्वीकार किया। पुलिस कमिश्नर श्री बापट के अनुसार 458 मारे गए जिनमें 288 मुसलमान थे और 170 हिन्दू थे। इनमें से 133 पुलिस गोलीबारी में, (75 मुसलमान, 50 हिन्दू, 8 का पता नहीं,) 259 भीड़ हिंसा में (186 मुसलमान, 73 हिन्दू) और 68 आगजनी में (39 हिन्दू, 27 मुसलमान) मारे गए। यह कहना कठिन है कि बाद के 99 किस समुदाय से सम्बन्धित थे परन्तु इनमें मुसलमानों की संख्या अधिक होने की सम्भावना है।

बहरहाल 557 का आंकड़ा भी कम करके आंका गया है। मरने वालों की संख्या 600 से ऊपर जाने की संभावना है क्योंकि बाद में नाले जैसे स्थानों से तमाम लाशें मिली हैं, लेकिन इसका कोई रिकार्ड नहीं है। मौके पर जांच से पता चला कि बहुत से परिवारों ने अपने आदमियों के गुम होने की बात कही और नाउम्मीदी की उम्मीद करते रहे हैं कि वे जेल में या कहीं और हो सकते हैं, जहाँ से वे एक दिन जरूर लौटेंगे। यह पता लगाना मुश्किल है कि कोई वापस आया या नहीं। यदि जस्टिस श्रीकृष्ण जांच आयोग के सामने दी गई गवाहियों पर जायें तो अधिकतर गुम हुए व्यक्ति वापस नहीं लौटे और फिर भी पुलिस सूत्र तकनीकी दृष्टि से उनको मरने वालों में नहीं गिनते।

कोरोनर (मृत्यु समीक्षक) न्यायालय के सूत्र बताते हैं कि इस बार छुरे मारने के मामले दिए गए आंकड़ों से कहीं ज्यादा हैं। कुछ दंगा पीड़ितों को छुरा मार कर गंभीर रूप से घायल कर दिया गया और फिर उनको जला दिया गया। या गन्दे नाले में फेंक दिया गया। पोस्टमार्टम की रिपोर्ट संकेत करती है कि वे दम घुटने या डूबने से मरे, यद्यपि सिर्फ चाकू की चोट से भी मृत्यु हो सकती है। यह रोचक है कि पुलिस की गोली से मरने वालों की संख्या 133 है, लगभग उतनी ही जितनी कि दिसंबर के दंगे में मरे थे। पुलिस के अनुसार दिसम्बर 92 में उसकी गोलीबारी से 132 लोग मरे थे। दिसम्बर दंगे में पुलिस की भेदभावपूर्ण गोलीबारी की बहुत अधिक आलोचना नहीं हुई। सच्चाई यह है कि दूसरे दौर में भी पुलिस गोलीबारी में मुसलमान अधिक मरे जो पुलिस के पक्षपातपूर्ण व्यवहार को दर्शाता है। (जनवरी में भीड़ के अधिकतर हमले शिवसेना के नेतृत्व में हुए थे)। इस दौर में आर्थिक नुकसान भी बहुत अधिक हुआ था। सम्पति लूटने और जलने से तो ऐसा हुआ ही साथ ही उत्पादन रुकने और सामान के इधर से उधर न जाने के कारण भी ऐसा हुआ। लगभग 10,000 घरों को जला या गिरा दिया गया और एक लाख लोग अलग-अलग समय पर शरणार्थी शिविरों में रहे। कई लोागों को घटना के लगभग दो महीनों बाद तक राहत शिविरों में रहना पड़ा। सरकार ने जिनकी दुकानें और घर

लूटे गए थे, उनके लिए सिर्फ 5000 रु० मंजूर किए। यहां यह क्षतिपूर्ति बहुत कम थी। कुछ मामलों में प्रशासन ने यह पैसा भी समय पर नहीं दिया। काफी लोगों को तो यह कभी नहीं मिला। नष्ट हो गए मकानों की कीमत 50 हजार से 10 लाख रुपये तक थी। अमीना ताज का दो मंजिला मकान और एक रिक्शा दोनों जला दिए गए थे। जोगेश्वरी के एक परिवार की 12 हजार रुपए की तो सिर्फ 'साड़ियों' का ही नुकसान हुआ। बहुत से लोग जो 'पंचनामा' बनाया गया था उसे लेने के लिए या अपने नष्ट हो चुके घर का सर्वेक्षण करने के लिए समय पर नहीं लौट पाए। उनके पड़ोसियों ने भी उनसे सहयोग नहीं किया और उनसे बातचीत भी नहीं की। कुछ मामलों में घर की दीवारें उखाड़ दी गईं और बोर्ड लगा दिए गए, जिस पर लिखा था "अल्पसंख्यक नहीं चाहिए।" सुश्री ताज ने हमलावरों के नेता को थाने में पुलिस के साथ चाय पीते देखा।

अधिकांश अपने कमरे बेचना चाहते थे और " संभव होने पर अपने समुदाय के लोगों के साथ रहना चाहते थे।" प्रतीक्षा नगर के शहाबुद्दीन ने कहा, "मेरे प्रथम दर्जे के क्षेत्र की तुलना में तीसरे दर्जे के वातावरण में रहना ठीक है।" शहाबुद्दीन सिर्फ अपनी भावनाएँ नहीं व्यक्त कर रहा था बल्कि वह काफी अन्य लोगों का भी प्रतिनिधित्व कर रहा था। दोनों समुदायों के लोग सम्पत्तियाँ ऐसे बेच रहे थे जैसे कि कुर्की या दरिद्रता के दौरान बेची जाती है। हिन्दू क्षेत्र में मुसलमान अपनी सम्पत्ति बेच रहे थे और मुसलमान क्षेत्र में हिन्दू अपनी सम्पत्ति बेच रहे थे। यदि कोई अपने समुदाय के क्षेत्र में जाना चाहता था तो उसे 15 या 20 प्रतिशत तक अधिक देना पड़ता था। और लोग अपने भविष्य की सुरक्षा व बचाव के लिए ऐसा कर रहे थे। उस तरह से एक मायने में यह पूर्ण साम्प्रदायिक विभाजन था।

जिनके पास कोई अन्य विकल्प नहीं था, ऐसे बहुत से लोगों ने बम्बई छोड़ दी। वस्त्र निर्यात को बहुत धक्का लगा क्योंकि अधिकतर दर्जी मुसलमान हैं। करोड़ों रुपये का निर्यात इसलिए प्रभावित हुआ कि मुसलमान दर्जी अपने जन्म स्थान पर लौट गए और किसी को पक्का पता नहीं था कि वे वापस आएंगे या नहीं और यदि आएंगे तो कब। इसी तरह कई उद्योगों का यही हाल हुआ विशेष तौर पर छोटे उद्योगों का और इसने निर्यात-आदेशों को बुरी तरह प्रभावित किया।

बार-बार कर्फ्यू लगाने से मजदूर काम पर नहीं आ सके और कई मामलों में कर्फ्यू वाले क्षेत्रों में उद्योगों और व्यापारिक प्रतिष्ठानों में प्रबन्धकों ने स्वयं तालाबंदी कर दी और इससे उत्पादन का बड़ा नुकसान हुआ। हमले के डर से ट्रक वाले एक स्थान से दूसरे स्थान पर वस्तुएं ले जाने का खतरा उठाने को तैयार नहीं थे। यद्यपि कुल आर्थिक घाटे का अनुमान लगाना कठिन है लेकिन इसके 10 हजार करोड़ रुपये

से अधिक होने की संभावना है। यह कोई महत्वहीन आंकड़ा नहीं है। इसकी आशंका है कि काफी विदेशी निवेशक संकोच कर सकते हैं और बहुत संभव है कि वे भारत में निवेश न करना चाहें।

टाटा सेवाओं ने जनवरी दंगों के कारण हुए कुल घाटे का मोटा अनुमान लगाया है। इस अनुमान के अनुसार वस्तुओं और सेवाओं से कुल घाटा 1250 करोड़ रुपये, ट्रेडिंग व्यापार से 1000 करोड़ रुपए, निर्यात से 2 हजार करोड़ रुपए, सरकार को कर राजस्व की हानि 1.50 करोड़ रुपए, और सम्पत्ति का 4000 करोड़ रुपए का घाटा हुआ। इस प्रकार इस आकलन के अनुसार कुल नुकसान करीब नौ हजार करोड़ रु. का हुआ। इसके अतिरिक्त दंगा-पीड़ितों को उनकी सम्पत्ति के नुकसान के लिए मुआवजे आदि के रूप में सरकार को धन देना पड़ा। यह जोड़ आर्थिक हालात को डगमगा देने वाले हैं।

जो सोचते हैं कि वे ''मुसलमानों को सबक सिखा रहे हैं'' वे भारतीय अर्थव्यवस्था को कोई कम नुकसान नहीं पहुँचा रहे और इसलिए उनके ''सच्चे देशभक्त'' होने का दावा बिल्कुल आधारहीन है। वास्तव में उनका व्यवहार राष्ट्र विरोधी है। कोई देशभक्त देश के हितों के खिलाफ काम नहीं करेगा। इतने लम्बे समय तक अव्यवस्था देश की गरिमा को ठेस पहुंचाती है। बाल ठाकरे ने 'टाइम' पत्रिका को जो साक्षात्कार दिया ''मुसलमानों को बाहर खदेड़ो'' सिर्फ विवेकहीनता को ही नहीं दर्शाता बल्कि भारत और उसकी सरकार की कमजोर छवि को प्रस्तुत करता है। हम तीसरी दुनिया के देशों में विशाल जनतन्त्र होने पर गर्व करते हैं। ऐसी घटनाएँ होने देना वास्तव में प्रजातन्त्र के लिए और हमारे देश के लिए गरिमापूर्ण नहीं है। ऐसी दुखद स्थिति के लिए राज्य और केंद्र दोनों सरकारें जिम्मेवार हैं। ये घटनाएं दुनिया को ऐसा आभास देती हैं कि भारत में अल्पसंख्यक सुरक्षित नहीं हैं और उसके संवैधानिक प्रावधानों का कोई सम्मान नहीं है।

केंद्र और राज्य सरकारों ने अल्पसंख्यकों में विश्वास जगाने के लिए कुछ विशेष नहीं किया। ज्यादा से ज्यादा उन्होंने बयानों की झड़ी लगाई है! किसी को पक्का भरोसा नहीं है कि साम्प्रदायिक आधार पर हिंसा की पुनरावृत्ति भविष्य में नहीं होगी। पुलिस बल को दुरुस्त करने और उसे पूरी तरह से धर्मनिरपेक्ष बनाने की कोई योजना नहीं है। तमाम मुख्य व्यक्तियों जिन्होंने जनवरी दंगों की योजना बनाने और क्रियान्वित करने की सीधी जिम्मेवारी ली है उनको छुआ भी नहीं गया। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि उन पर मुकदमा नहीं चलेगा। साम्प्रदायिक प्रचार को सजा योग्य अपराध मानने के लिए भी कोई कदम नहीं उठाया गया। जो कानून मौजूद है उसको शायद ही कभी लागू किया गया। यदि आने वाले चुनावों में भारतीय जनता पार्टी

रामजन्म भूमि के मुद्दे पर चुनाव लड़ती है तो यह विनाशकारी साबित होगा। साम्प्रदायिक या पंथ सम्बन्धी प्रचार को गम्भीर अपराध मानने वाले कानून बनाने की सख्त जरूरत है। जिससे साम्प्रदायिक प्रचार का दोषी उम्मीदवार स्वतः ही चुनाव लड़ने के अयोग्य हो जाए। इस आधार पर केंद्र सरकार ने जो विधेयक प्रस्तुत किया वह दोषयुक्त था और दूसरी राजनीतिक पार्टियों ने जबरदस्त विरोध किया।

मुख्य चुनाव आयुक्त टी एन शेषन ने 'जन प्रतिनिधित्व कानून' को सख्ती से लागू किया और 1994 के अन्त और 1995 के आरम्भ में होने वाले चार राज्यों के चुनावों में चुनाव प्रचार के दौरान साम्प्रदायिक प्रचार की अनुमति नहीं दी। लेकिन यह पक्का नहीं है कि शेषन के बाद भी यह रुख बना रहेगा।

व्यापक स्तर पर हिंसा को रोकने के लिए पश्चिम बंगाल और बिहार की तरह धर्मनिरपेक्ष शक्तियों को जन सम्पर्क अभियान चलाने और इसे सघन करने की जरूरत है। भारतीय जनता पार्टी राजनीतिक पार्टियों में अलग-थलग पड़ी है; जनता में नहीं। दूसरी ओर यह अगले संसदीय चुनावों में बहुमत प्राप्त करने की आशा रखती है। इसलिए धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक शक्तियों को व्यापक स्तर पर जन सम्पर्क कार्यक्रम चलाने की अत्यधिक आवश्यकता है।

मुसलमानों को भी अपने व्यवहार के बारे में गम्भीर पुनर्विचार करना होगा। यदि मुसलमान अपने व्यवहार में सुधार नहीं करते तो भारतीय जनता पार्टी, विश्व हिन्दू परिषद की भयंकर मारकाट से धर्मनिरपेक्षता को नहीं बचाया जा सकता। उनके नेताओं ने कभी ध्यान नहीं दिया और कभी भी बुद्धिमता से काम नहीं लिया। शाहबानो फैसला और बाबरी मस्जिद विवाद पर उनके उग्र आन्दोलनों ने ही अल्पसंख्यकों के हितों को नुकसान पहुँचाया। बहुसंख्यक साम्प्रदायिकता को खत्म करने के लिए अल्पसंख्यक सांप्रदायिकता उत्तम रास्ता नहीं है। केवल धर्मनिरपेक्ष शक्तियां ही बहुसंख्यक साम्प्रदायिकता को चुनौती दे सकती हैं।

अध्याय - 4

सूरत दंगे : राष्ट्र पर कलंक

सूरत ऐतिहासिक दृष्टि से गुजरात की महत्वपूर्ण बन्दरगाह है। मुगलकाल और उससे पहले यहां विभिन्न नवाबों ने शासन किया। जहाजरानी और कमीशन एजेंटों के साथ-साथ यहां व्यापारी और दस्तकार भी दौड़े चले आते थे। यह शहर अपनी धन-दौलत और शानो-शौकत के लिए विख्यात था। उस समय सूरत पर नियंत्रण का अर्थ करों और शुल्कों पर ही नियंत्रण नहीं, बल्कि व्यापार पर भी नियंत्रण था।

18वीं शती के अन्त में सूरत को दंगों ने झकझोर दिया था। ये दंगे व्यापारियों के बनिया समुदाय और मुसलमानों के बीच हुए क्योंकि व्यापारियों ने अंग्रेजों का साथ दिया था। बहरहाल जब अंग्रेजों ने शहर पर नियंत्रण कर लिया तो वे व्यापारिक गतिविधियां धीरे-धीरे बम्बई को ले गए। जबकि शहर के हिन्दू व्यापारियों ने अंग्रेजों से नए सम्बन्ध बना लिए, और बदल रही स्थितियों के अनुसार अपने को ढाल लिया। मुसलमानों ने, जो कि अपनी पहचान नवाबों से करते थे, ऐसा नहीं किया।

यह ध्यान देने की बात है कि भारत में अंग्रेजी शासन से पहले आर्थिक गतिविधियों में पारस्परिक निर्भरता के कारण सूरत के हिन्दुओं और मुसलमानों में सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध थे। लेकिन ब्रिटिश प्रशासन ने तरह-तरह के परिवर्तनों को जन्म दिया जिसकी वजह से लोगों में जाति/सांप्रदायिक बंधन मजबूत हुए। अंग्रेजों ने जाति और सम्प्रदाय के आधार पर शिष्टमंडलों और प्रतिवेदनों को प्रोत्साहित किया और उनका स्वागत किया। आश्चर्य की कोई बात नहीं कि विभिन्न जातियों और सम्प्रदायों के हितों के प्रतिनिधित्व का दावा करने वाले अभिजात वर्गों ने अंग्रेजी शासन की नीतियों का विरोध नहीं किया जो जाति और सम्प्रदाय के हितों पर नकारात्मक प्रभाव डालती थीं। इससे अन्तर्जातीय और अन्तर्साम्प्रदायिक प्रतिद्वन्द्विता की नींव पड़ी।

1927 में, सूरत में दो पहलवानों की लड़ाई को लेकर वहां दंगे हुए। दंगों के बाद हिन्दू-नेताओं ने मुसलमानों का बहिष्कार करने का आह्वान किया। उस समय सरदार पटेल ने प्रसिद्ध ''रजक'' बाजा किराए पर किया, हिन्दुओं ने तब उसका बहिष्कार कर रखा था। सरदार पटेल ने साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए शहर में पदयात्रा का नेतृत्व किया। इस तरह सूरत शहर में साम्प्रदायिक दंगों का इतिहास है लेकिन नई-पीढ़ी बाबरी मस्जिद गिरने के बाद हुए दंगों से पूर्व हुए सूरत के चन्द दंगों के इतिहास के बारे में अधिक नहीं जानती। यहां दोनों समुदायों में कमोबेश सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध थे।

सूरत विगत की भांति स्वतंत्रता के बाद देश का तेजी से औद्योगीकृत होता शहर बन गया। जितना विस्तार सूरत का हुआ, उतना भारत में बहुत कम जगह ही हुआ होगा। इसकी वृद्धि के कई कारण हैं। हजीरा में तेल भंडार और सूरत से कुछ किलोमीटर की दूरी पर प्राकृतिक गैस की खोज ने यहां बड़ी औद्योगिक योजनाओं की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह शहर अहमदाबाद, बड़ौदा, बम्बई जैसे प्रमुख शहरों और अन्य कई औद्योगिक और व्यापारिक केंद्रों से रेल व सड़क परिवहन से अच्छी तरह जुड़ा है। राज्य सरकार ने भी यहां लघु औद्योगिक इकाइयों को स्थापित करने के लिए प्रोत्साहन दिया। परिवहन नेटवर्क और सस्ते श्रम ने भी इस विकास में और योगदान दिया। कुछ उद्योगों में संकट ने, विशेषकर बम्बई और अहमदाबाद के कपड़ा उद्योग के संकट ने व्यापारियों का रुख सूरत की ओर करने में मदद की। सूरत से औद्योगिक उत्पादन का भारी मात्रा में निर्यात होता है। जरी, पावरलूम और हीरे का उद्योग सूरत के प्रमुख उद्योग हैं। इसने देश के विभिन्न भागों और राज्य के दूसरे क्षेत्रों से श्रमिकों को अपनी ओर आकर्षित किया।

1981 और 1991 के बीच शहर की आबादी बढ़कर 8 लाख से 18 लाख हो गई। सूरत के कपड़ा उद्योग में पूरे देश के 40 प्रतिशत धागे क़ी खपत है और देश के कुल वस्त्र उत्पादन का 40 प्रतिशत भाग सूरत में होता है। सूरत में 2.5 लाख से अधिक पावरलूम हैं (लगभग देश के कुल पावरलूम का आधा हिस्सा)।

बहरहाल, शहर की आर्थिक वृद्धि काफी बेतरतीब है, यहां काफी संख्या में अवैध और गैरपंजीकृत औद्योगिक इकाइयां हैं। ऐसी इकाइयों का विश्वसनीय अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इसमें श्रम कानूनों का सरेआम उल्लंघन किया जाता है और श्रमिकों का खूब शोषण होता है। श्रमिकों को बहुत कम मजदूरी मिलती है। और रोजगार की कोई सुरक्षा नहीं है। घोर शोषण की वजह से मजदूर नारकीय स्थितियों में जीने को अभिशप्त हैं और यह उनमें हिंसक प्रवृत्ति को जन्म देती है। सूरत में दिसम्बर 1992 के दंगों में भड़की सांप्रदायिक हिंसा को समझने के

लिए इस कारक को भी ध्यान में रखना चाहिए।

सूरत में भ्रष्टाचार और अपराध बहुत अधिक पनपा है। वैध और अवैध दोनों तरह की औद्योगिक इकाइयां चुंगी आबकारी, चुंगी और बिक्री कर देने से बचने की कोशिश करती हैं। यह इतना आम है कि इसे कोई बुरा नहीं मानता। यहां चुंगीकर से बचाने वाले सुसंगठित गिरोह हैं जिनके पास पर्याप्त शक्ति और प्रभावी सम्पर्क हैं। ये गिरोह चुंगी कर बचवाने के बदले में ही प्रतिदिन लाखों रुपए बटोर रहे हैं। यही नहीं, बिजली की चोरी भी आम बात है। अवैध और गैरपंजीकृत इकाइयों को बिजली का वैध कनेक्शन नहीं मिलता। यहां तक कि पंजीकृत इकाइयां रिश्वत देकर बिजली चोरी करती हैं और बिजली विभाग को लाखों रुपए का चूना लगाती हैं।

जमीन के सौदों से भ्रष्टाचार और तुरन्त लाभ कमाने की प्रवृत्ति भी पनपी है। सूरत में जमीनों की कीमत बम्बई के बराबर है। हीरे व अन्य उद्योगों और गैर-कानूनी गतिविधियों से एक छोटा सा वर्ग अत्यधिक समृद्ध हो गया है। यहां एक ओर मजदूर वर्ग गन्दी और भीड़ भरे स्लम में रह रहा है तो दूसरी ओर अठवा लाइंस और घोड डोड रोड जैसे शहर के पॉश इलाकों में तेजी से ऊंची-ऊंची इमारतें बढ़ रही हैं। शहर में अमीरों के लिए खर्चीले पार्लर, रेस्टोरेंट और खरीददारी केंद्र हैं। भवन-निर्माता गुट अत्यधिक अमीर और शक्तिशाली हो गया है। इस गुट ने न केवल जमीन की कीमतों में भारी वृद्धि की है, बल्कि बाहुबल से जमीन पर कब्जा करने वाले भू-माफिया को भी प्रोत्साहन दिया है। इसमें कोई हैरानी की बात नहीं कि सूरत में अपराध बहुत अधिक है। बम्बई और अहमदाबाद से अपराध-जगत के बदनाम सरगना सूरत की ओर आकर्षित हुए हैं। कहा जाता है कि अहमदाबाद के अपराध सरगना लतीफ ने अपना शराब बेचने का धंधा सूरत में स्थापित किया है। शराब बंदी मजाक बनकर रह गई है और शहर में शराब खुलेआम बिकती है। चोरी -डकैती की घटनाएं दिन-प्रतिदिन हो रही हैं। उड़ीसा और उत्तर प्रदेश से आए मजदूर ''कच्छा-बनियानधारी'' गिरोहों में सक्रिय हैं। ये गिरोह प्रायः प्रतिदिन एक फ्लैट पर हमला करते हैं। गुजराती दैनिक ''संदेश'' में प्रोफेसर हकुमत देसाई ने लिखा कि सूरत के लगभग 1/8 निवासी बलात्कारी हैं। श्रमिक विशेषकर काठियावाड़ी श्रमिक लम्बे समय से अपने परिवारों से दूर रह रहे हैं, सेक्स की दृष्टि से हताश-निराश हैं और बार-बार वेश्या-गमन करते हैं, जिससे ''एड्स'' की बीमारी भी इनमें जगह बना रही है। सूरत लूटखसोट, भयादोहन, चोरी, बलात्कार, औरतों से छेड़छाड़, अवैध शराब और हफ्ता वसूलने वाले गिरोहों के लिए बदनाम है। ये सब राजनीति के अपराधीकरण की जमीन तैयार करते हैं, ये अपराधी या तो कांग्रेस

और भारतीय जनता पार्टी जैसे राजनीतिक दलों में शामिल हो गए हैं या फिर अपने धन और बाहुबल से इनके निर्णयों को प्रभावित करते हैं। इन पार्टियों का पुराना नेतृत्व जो इन पर निर्भर नहीं करता था वह हाशिये पर चला गया है। नई पीढ़ी के राजनीतिज्ञों, ने जिनके अपराधियों से सीधे और गहरे संबंध हैं, इस पुराने नेतृत्व की जगह ले ली है। सूरत के कांग्रेसी विधायक की छवि एक भू-माफिया की है जिसके अपराधियों से गहरे संबंध हैं। इसी तरह भारतीय जनता पार्टी भी बाहुबल वाले गिरोहों को अपने दामन में लेने के लिए प्रयासरत है। राज्य मशीनरी और विशेषकर पुलिस के ऊपर भाजपा के प्रभाव से अपराधी उसकी ओर आकृष्ट होते हैं। आश्चर्य नहीं है कि सूरत में बन्दूकें और हथियार सरेआम मिलते हैं। भारतीय जनता पार्टी का एक नेता, जो दिसम्बर 1992 के दंगों से पहले सूरत नगर निगम के चुनावों में उम्मीदवार था, पुलिस ने उसे गैर-कानूनी रिवाल्वर और काफी कारतूस रखने के जुर्म में दोषी ठहराया था। समाज-विरोधी हिन्दू तत्व भी भारतीय जनता पार्टी के नजदीक जा रहे हैं। दंगों से चन्द महीने पहले ही पुलिस को बन्दूकों के फर्जी लाइसेंस बनाने वाले गिरोह का पता चला, जिसमें कई राजनीतिज्ञ, अपराधी और भवन निर्माता शामिल थे।

सूरत के दंगों को समझने के लिए इन सब कारकों को ध्यान में रखना आवश्यक है। सूरत को अब तक साम्प्रदायिक सद्भाव और शान्ति का दुर्ग माना जाता था। 1927 के बाद सूरत में साम्प्रदायिक दंगा नहीं हुआ। दक्षिण गुजरात के दो औद्योगिक नगरों अहमदाबाद और बड़ौदा में जहां साम्प्रदायिक हिंसा का प्रचलन आम हो गया है, वहीं सूरत शहर इतना शान्तिपूर्ण क्यों था इसके बारे में कई धारणाएं हैं।

सूरत में वोहरा, खोजा और मेमन भी थोड़े-बहुत हैं, गुजरात के मुसलमानों में ये तीनों व्यापारिक समुदाय हैं। असल में ये तीनों समुदाय गुजराती संस्कृति में रचे-बसे हैं और दूसरे गैर-मुस्लिम समुदायों से अच्छी तरह घुले मिले है। इन तीनों समुदायों के लोगों के हिन्दू व्यापारियों के साथ निकटता के सम्बन्ध हैं। इनकी जड़ें शहर की संस्कृति में हैं। ऐसा माना जाता है कि इनके कारण ही शहर में साम्प्रदायिक सद्भाव और शान्ति बनी रही है। वाणिज्य और उद्योगों की तीव्र वृद्धि से जब यहां स्थानीय लोगों से श्रम की मांग पूरी नहीं हुई तो बाहर से श्रमिक लाए गए। विशेषकर आंध्र प्रदेश, काठियावाड़ (गुजरात का क्षेत्र) और उड़ीसा से। बाहर से लोगों के आने पर शहर की आबादी में बहुत तेजी से वृद्धि हुई।

बेरोजगारी का कम होना भी साम्प्रदायिक सद्भाव व शान्ति का एक कारण माना गया। जब लोग अपने काम में लीन होते हैं तो न तो उनमें हिंसक प्रवृत्ति

पनपती है और न ही उनके पास समय होता है। वे अपने जीवन निर्वाह के लिए धन कमाने में अधिक व्यस्त होते हैं। विभिन्न समुदायों के बीच सोहार्दपूर्ण संबंध बनाने में तीसरा कारण शहर का इतिहास माना गया। शहर का साम्प्रदायिक हिंसा का इतिहास (उपरोक्त दो घटनाओं को छोड़कर) नहीं है, और इसलिए इतिहास की कड़वी यादें नहीं हैं। वास्तव में अधिकांश लोगों को शहर की इस विरासत पर नाज है।

लेकिन 7 दिसंबर की घटना यह बात अच्छी तरह से दर्शाती है कि ठीक उन्हीं कारकों की वजह से धीरे-धीरे और क्रमश: सांप्रदायिक शांति और सौहार्द क्षरित हुआ है, जो कि तेज वद्धि और विकास लाए थे। यह वैश्विक अनुभव है कि आर्थिक समृद्धि एवं विकास के समाज पर कुछ नकारात्मक प्रभाव भी पड़ते हैं। आर्थिक विकास चूंकि सामाजिक संरचना में परिवर्तन लाता है इसलिए प्राय: वह हिंसा (वर्ग, जाति या सांप्रदायिक हिंसा) में वृद्धि करता है (पुराने विशेषाधिकार प्राप्त समूह अपने विशेषाधिकारों के छिनने के कारण इस परिवर्तन का प्राय: हिंसक रूप से प्रतिरोध करते हैं)। यह भी अच्छी तरह ज्ञात है कि शहरीकरण के परिणामस्वरूप अपराधों का ग्राफ बढ़ा है। भारत जैसे पिछड़े देशों में विकास के फलस्वरूप अवैध शराब (विशेषकर जहां शराबबंदी लागू हैं), तस्करी से आए सामानों की मांग और इससे सम्बन्धित दूसरी गतिविधियां बढ़ी हैं।

तेज शहरीकरण के अन्य दुष्परिणाम भी हैं। प्रवासी-श्रमिकों के बाहुल्य से पुरानी आबादी व्यवस्था में गम्भीर असंतुलन हुआ है। इसका सबसे बुरा पहलू यह है कि प्रवासी श्रमिकों की स्थानीय संस्कृति में जड़ नहीं होती और वे अलगाव महसूस करते हैं। वे यहां सिर्फ धन कमाने आते हैं और शहर उनके लिए श्रम और धन के आदान-प्रदान का महाशिविर मात्र है। उनका शहर से न तो कोई भावनात्मक लगाव होता है और न ही उनका कोई नैतिक दायित्व। अलगाव की भावना (यदि इसमें आर्थिक निराशा भी जोड़ दें तो) रखने वाले लोग आमतौर पर हिंसक हो जाते हैं और संवेदनशील और तनावपूर्ण स्थिति में आसानी से उनका दोहन किया जा सकता है।

बाद में सूरत में इन तत्वों ने उसे हिंसा की खाई में धकेला। यह सिर्फ समय और विभिन्न कारकों का योग था। भारतीय जनता पार्टी, विश्व हिंदू परिषद, राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघ के सतह के नीचे चलते रहे घृणा के प्रचार ने इसमें ईंधन का काम किया। इसी तरह बाबरी-मस्जिद एक्शन कमेटी और अन्य विवेकहीन मुस्लिम नेताओं ने भी मुसलमानों की भावनाओं से खिलवाड़ किया। मुस्लिम समुदाय में भी असंतोष खदबदा रहा था।

यहां हम सूरत में प्रवासी मजदूरों की तेज वृद्धि से जनसंख्या के बदलते पैटर्न पर थोड़ प्रकाश डालना चाहेंगे। सूरत दंगों के अध्ययन से पता चला कि अलगावग्रस्त और कुंठित प्रवासी श्रमिकों ने दंगों में अत्यधिक योगदान दिया। जैसा कि ऊपर ध्यान दिलाया गया है कि भारतीय जनता पार्टी और तत्ववादी मुस्लिम प्रचार ने इसे बढ़ावा दिया। इन्होंने इनको लूटपाट, आगजनी और हत्याओं में भागीदारी के लिए उकसाया।

सूरत की प्रवासी आबादी में मुख्यत: मराठी, उत्तर भारतीय, तेलुगु श्रमिक, उड़िया माली और काठियावाड़ी हैं। इनमें से अधिकांश भीड़-भरे व छिन्न-भिन्न अव्यवस्थित स्लमों में बहुत नारकीय जीवन जी रहे हैं। इनकी आमदनी बहुत कम है और रोजगार की कोई सुरक्षा नहीं है। इनमें से अधिकतर लोग जैसे काठियावाड़ी,अपने परिवारों के साथ नहीं रहते। इस प्रकार, उनकी स्वाभाविक यौन आवश्यकताओं की पूर्ति भी नहीं होती। जहां तक बलात्कार के मामलों का सम्बन्ध है कुछ हद तक इस कारक ने भी योगदान दिया।

महाराष्ट्र के लोग

महाराष्ट्र के लोग अन्य क्षेत्र के श्रमिकों से पहले सूरत आए। वे नंदुरबार, धुलिया, जलगांव, नासिक, औरंगाबाद और अन्य क्षेत्रों से यहां आए। इनमें सूरत जिले की सीमा से लगते खानदेश के खानदेशियों का समूह सबसे बड़ा है। इन प्रवासी श्रमिकों में अधिकांश छोटे किसान हैं। रोजगार के कम अवसर व सूखा आदि इनके पलायन के प्रमुख कारण हैं। महाराष्ट्र के प्रवासियों में शिम्पी, चमार, पाटिल, सोनी जैसी निम्न जाति के हिंदू, मुसलमान और दलित हैं। दलित रिपब्लिकन पार्टी और दलित सेना में संगठित हैं और महाराष्ट्र के अन्य लोग आम तौर पर कांग्रेस या जनता दल के समर्थक हैं। वे पावरलूम, सिलाई एवं रंगसाज उद्योगों में काम करते हैं। मुसलमान छोटे दुकानदार और रिक्शा चालक हैं और कई कच्ची शराब के धंधे में लिप्त हैं। दंगे के समय जनता दल या कांग्रेस की टिकटों पर चुने गए महाराष्ट्र के छ: निगम पार्षद थे।

शिवसेना अब महाराष्ट्र के श्रमिकों में अपना आधार बनाने की कोशिश कर रही है। सूरत में महाराष्ट्र के लोगों में अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए इसने जय भवानी युवक मंडल और छत्रपति शिवाजी मंडल बनाए हैं। शिवसेना ने हाल के दंगों का उपयोग हिन्दुओं और विशेषकर महाराष्ट्र के लोगों में समर्थन जुटाने के लिए किया। यह साम्प्रदायिक राजनीति के प्रचार के लिए सूरत की पंडेसरा बस्ती में विशेष तौर पर लगातार बैठकें कर रही थी और इसमें अपनी सक्रिय भागीदारी के लिए ''गणेश

उत्सव'' ''शिव जयन्ती'' जैसे समारोह मना रही है।

उत्तर भारतीय

सूरत में उत्तर प्रदेश के लगभग 1.5 लाख प्रवासी श्रमिक हैं। ये फैजाबाद (निम्न जातियां, हरिजन, आदिवासी), वाराणसी (यादव), गोरखपुर (ब्राह्मण), बांदा (ब्राह्मण, हरिजन, आदिवासी इनकी उग्र छवि है और ये बहुत कम पढ़े-लिखे हैं), इलाहाबाद (पटेल-सवर्ण जाति)और कुछ बिहार से आते हैं। उत्तर प्रदेश के लगभग आधे लोग बिना परिवारों के यहां रहते हैं। वे पावरलूम और रंगसाज उद्योग में काम करते हैं। ये समस्या ग्रस्त क्षेत्र पंडेसरा में सबसे अधिक हैं। पंडेसरा सूरत का बाहरी हिस्सा है और शहर से अच्छी तरह नहीं जुड़ा है। पंडेसरा के पास कई वर्षों से उनकी कॉलोनी बसी है, लेकिन वहां न तो बिजली या पानी के कनेक्शन हैं और न ही कोई पक्की सड़क। उत्तर भारत के लोगों में अपनी बदतर जीवन स्थितियों के प्रति भारी असंतोष है। बहरहाल वे यहां ऐसी बदहाल परिस्थितियों में इसलिए रह रहे हैं, कि वापस जाने पर उनको कोई रोजगार नहीं मिलेगा। उत्तर भारत के 40 प्रतिशत श्रमिक भूमिहीन हैं, अन्य लगभग 40 प्रतिशत के पास बहुत कम जमीन है और लगभग 5 प्रतिशत के पास ही अच्छी जमीन है। इसकी ओर ध्यान देना रोचक होगा कि सूरत में इन उत्तर-भारतीय श्रमिकों की कोई पंचायत या जाति-संगठन नहीं है। वे जाति के किसी नियम को कठोरता से नहीं मानते, एक-दूसरे से खुले रूप में मिलते हैं और एक-दूसरे के घर खाना खाते हैं। इसका आंशिक कारण यह है कि घर से दूर रहते हुए उनको जाति से अधिक एक दूसरे की जरूरत है। इनमें अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए भारतीय जनता पार्टी ने इनकी गंगा-ताप्ती रेलवे लाइन मांग का समर्थन किया। उत्तर प्रदेश के इन श्रमिकों का अपने नियोक्ताओं के प्रति उग्र संघर्ष का रुझान हो गया है।

चूंकि राम उत्तर-भारतीयों में बहुत लोकप्रिय हैं, इसलिए भारतीय जनता पार्टी श्रमिकों के एक वर्ग को इसके माध्यम से अपनी ओर खींचने में सफल हुई। 6 दिसंबर, 1992 को कुछ श्रमिक अयोध्या में ''कार सेवा'' के लिए भी गए। लेकिन आम तौर पर वे सोचते हैं कि वे सूरत में रोजी-रोटी कमाने के लिए आए हैं और उनको अयोध्या-मुद्दे पर अपना समय बरबाद नहीं करना चाहिए। बहरहाल, पंडेसरा के उत्तर-भारतीय श्रमिकों ने दंगों में बढ़-चढ़कर भाग लिया, उनको जानबूझकर इसके लिए उकसाया गया था। यह अफवाह फैलाई गई थी कि मुसलमानों की विशाल भीड़ उनके मंदिर पर हमला करने आ रही है और हिन्दुओं को इसकी सुरक्षा के लिए इकट्ठे हो जाना चाहिए। असुरक्षा की भावना, कर्फ्यू और सामान्य तनाव के

कारण हजारों की संख्या में भीड़ इकट्ठी हो गई। तब इसे चुनिंदा जगहों पर हमले करने के लिए उकसाया गया। पुलिस ने भी भीड़ को लूटमार के लिए प्रोत्साहित किया। यह उल्लेखनीय है कि दंगों में वे श्रमिक सबसे आगे थे जो यहां बिना परिवारों के रहते थे, जबकि जो यहां परिवारों के साथ रहते थे, वे अपने परिवारों की सुरक्षा के बारे में अधिक चिन्तित थे। दंगों के बाद काफी श्रमिक पछताए कि उन्होंने अफवाहों पर विश्वास करके मुसलमानों पर हमला किया। उनको इस बात का दुख था कि दंगों के कारण उनको दो से तीन महीनों की मजदूरी का घाटा उठाना पड़ा । पंडेसरा में काफी मुसलमान श्रमिक थे जो गुजरात औद्योगिक विकास निगम में काम करते थे और दंगों के बाद जब वे अपने काम पर आए तो उनके खिलाफ कोई सांप्रदायिक भावना नहीं थी।

तेलुगु श्रमिक

सूरत में आंध्र प्रदेश के दो लाख के लगभग श्रमिक हैं। पिछले दो दशकों से वे रोजगार की तलाश में सूरत आ रहे हैं। इनमें से अधिकतर आंध्रप्रदेश के तेलगांना क्षेत्र से हैं, आठ जिलों तक फैला यह क्षेत्र आंध्र प्रदेश का पिछड़ा क्षेत्र है। तेलगांना में वामपंथियों की परम्परागत पकड़ है। यहां तटीय क्षेत्र और दूसरे क्षेत्रों के लोग भी हैं। आंध्र प्रदेश के 50 प्रतिशत प्रवासी श्रमिक जुलाहा जाति से सम्बन्धित हैं, जिन्हें पदमशाली कहा जाता है। 1983 तक सूरत में केवल पदमशाली आए थे, लेकिन अब ब्राह्मण, वैश्य, चदली (धोबी), मंगाली (नाई) और अन्य जातियों के लोग भी सूरत में आ रहे हैं।

सूरत में, लगभग आधे तेलुगु श्रमिक अपने परिवारों के साथ रह रहे हैं और शेष ने अपने परिवारों को पीछे (जन्म-स्थान) छोड़ दिया है। लगभग पूरा तेलुगु समुदाय पावरलूम उद्योग में कार्यरत है, इनमें से अधिकतर मजदूर हैं और कुछ ने अपने पावरलूम भी लगा लिए हैं। इन लोगों के लिए भाषा बहुत बड़ी बाधा साबित हुई है, और इनमें से कम लोग ही गैर-तेलुगु लोगों से हिन्दी या गुजराती में बातचीत कर सकते हैं। इसलिए ये तेलुगु लोगों के बड़े समूह में ही रहते हैं। इन्होंने सूरत में एक मिनी-आंध्र बना लिया है, लेकिन यहां ये पूरी तरह सांस्कृतिक अलगाव महसूस करते हैं। वे अपने कार्यक्षेत्र और निकास के अलावा सूरत शहर से बहुत कम परिचित हैं।

सूरत में इनके जाति संघ, जाति-पंचायत और पारम्परिक देवता मारकण्डेश्वर की मजबूत मौजूदगी है। दो तेलुगु व्यक्तियों के बीच झगड़े की पुलिस में शायद ही कोई रिपोर्ट की जाती हो। वे इनको आमतौर पर अपनी जाति-पंचायतों में सुलझा

लेते हैं। सूरत में वे अपनी परम्पराओं को लेकर आन्ध्र प्रदेश की अपेक्षा अधिक सख्त हैं। सूरत में बसे पदमशाली रामजन्मभूमि मुद्दे के समर्थक हो गए हैं। वे हैरान थे कि हिन्दू अपने ही देश में मंदिर क्यों नहीं बना सकते। दंगों के बाद वे भारतीय जनता पार्टी के और नजदीक आए क्योंकि वे विश्वास करते थे कि यही पार्टी उनको बचा सकती है। जिस बस्ती में वे रहते थे वहां दैनिक मामलों में मुसलमान हावी रहते थे और इसीलिए तेलुगु लोगों में उनके प्रति रोष की भावना घर कर गई और इसी स्थिति का लाभ उठाकर भारतीय जनता पार्टी तेलुगु लोगों में भारी समर्थन पाने की कोशिश कर रही है।

उड़िया माली

उड़ीसा के प्रवासी श्रमिक आपस में करीब से जुड़े हैं। इनमें आपसी एकता व भाईचारा दूसरे क्षेत्रों के प्रवासी–श्रमिकों की अपेक्षा अधिक है। ये मुख्यत: उड़ीसा के पहाड़ी क्षेत्र के पिछड़े जिले गंजम से आए हैं। कुछ पुरी व अन्य जिलों से आए हैं। सूरत में उड़िया श्रमिकों की संख्या तीन लाख से अधिक है। ये भी अधिकांशत: पाबरलूम उद्योग में ही कार्यरत हैं। सूरत में इनको उड़िया माली कहा जाता है क्योंकि शुरू में इन्होंने यहां माली के रूप में काम किया। उड़िया श्रमिक दूसरों के सामने शर्माते हैं और यदि उनसे सवाल किया जाए तो अपने रिवाजों और परम्पराओं को दृढ़ता से उचित ठहराते हैं। कुछ उदाहरणों से इसका पता चलता है। ट्रेड यूनियनों में सक्रिय भूमिका निभाना तो दूर की बात है, उड़िया श्रमिक इनमें शामिल भी नहीं होते। लेकिन जब एक फैक्टरी से एक उड़िया श्रमिक को नौकरी से निकाल दिया गया तो सभी उड़ीया श्रमिकों ने जबरदस्ती फैक्ट्री बंद करा दी और कोई अन्य उनका स्थान न ले ले इसलिए लाठियां लेकर वहीं पहरा देना शुरू कर दिया। फैक्ट्री मालिक ने पुलिस बुलाई, लेकिन वे निर्भयता से डटे रहे। उड़ीया श्रमिकों के इस कड़े रुख ने मालिक को निकाले गए श्रमिक को वापस लेने पर विवश कर दिया। उड़िया श्रमिकों से कोई झगड़ा नहीं करता क्योंकि वे एकदम बड़ी संख्या में इकट्ठे हो जाते हैं और बदला लेते हैं। वे आमतौर पर पुलिस में शिकायत दर्ज नहीं करवाते और अपने आपसी झगड़ों को पंचों के माध्यम से ही निपटाते हैं। वे पुलिस से डरते भी बहुत हैं। और किसी उड़िया श्रमिक के खिलाफ गिरफ्तारी वारंट होने पर वह अपने मूल निवास स्थान को भाग खड़ा होता है। उड़िया श्रमिकों को किसी तरह का राजनीतिक समर्थन नहीं हैं क्योंकि एक तो वे पूर्णतया काम में ही मगन रहते हैं और दूसरे उनमें कोई मध्यवर्ग भी नहीं है।

सूरत में, बहुत कम उड़िया श्रमिक परिवार सहित रहते हैं और उनमें से बहुत

कम अपने बच्चों को स्कूल भेजते हैं। शहर में शायद ही कोई उड़िया स्कूल है। इसलिए उड़िया अध्यापक भी नहीं है। अपने को बचाने के लिए कड़ा रुख प्रदर्शित करना ही उनके सामने एक मात्र रास्ता बचता है। उड़िया श्रमिकों ने अपने वोट अक्सर कांग्रेस को दिए हैं अब भाजपा भी उनका समर्थन हासिल करने का प्रयास कर रही है। उड़िया श्रमिक सबसे कम साम्प्रदायिक हैं और उनमें शायद ही मुसलमान विरोधी आग्रह हों।

काठियावाड़ी

काठियावाड़ी 1970 के आरम्भ में गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र से विशेषकर जूनागढ़, अमरेली, भावनगर और दूसरे स्थानों से सूरत आए। सौराष्ट्र गुजरात का पिछड़ा हुआ क्षेत्र है। यहाँ के निवासी मुख्यत: खेती पर निर्भर हैं, जो कि जल-संसाधनों की कमी के कारण बहुत अधिक विकसित नहीं हुई। जमीन कुछ लोगों के हाथ में है और अधिकांश जमीन में मूंगफली की नकदी फसल उगाई जाती है।

सौराष्ट्र के अधिकतर प्रवासी श्रमिक पटेल जाति से संबंधित हैं। सौराष्ट्र में रूढ़िवादी धार्मिक व्यवहार और जाति-व्यवस्था कठोर है। उच्च जातियां रोजमर्रा के जीवन में पिछड़ी जातियों और दलितों पर अत्याचार करती हैं। बाणकरों (गुजरात की अनुसूचित जाति) को बेहतर कपड़े पहनने, उच्च जाति के लोगों को सलाम न करने आदि की तरह के किंचित गरिमामय व्यवहार और समृद्धि के लिए निर्दयतापूर्वक पीटना और आतंकित करना आम बात है।

काठियावाड़ी अति धार्मिक हैं और संतों की पूजा करते हैं। भारतीय जनता पार्टी ने सौराष्ट्र में पैठ बनाई है क्योंकि कुछ संतों ने अपने प्रवचनों में भारतीय जनता पार्टी के दृष्टिकोण का प्रचार किया है। सौराष्ट्र में इसकी उपस्थिति जनसंघ के दिनों से ही है। भारतीय जनता पार्टी ने सौराष्ट्र के लोगों का दिल जीतने के लिए अयोध्या में राम मंदिर निर्माण के लिए धुंआधार प्रचार अभियान चलाया और मुसलमानों के विरुद्ध दुराग्रहों और झूठों का प्रचार किया। इस धुंआधार प्रचार अभियान का काठियावाड़ियों पर बहुत प्रभाव पड़ा। इस तरह सूरत के काठियावाड़ी भी भारतीय जनता पार्टी के प्रभाव में आ गए।

1989 के विधानसभा चुनावों में सूरत की 4 विधानसभा सीटों में से 3 भारतीय जनता पार्टी ने जीती। काठियावाड़ी बहुल बारछा रोड हल्के से मनुभाई पीथावाड़ीवाला चुनाव जीता, जो अवैध गतिविधियों में शामिल लोगों, भू-माफिया और हीरे की फैक्ट्रियों के मालिकों से संबंधों के लिए बदनाम था। काठियावाड़ी पारम्परिक और अतिथि सत्कारी हैं, लेकिन जब पारम्परिक मूल्यों और जाति की

परिपाटियों पर हमला होता है तो बहुत उग्र प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। 6 दिसम्बर, 1992 को बाबरी मस्जिद गिरने के बाद के घटनाक्रम और अफवाहों ने, संघ परिवार के मुस्लिम विरोधी प्रचार से शहर में बने साम्प्रदायिक माहौल में चिंगारी का काम किया। हजारों काठियावाड़ी सूरत में दंगों के दौरान गलियों में निकल पड़े और उन्हें रोकने वाला कोई नहीं था, यहां तक कि पुलिस भी नहीं। वे धर्म के नाम पर पूरे दो दिन तक मुसलमानों को लूटते, बलात्कार, हत्याएं और अन्य क्रूरताएं करते रहे। सौराष्ट्री पहचान दूसरे ढंग से भी काम करती है, किसी भी आंदोलन के दौरान चाहे वह साम्प्रदायिक दंगें हों या आरक्षण विरोधी आंदोलन, हीरे की फैक्ट्रियों के मालिक अपनी फैक्ट्रियों को बंद करके अपने मजदूरों को आंदोलन के लिए इकट्ठा करते रहे हैं।

हीरों के उद्योगों में काम करने वाले काठियावाड़ी श्रमिक अत्यधिक गरीबी में रहते हैं, 60 प्रतिशत अपने परिवारों को सूरत में लाकर गुजारा नहीं कर सकते, वे भीड़ भरे कमरों में रहते हैं और सोने की जगह भी बांट लेते हैं। यहां तक कि वे फैक्ट्री में भी रहते हैं। इनमें अधिकतर श्रमिक अनपढ़ हैं और वे पूरी तरह सुनी-सुनाई बातों पर भरोसा करते हैं। इस तरह साधु, नियोक्ता, और राजनीतिज्ञ उनके दिमाग में साम्प्रदायिक प्रचार डाल देते हैं। यद्यपि काठियावाड़ियों का अपना मध्यवर्ग है, लेकिन यह काठियावाड़ी मजदूरों के हितों और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करता, बल्कि अभिजात वर्ग के हितों के लिए काठियावाड़ी मुद्दों या संकीर्ण साम्प्रदायिक राजनीति में उनका दोहन करता है।

सामुदायिक जीवन और एकता की मजबूत भावना उनकी विशिष्ट काठियावाड़ी पहचान को बनाए हुए है। अन्य क्षेत्रों के प्रवासी-श्रमिकों की तरह इनमें भी क्षेत्रीय एकता व भाईचारे की भावना है। इस क्षेत्रीय एकता के कारण उच्च जाति के काठियावाड़ी, हीरे की फैक्ट्रियों के मालिक, भू-माफिया और अन्य अपनी साम्प्रदायिक राजनीति के लिए इनका दोहन करते हैं। काठियावाड़ी पहचान के नाम पर निहित स्वार्थी तत्वों द्वारा काठियावाड़ी मजदूरों को हजारों की संख्या में किसी भी मुद्दे पर फिर चाहे सूरत शहर में गैरों के बरअक्स उनकी पहचान का मामला हो, पुलिस हो या आरक्षण-विरोधी आंदोलन हो, बिना किसी खास प्रयास के इकट्ठा किया जा सकता है, और रोजगार की असुरक्षा, और घोर शोषण उनको क्षेत्रीय पहचान के प्रति और अधिक संवेदनशील बना देती है।

II

सूरत के तेजी से विस्तार से अपराधीकरण ने नई ऊंचाइयां छू ली हैं। यह

शब्दशः अपराधियों की शरणस्थली बन गई है। बहुत से खतरनाक अपराधियों ने इस शहर में शरण ले रखी है और जो जल्दी से अमीर हो जाना चाहते हैं वे भी वहां आकर्षित होते हैं। यह शहर इस बात के लिए ख्यात है कि यहां सरकारी तंत्र का दखल बहुत कम है। यहां कर-कानूनों का सरेआम उल्लंघन होता है और जिस शहर में खुलेआम कानूनों का उल्लंघन होता हो, वहां लम्बे समय तक शान्ति नहीं रह सकती। इसके अलावा गुजरात के तत्कालीन मुख्यमंत्री चिमनभाई पटेल ने दक्षिण गुजरात में अपने पांव जमाने के लिए जनता दल में अत्यधिक संदेहास्पद चरित्र के लोगों को प्रवेश दिया। यह दुर्भाग्यपूर्ण था कि सूरत में कांग्रेस नेतृत्व कुख्यात किस्म के मुसलमानों के पास था। इन परिस्थितियों में भारतीय जनता पार्टी को कांग्रेस और जनता दल आदि से अलग तरह की पार्टी के रूप में देखा गया। 27 दिसम्बर, 1993 को सूरत नगर निगम के चुनाव भी होने थे और भारतीय जनता पार्टी के धुंआधार प्रचार ने पूरी तरह से भ्रष्ट और बेईमान कांग्रेस के मुकाबले अपने को रामराज्य लाने वाली पार्टी के रूप में प्रस्तुत किया। कांग्रेस शासन को गुण्डा राज के रूप में प्रचारित किया गया, इसका अर्थ था कि यह लतीफ गिरोह और उसकी आपराधिक गतिविधियों से जुड़ी हुई है। कांग्रेस ने भारतीय जनता पार्टी के साम्प्रदायिक प्रचार का मुकाबला करने के लिए शायद ही कुछ किया हो, इसने दूसरे मुद्दों पर अधिक जोर दिया। इस तरह भारतीय जनता पार्टी लोगों के लिए अधिक स्वीकार्य हो गई और देश में साम्प्रदायिकतापूर्ण माहौल में हिन्दुओं की तरफदारी ने इसे और अधिक लोकप्रिय बना दिया। सूरत शहर के दंगों को समाजार्थिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि के रूप में देखना जरूरी है। शहर की आबादी 1971 के 4.71 लाख से बढ़कर 1991 में 15.71 लाख हो गई—यह हर तरह बहुत अधिक वृद्धि थी—उसे लम्बे समय तक हिंसा से नहीं रोका जा सकता फिर चाहे वह साम्प्रदायिकता के रूप में हो या किसी अन्य रूप में। यह सिर्फ समय की बात थी।

सिल्क, पावरलूम, कपड़ा और हीरा उद्योग शहर के प्रमुख उद्योग हैं। कुछ बड़े स्तर के पूंजी प्रधान उद्योगों में भी वृद्धि हुई। श्रमिकों को अधिकतर काम ठेके पर दिया जाता है और वे अधिकांश समय धन कमाने में व्यतीत करने की कोशिश करते हैं। हीरे-काटने का उद्योग बहुत फल-फूल रहा है और इसमें सौराष्ट्र के काठियावाड़ी श्रमिक अधिक कार्यरत हैं। सिल्क और पावरलूम में उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार और तमिलनाडु के श्रमिक कार्यरत हैं। ये बहुत अधिक संख्या में हैं और अधिकतर झुग्गी झोपड़ी कॉलोनियों में रहते हैं, जो कि बहुत से स्थानों पर बन गई हैं।

आर्थिक विकास ने विभिन्न जातियों और सामुदायिक समूहों की सामाजिक-

आर्थिक हैसियत को लगभग बदल दिया। परम्परागत उच्च जाति ब्राह्मणों और बनियों का प्रभाव समाप्त हो रहा था और मध्यम जातियां जैसे कुंनबियों, खत्रियों, घांची और गोला राना प्रभावशाली समूहों के रूप में उभरीं। नए उभरते समूह अक्सर अधिक गतिशील हैं लेकिन कम मूल्यपरक हैं, वे कड़ी मेहनत करते हैं लेकिन मानसिक शान्ति और सद्भाव का आनन्द नहीं लेते, ये धार्मिक कम और साम्प्रदायिक अधिक हैं। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में यह तो होना ही था। परम्परागत समाजों में लोगों का झुकाव धार्मिकता की ओर था साम्प्रदायीकरण की ओर नहीं। जहां परम्परागत समाजों में धार्मिक या पंथ-सम्बन्धी तनाव होता था, वहीं आधुनिक समाजों में साम्प्रदायिक तनाव है। उभरते समूहों का भी, जैसे मध्यम जातियों (हिन्दू और मुसलमान दोनों में) का झुकाव साम्प्रदायिक अधिक है। विभाजन-पूर्व के समय में मुसलमानों के उभरते मध्यवर्ग ने असंगत साम्प्रदायिक दृष्टिकोण अपनाया और देश का विभाजन हुआ। हिन्दुओं में उभरता मध्य वर्ग और मध्यम-जातियां अपनी आक्रामक प्रभुता को प्रकट करने के लिए लगातार साम्प्रदायिक होती जा रही हैं। भारतीय जनता पार्टी ने इनको एक समुचित विचारधारा और संगठन प्रदान किया। आज यह वर्ग महसूस करता है कि हिंदुओं को हल्के से लिया जाता है और एक तरफ पिछड़ी जातियों और दलितों के बीच जुझारूपन के उद्भव और दूसरी तरफ मुस्लिमों एवं सिखों द्वारा अपने अधिकारों की जोरदार अभिव्यक्ति के चलते उनके विशेषाधिकारों को खतरा उत्पन्न हो गया है।

उच्च जाति के हिन्दुओं के मुसलमानों, दलितों और पिछड़ों के प्रति दृष्टिकोण के बारे में कुछ बातें कहना जरूरी है। वे मुसलमानों को आक्रांता मानते हैं, जिन्होंने हिन्दुओं को हजारों सालों तक गुलाम बनाकर रखा, हिन्दुओं पर अत्याचार किए और उनके मंदिर गिराए। सिर्फ यही नहीं, वे कभी भारतीय मुख्यधारा का अंग नहीं बने, मुसलमानों ने अपनी अलग पहचान बनाकर रखी, इन्होंने अलगाववादी दृष्टिकोण अपनाया और अन्ततः भारत को विभाजित कर दिया। इसलिए उनके पास इनके लिए तिरस्कार और शत्रुताभाव के अलावा कुछ नहीं है। उनका यह शत्रुभाव उस वक्त और अधिक घना हो जाता है जब भारतीय जनता पार्टी उनमें अपने राजनीतिक उद्देश्यों के लिए कांग्रेस द्वारा ''मुसलमानों के तुष्टीकरण'' की अवधारणा प्रचारित करती है। उच्च जाति के हिन्दुओं में मुसलमानों के प्रति वैरभाव को इसी पृष्ठभूमि में देखना चाहिए।

जहां तक दलितों और पिछड़ी जातियों की बात है, उच्च जातियां स्वयं इनका शोषण करती हैं और उन पर हावी रहती हैं। वे यही चाहती हैं कि समाज में इनकी जैसी स्थिति हैं वैसी बनी रहे और वे सामाजिक और राजनीतिक समानता की

आकांक्षा न करें। बहरहाल वे आरक्षण के रूप में इनको छोटा सा टुकड़ा भी फेंकने को तैयार हैं, लेकिन इससे अधिक कुछ नहीं। वे इनके प्रति अधिक शत्रुताभाव नहीं रखेंगे जितना कि मुसलमानों के प्रति। इसी तरह सिखों को हिन्दू समाज और हिन्दू स्वभाव का अंग माना जाता है, वे सांस्कृतिक व्यवहार में हिन्दुओं के बहुत करीब हैं। उनको मुगलों से हिन्दुओं की रक्षा करने वाले के रूप में भी देखा जाता है। वे देश-विभाजन के समय भी हिन्दुओं के साथ थे, इन्होंने जिन्ना के हाथ में खेलने से इन्कार कर दिया था। इनकी वर्तमान उग्रता को अस्थायी विचलन के रूप में देखा जाता है, स्थायी अलगाव के रूप में नहीं। पंजाब के घटनाक्रम के बावजूद हिन्दुओं में सिखों के प्रति वैसा वैरभाव नहीं पनपा जैसा कि मुसलमानों के प्रति। यह कुछ हद तक व्याख्यायित करता है कि उच्च जाति के हिन्दुओं में मुसलमानों के प्रति ऐसी घृणा क्यों विकसित हुई और सूरत में उन पर हुए अत्याचारों के बाद भी स्वयं को दोषी नहीं मानते। वे मानते हैं कि, ''वे इसी व्यवहार के लायक हैं।'' कुछ हिन्दुओं ने सूरत में कहा, ''इन्होंने मध्यकाल में हम हिन्दुओं के साथ ऐसा ही किया था'' (इसका यह अर्थ नहीं लेना चाहिए कि सभी हिन्दुओं के ऐसे विचार हैं, हम सिर्फ साम्प्रदायिक हिन्दू या उनसे प्रभावित हिन्दुओं की बात कर रहे हैं।)

III

अब हम सूरत में 6 दिसम्बर के बाद घटी वास्तविक घटनाओं पर आते हैं। यहाँ यह बात दोहराने की जरूरत है कि सूरत में लगातार साम्प्रदायिक दंगों का इतिहास नहीं है। यहां इससे पहले दंगा 1927 में हुआ था। यहां तक कि सूरत 1969 में भी दंगा-मुक्त था, जब पूरा गुजरात अभूतपूर्व दंगों से ग्रस्त था। 1990 और 1992 में छोटी-छोटी झड़पें जरूर हुई थीं, लेकिन इतने व्यापक स्तर पर और इतने भयावह दंगे पहले कभी नहीं हुए। सूरत के, दिसम्बर 1992 के दंगों की मुख्य विशेषताओं की ओर ध्यान देना महत्वपूर्ण होगा। पहली बात तो यह कि दंगे पूरी तरह योजनाबद्ध थे। बहरहाल, यह सन्देहपूर्ण है कि दंगों के योजनाकारों ने इसका अनुमान लगाया होगा कि वे इतने व्यापक स्तर पर लोगों को मुसलमानों पर हमले करने के लिए इकट्ठा कर पायेंगे। (90 प्रतिशत से अधिक दंगा-पीड़ित मुसलमान थे)। दूसरे ये दंगे शहर के बाहरी हिस्सों में अधिक थे। तीसरे, यह ध्यान देना महत्त्वपूर्ण है कि मुसलमानों पर हमला करने वालों की भीड़ में सभी प्रवासी श्रमिक थे। शहर के बाहरी क्षेत्रों में रहने वाले काठियावाड़ी, उड़िया माली, मराठी और उत्तर भारतीय श्रमिक इसमें शामिल हुए। पहले दौर में बारछा रोड, उधना, रांदर, लिम्बायत, ढिंढोली और निओल में जहां रेल घटना घटी वहीं साम्प्रदायिक दंगे

हुए। इन सभी घटनाओं में जानबूझकर फैलाई गई अफवाहों ने बहुत विनाशकारी भूमिका निभाई। हिन्दुत्ववादी शक्तियों के पास व्यवस्थित ढंग से अफवाहें फैलाने वाला तंत्र मौजूद है। आम तौर पर यह अफवाह फैलाई गई कि बड़ी संख्या में मुसलमान हमला करने के लिए आ रहे हैं, डर ने लोगों को एकत्रित किया वे बाहर निकले और फिर मुसलमानों पर हमला किया। हमला करने वाली भीड़ का नेतृत्व संघ परिवार से सम्बन्धित या उससे सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति ने किया। मराठी, तेलुगु, उड़िया, उत्तर-भारतीय और काठियावाड़ी प्रवासी श्रमिक शहर से दूर रहते हैं, गरीबी के तनावों और दबावों में जीवनयापन कर रहे हैं, उनका शहर से कोई भावनात्मक लगाव नहीं है और इसके अलावा शहर में उनका कुछ है नहीं और इस उद्देश्य के लिए उनका आसानी से प्रयोग किया जा सकता है। इसके उदाहरण देना ठीक रहेगा कि हिन्दुत्वादी शक्तियों ने इन बाहरी लोगों के डर, रोजगार की असुरक्षा और शहर से अलगाव की भावना का दोहन किया। उदाहरण के लिए महाराणा प्रताप नगर में अफवाह फैलाई गई कि पंडेसरा में मुसलमानों ने दो उड़िया मालियों को क्रूरतापूर्ण ढंग से मार डाला इसने पूरे उड़िया समुदाय में आग लगा दी। उड़िया मालियों की भीड़ इकट्ठी हुई और 10 दिसम्बर की रात को 9 बजे स्वामी विवेकानन्द नगर में मुसलमानों के लगभग 15 घरों पर हमला किया। इसी तरह 10 दिसम्बर को रेलगाड़ी में मुस्लिम यात्रियों पर हुए हमले में भी अफवाहों की प्रमुख भूमिका थी। दूसरे क्षेत्रों से मराठियों की विशाल भीड़ डिंडोली-निओल गांव में आई। ''गुप्ती'' और 'तलवारों' से लैस भीड़ ''जय भवानी'', ''जय शिवाजी'' जैसे नारे लगा रही थी। शिवसेना के कार्यकर्ताओं ने उनको उकसाया जो शहर में अपने को राजनीतिक दृष्टि से स्थापित करना चाहते थे और दंगों में योगदान देकर अपना शक्ति प्रदर्शन करना चाहते थे। इस तरह अफवाह फैलाई गई कि उनको ''पक्की'' खबर है कि हथियारों से लैस मुसलमान हमला करने के लिए आ रहे हैं। उनको कहा गया कि जब उनको पता चला कि हिन्दुओं ने ''आत्मरक्षा'' की तैयारी कर ली है तो वे (मुसलमान) सिर पर पांव रखकर भाग गए हैं। कुछ मुसलमान दंगों के डर से रेलगाड़ी द्वारा शहर छोड़कर भाग रहे थे। उनको पकड़कर मार दिया गया और उनकी औरतों से बलात्कार करके जिन्दा जला दिया गया।

भारतीय जनता पार्टी के कार्यकर्ता योजनाबद्ध ढंग से अफवाह फैलाते हैं कि मुसलमानों का अगला निशाना तुम्हारे क्षेत्र का मंदिर है। यह अफवाह फैलाकर सैकड़ों हिन्दुओं को मंदिर की ''रक्षा'' के लिए गली में इकट्ठा किया जाता और जब इकट्ठे हो जाते तो उनसे मुसलमानों पर हमला बोलने के लिए कहा जाता।

जैसे ही बाबरी-मस्जिद गिराने की सूचना आई दूसरे कस्बों की तरह सूरत भी

तनावपूर्ण हो गया। मुसलमानों में रोष और आक्रोश था। भारतीय अल्पसंख्यक सुरक्षा संघ के मुखिया व अपराधियों से संबंध रखने वाले महमूद परदेवाला ने इस रोष को भुनाया। उसने सूरत बंद का आह्वान किया। भारतीय अल्पसंख्यक सुरक्षा संघ छोटा सा संगठन था, मुसलमानों और दलितों में उसका थोड़ा-सा आधार था। बहरहाल इस संगठन से जुड़े कुछ लोगों ने ट्रैफिक रोकने और लोगों की इच्छा के विरुद्ध शहर बंद करने की कोशिश की। यहां तक कि उन्होंने दुकानों पर पथराव किया और उन्हें नुकसान पहुँचाया। रेलवे स्टेशन के पास दोनों समुदायों ने एक-दूसरे पर पथराव किया।

चौक बाजार के पास बहुसंख्यक समुदाय की चार दुकानें जला दी गईं। अल्पसंख्यक समुदाय के दंगाइयों द्वारा की गई आगजनी से शान्तिनाथ डाहंग मिल को भी नुकसान हुआ। लगभग 11.30 बजे प्रातः बहुसंख्यक समुदाय ने इसका योजनाबद्ध ढंग से बदला लिया और नजदीक के काली मंदिर से घोषणा करके पंडेसरा हाउसिंग कॉलोनी पर आक्रमण किया। कथित तौर पर घोषणा की गई कि ''मुसलमानों को ध्वस्त कर दो।'' जिन मकानों पर हमला नहीं करना था उनकी पहचान के लिए हमले से पहले ''जय श्रीराम'' लिख दिया गया। लाठियों, गंड़ासियों से लैस लगभग 2000 लोगों की भीड़ थी, इन्होंने पहले मुसलमानों के 15 घरों को लूटा और बाद में आग लगा दी, 15 मुसलमानों को मारा और उनकी लाशों को पास में ही फेंक दिया जैसा कि हमारी जांच दर्शाती है। मि० तिवारी व अन्य हिन्दुओं ने अपने घरों में शरण देकर मुसलमानों की जान बचाने की कोशिश की और फिर भागने का रास्ता बताया। इस तरह बहुत से मुसलमानों की जान बचाई गई। यहां तक कि कुछ मुसलमानों ने 2000 लोगों की भीड़ को अपने क्षेत्र में घुसने से रोकने की कोशिश की लेकिन सफल नहीं हुए।

जितने व्यापक स्तर पर लूटपाट, आगजनी, हत्याएं हुईं, वे दर्शाती हैं कि ये सब पूर्वनियोजित ढंग से हुआ। जो भीड़ हत्याओं और लूटपाट में शामिल हुई उसके पास लाठियां, तलवारें, चाकू, लोहे की छड़, गुप्तियां, तेजाब के कुप्पे, बोतलें और पत्थर आदि थे। निजी बन्दूकों से गोली चलाने की घटनाएं भी दर्ज हुईं। यद्यपि पेट्रोल पम्प बंद थे, लेकिन पेट्रोल आसानी से मिल रहा था। यह दुकानों और घरों में आग लगाने के काम आया। कुछ दुकानें हिन्दुओं की भी जलीं, लेकिन इनकी संख्या मुसलमानों के घरों और दुकानों की तुलना में काफी कम थी। यह भी ध्यान देने की बात है कि मुसलमानों की जान और माल का नुकसान सिर्फ उन क्षेत्रों में ही अधिक नहीं हुआ जहाँ वे अल्पसंख्या में थे, बल्कि उन क्षेत्रों में भी अधिक हुआ जहाँ वे काफी बड़ी संख्या में थे। बाहर से इतनी विशाल भीड़ आई जो कि उनकी संख्या से

बहुत अधिक थी। कई मामलों में स्थानीय हिन्दू पड़ोसियों ने भी भीड़ की अगुवाई की। उनके हिन्दू पड़ोसी दबाव में आ गए थे या कुछ मामलों में मुसलमानों के वैरी हो गए थे।

विजय नगर, पंडेसरा हिदायतनगर आदि स्थानों के लोगों ने शिकायत की कि भारतीय जनता पार्टी के नगर निगम चुनावों में संभावित उम्मीदवार ने उनके राशन-कार्डों का नवीनीकरण करवाने का वादा करके मुसलमान परिवारों के बारे में जानकारियाँ एकत्र कीं। बहरहाल, इनसे मुसलमान परिवारों और उनके मकानों को जलाने के लिए पहचानने का काम लिया गया। बम्बई में भी जनवरी दंगों के दौरान दंगाईयों ने इस तरीके का प्रयोग किया था। कल्पना शाह, स्मिता शाह और नेहा शाह के द्वारा तैयार रिपोर्ट के अनुसार, ''...मुसलमानों के मकान या दुकान की जानकारी देने वाले को प्रति मकान या दुकान 100 रुपए दिए गए और जिस बस्ती में दंगों का सबसे खराब रूप था, बर्बरतापूर्ण और अमानवीय था वहाँ हिन्दुओं ने अपने मकानों पर लिखा 'श्रीराम यह घर हिन्दू का है।' या हिन्दू-देवी या देवता की टाइलें लगा दीं। यह देखकर 'अलीबाबा और चालीस चोर' की कहानी स्मरण हो जाती है।'' इसी रिपोर्ट के अनुसार, ''यहाँ तक कि दंगाइयों ने इस बात का पूरा ध्यान रखा कि हिन्दुओं की सम्पत्ति का एक इंच भी नुकसान न हो। इस हद तक ध्यान रखा कि हिन्दुओं और मुसलमानों के घरों के बीच जहां लकड़ी से भी विभाजन था वहाँ भी एक को अछूता छोड़ दिया और सटा हुआ मुसलमान का घर पूरी तरह तहस-नहस कर दिया।''

मोहम्मद युसूफ और शादिक भाई रंगूनवाला के अनुसार 7 दिसम्बर को करीब 7 बजे सुबह 500 हिन्दुओं की भीड़ मस्जिद मोहल्ला (जो काटार गाँव के तौर पर प्रसिद्ध है) में घुस गई। पहले उन्होंने तीन घरों को आग लगाई, फिर वे एक दरगाह और एक मस्जिद की ओर मुड़े, उन्हें लूटा और आग लगा दी। उसके बाद दूसरे 45 मकानों को लूटा और जला दिया। कुछ मकानों और एक मस्जिद को मिट्टी में मिला दिया गया। आक्रमणकारियों की भीड़ मकानों को ढहाने के लिए नगरपालिका से ड्राइवर समेत रोड रोलर ले आई। नगर निगम से रोड रोलर कैसे आया यह जांच का विषय है। इस बस्ती में भी अमृतभाई, दयाभाई, नगिनभाई और अन्य कई लोगों ने अपने घरों में घुसाकर मुसलमानों की जान बचाने की पूरी कोशिश की।

लगभग 2.30 बजे दोपहर को फाटकबाड़ी, राजीवनगर में लगभग 2000 लोगों की भीड़ ने मुसलमानों की झोपड़ियों पर हमला किया। उन्होंने पहले उनको लूटा और बाद में 116 झोपड़ियों को आग लगा दी। इसके नजदीक ही मेहुल चैम्बर नाम की इमारत है। दंगाइयों ने इस इमारत से जलती हुई रुई झोपड़ियों पर फेंकी।

नजदीक ही स्थित मकबरा मस्जिद को भी नुकसान हुआ। उन्होंने मस्जिद को भी जलाने की कोशिश की लेकिन सफल नहीं हुए। हमलावर भीड़ में उड़िया और काठियावाड़ी शामिल थे।

7 दिसंबर को करीब 12 बजे 200 से 300 लोगों की मुस्लिम भीड़ ने शान्तिनाथ सिल्क मिल पर हमला किया। पहले उन्होंने मिल के मालिक हर्षदराय बृजलाल डकोतिया को मिल बन्द करने के लिए कहा और उसने मिल बंद कर दी। इसके बाद मिल के एक कोने पर दो सम्प्रदायों में झगड़ा हुआ। इन दंगों के दौरान अल्पसंख्यकों की भीड़ ने मिल में आग लगा दी। मिल में आग लगाने से पहले इन्होंने द्वार पर बैठे चौकीदार को भी मार डाला। हिन्दुओं ने संग्रामपुरा गोलकीवाड़ क्षेत्र में अल्पसंख्यक समुदाय के आठ घर जला कर इसका बदला लिया।

बलात्कार की घटना

सबसे बुरी घटना विजय नगर नं० 2 में घटी। मुसलमान भाग न पाएं इसलिए 10-12 फुट ऊंचे बांस लगाकर दीवार बना दी गई। इसके अन्दर के लोगों की गतिविधियों को देखने के लिए बड़ी-बड़ी लाइटें भी लगा दी गईं। 7 दिसम्बर की रात को हमला किया गया और यह 9 दिसम्बर तक जारी रहा। 7 दिसम्बर की रात को गंड़ासियों, लोहे की छड़ और तलवारों से लैस 800 लोगों की भीड़ अन्दर घुसी। हमले से कुछ समय पहले मुसलमानों ने अधिक सुरक्षित स्थान पर जाना चाहा था, लेकिन उनके हिन्दू पड़ौसियों ने उनकी सुरक्षा का भरोसा दिलाया था, लेकिन वे उनको बचा नहीं सके। भीड़ ने मुसलमानों के 250 घरों को लूटा और उनमें आग लगा दी। उन्होंने 8 दिसम्बर की रात को लगभग 70 मुसलमानों को मारा। हमला करने से पहले इस क्षेत्र की बिजली की तारें काट दी गईं और अन्दर अन्धेरा छा गया।

भीड़ ने 13 से 16 औरतों तक से बलात्कार किया और यह कहा जाता है कि प्रत्येक औरत के साथ 4 से 10 व्यक्तियों ने बलात्कार किया। बलात्कार के बाद औरतों को बाहर लाया गया और फ्लड लाइट की चकाचौंध रोशनी के आगे से गुजारा गया। यह भी कहा गया कि बलात्कार की वीडियो फिल्म भी बनाई गई; लेकिन इस बात में सच्चाई की संभावना कम है।

विजयनगर में स्थानीय इमामों को अपमानित किया गया और उनको ''जय श्रीराम'' कहने पर मजबूर किया गया। उसके बाद उनको दो या तीन टुकड़ों में काट दिया गया। एक मामले में एक जिन्दा आदमी को आग में फेंक दिया। कुछ बच्चों के सिर पर पत्थर पर मारे गए और तब उनके दो टुकड़े कर दिए गए। बूढ़े लोगों को भी

पीटा गया, कुछ लोग मारे और जला दिए गए और कुछ को जिन्दा जला दिया गया। कुछ को इमारतों के ऊपरी तल से नीचे गिरा दिया गया। यहाँ तक कि कुछ लोगों के सिर काट कर धड़ से अलग कर दिए गए और प्रमाण समाप्त करने के लिए काफी लाशों को या तो जला दिया गया या फिर नजदीकी नाले में फेंक दिया गया।

सुदुरेहमन मंजिल में रह रहे पूरे परिवार के छः सदस्यों को मार दिया गया। इस परिवार की 8 साल की लड़की के साथ बलात्कार किया गया और 18 साल की यास्मीन के सामने उसकी माँ पर जानलेवा हमला किया गया, और 8 से 10 व्यक्तियों ने पहले उसे नंगा किया और फिर बलात्कार किया। मस्जिद के इमाम की हत्या उसकी पत्नी अनवरी बेगम कुतबुद्दीन के सामने की गई और फिर उससे बलात्कार किया गया और बलात्कार के बाद उन्होंने जलाने के लिए उस पर कुछ ज्वलनशील तरल पदार्थ फेंका, लेकिन किसी तरह वह बच गई और हमारी जांच के दौरान वह अस्पताल में थी। एक और कारुणिक मामला सात महीने की गर्भवती महिला जमीला बानो का है जिसने अपने तीन बच्चों की मौत देखी। वह अपना मानसिक संतुलन खो चुकी है जब हम जांच कर रहे थे तो वह अस्पताल में थी। गदर नामक हिन्दू ने यास्मीन के चाचा यूनुस को बचाया। इसी तरह बहुत से हिन्दू परिवारों ने मुस्लिम परिवारों को बचाया। अन्यथा मरने वालों की संख्या बहुत अधिक होती। इस क्षेत्र में भी बहुत से मकानों पर 'जय श्री राम' 'हिन्दू नो मकान' (हिन्दू का मकान) लिखा हुआ था। पूछने पर हमें बताया गया कि मकान को लुटने और जलाने से बचाने का सिर्फ यही एक तरीका था। लूटने वालों में अधिकांश काठियावाड़ी थे।

उधाना मगदल्ला रोड

लगभग 800 लोगों की भीड़ ने मोहम्मद हनीफ की चोकसी मिल को जला दिया। चौकीदार ने हवा में गोलियां चलाईं, लेकिन वह 800 लोगों की भीड़ को मिल परिसर में घुसने से नहीं रोक सका। मिल मालिक ने हमें बताया कि दंगाई रुई का कचरा और पेट्रोल लिए हुए थे। इस मिल में हिन्दू मजदूर और अन्य कर्मचारियों की संख्या 95 प्रतिशत थी, फिर भी इसे नहीं बख्शा गया। मिल को जलाने से पहले इसका सामान लूटा गया। लूट का सामान ले जाने के लिए दंगाई एक टेम्पो ले आए। मिल मालिक के अनुसार शान्तिनाथ सिल्क मिल मुसलमानों ने जला दी थी संभवतः उसका बदला लेने के लिए उन्होंने यह मिल लूटी और जलाई। मिल मालिक को 1.5 करोड़ रुपए का नुकसान हुआ। जो अन्य मिलें और फैक्ट्रियाँ लूटी और जलाई गईं वे हैं: बेलनोन सिल्क मिल्स, मालिक कास्सम भाई, नुकसान दादा सिल्क

मिल्स, मालिक आरिफ दादा, नुकसान 2.5 करोड़ 75 लाख, हजूरी कोल्ड ड्रिंक फैक्ट्री, मालिक मोहसिन भाई हजूरी, नुकसान 25 लाख रुपए। दादा सिल्क मिल्स में भी 95 प्रतिशत कर्मचारी हिन्दू थे। उधाना मगदल्ला रोड पर औद्योगिक क्षेत्र है जहाँ लगभग 400 इकाइयों में से सिर्फ एक मुसलमान की है और वह जला दी गई। इस रोड पर मुसलमानों की लगभग 800 दुकानें थीं, जो सारी जला दी गईं। यह सब 8 दिसम्बर को हुआ।

गुलशन नगर (पंडसेरा)

इस कालोनी के मुस्ताक अहमद ने हमारे जांचकर्ता को बताया कि 8 दिसम्बर को सुबह 8 बजे दंगाइयों ने पहले कॉलोनी को लूटा और तब 100 घरों को जला दिया। उसी दिन सायं 5 बजे पुलिस ने वहाँ के निवासियों को अपने घर छोड़ने को कहा और भरोसा दिलाया कि उनके घरों की पूरी सुरक्षा की जायेगी। परन्तु कोई भी घर सुरक्षित नहीं बचा।

बहथेना

यह झोपड़बस्ती कॉलोनी है और इसमें प्रवासी श्रमिक रह रहे थे। चूंकि सरकार ने उनको यह जमीन कुछ महीने पहले ही दी थी, इसलिए यहाँ के निवासी मतदाता सूची में पंजीकृत नहीं थे। 8 दिसम्बर को लगभग 500 लोगों की भीड़ ने कालोनी पर धावा बोला। हमले से पूर्व पुलिस ने यहां से लगभग 50 लोगों को गिरफ्तार कर लिया था। लगभग 261 झोपड़ियाँ जलकर राख हो गईं। यह मिली-जुली कॉलोनी है और विभिन्न समुदायों के लोग यहां रहते हैं। कुछ लोग कॉलोनी में रह गए थे। उन्होंने जांचकर्ताओं को बताया कि अभी तक कोई राजनीतिक नेता यहाँ नहीं आया। वे राजनीतिक नेताओं, पुलिस और गुण्डों के खिलाफ शिकायत कड़े शब्दों में कर रहे थे। अमरुत दत्तू ने कहा कि ''गरीब के कन्धे पर बन्दूक रख कर ही गरीब को मारते हैं।'' और ''सब लीडरों को गोली मारनी चाहिए।'' 9 दिसम्बर को 11 बजे से सायं 5 बजे तक हिंसा चलती रही और विभिन्न स्थानों पर पहले घरों को लूटा गया और बाद में जला दिया गया। इन सब घटनाओं में शामिल सभी दंगाई या तो उड़ीसा के थे या फिर काठियावाड़ के। विश्राम नगर के मगनलाल बाईलाल ने बताया कि यहां हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता थी लेकिन बाहरी लोगों ने आकर साम्प्रदायिक तनाव पैदा किया। सेन्ट्रल रोड उधाना के नजदीक भीड़ ने मुसलमानों की 37 दुकानें लूटीं और जला दीं। दंगाई उड़ीसा और कुछ उत्तर भारत के कुछ हिस्सों के थे। इसी तरह पंडाल मार्किट में अल्पसंख्यक

समुदाय के लोगों की कुछ दुकानों पर हमला हुआ, इन्हें लूटा और जला दिया गया।

एक अन्य सर्वाधिक त्रासद घटना 10 दिसंबर को उधाना स्टेशन के निकट घटी। उधाना से 3-4 कि०मी० पहले सबेरे लगभग साढ़े सात बजे एक ट्रेन रोकी गई। लाठियों, गंड़ासों, लोहे की छड़ों से लैस 500 लोगों की भीड़ ट्रेन पर टूट पड़ी। उन्होंने 50 मुस्लिमों को खींचकर बाहर निकाला और उनकी हत्या कर दी। उनमें कुछ महिलाएं थीं जिन्हें बलात्कृत, मारा और जलाया गया। एक महिला के मामले में तो उसके सामने और पीछे से छड़ घुसाई गई, जिसकी वजह से वह खून से लथपथ हो गई। फिर उसके कपड़े फाड़े गए और उसके भाई के साथ उसको आग के हवाले कर दिया गया। बहुत सी महिलाओं को अपनी आंखों के सामने अपने पतियों और बच्चों की हत्या का मंजर देखना पड़ा।

10 दिसम्बर, नानूपुरा, हिजरावाड़ क्षेत्र में मुसलमानों की भीड़ ने हिन्दुओं के घरों पर हमला किया और 5 मकान जला दिए। बस्ती का एक मन्दिर भी नष्ट कर दिया।

यह कहना मुश्किल है कि इन दंगों में कितने लोग मरे। अनुमान 300 का है, जिसमें अधिकतर मुसलमान (85 प्रतिशत के लगभग) थे, लेकिन आधिकारिक सूत्र मरने वालों की संख्या 200 बताते हैं। इस उन्मादी समय के दौरान लगभग 30 महिलाओं के साथ बलात्कार हुआ। कुल 20 उद्योग लूटे, जलाए और तबाह कर दिए गए जिनमें से 8 बड़े और 12 छोटे स्तर के थे। इन 8 बड़े उद्योगों में एक हिन्दू का था। 1000 से भी अधिक घरों और दुकानों को लूटा और जलाया गया जिनमें 900 से अधिक मुसलमानों के थे।

जहाँ तक धार्मिक स्थलों की बात है 15 मस्जिद और 2 मन्दिर आंशिक रूप से या पूरी तरह नष्ट हुए।

कहने की जरूरत नहीं कि पुलिस की भूमिका संतोषजनक नहीं थी। मि० दत्ता पुलिस कमिश्नर थे, जिनको ईमानदार और कार्यकुशल स्वीकार किया जाता है। उन्होंने कच्ची शराब का धंधा करने वालों और अन्य समाज विरोधी तत्वों पर रोक लगा दी, जिसका सूरत की पुलिस ने विरोध किया क्योंकि इससे 'हफ्ता' (सप्ताहवार रिश्वत) बन्द होने से उनकी नियमित आमदनी बुरी तरह प्रभावित हुई। मि० दत्ता दंगों को नियन्त्रित नहीं कर पाये, क्योंकि पुलिस सिपाहियों ने प्रतिरोध स्वरूप उनके आदेशों का पालन नहीं किया और दूसरे, और जगहों की तरह सूरत में भी पुलिस साम्प्रदायिक हो चुकी थी। लूट-पाट, हत्याएँ, आगजनी बिना किसी रोक-टोक के खुलेआम चलती रहीं। अपनी सुरक्षा और बचाव के लिए कोई भी दंगा पीड़ित पुलिस पर विश्वास नहीं कर सकता था। असल में पुलिस में दत्ता के खिलाफ इतना

विरोध था कि कुछ लोग सोचते थे कि दत्ता को सूरत से निकालने के लिए ही दंगे करवाए गये। यद्यपि दंगों के परिणामस्वरूप दत्ता का तबादला हो गया लेकिन इस विचार में कोई दम नहीं है। भारतीय जनता पार्टी द्वारा दंगों की योजना बनाने और करवाने के बारे में और अन्य कारकों पर हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं।

भारतीय जनता पार्टी के प्रचार-अभियान ने आम लोगों और मध्यवर्ग के बुद्धिजीवी वर्ग का अत्यधिक सांप्रदायीकरण किया है। वे सिर्फ मुसलमानों के खिलाफ हिंसा को ही वैध नहीं ठहराते बल्कि मुसलमान महिलाओं के साथ बलात्कार को भी न्यायोचित ठहराते हैं, यह कहकर कि ये इसी लायक हैं क्योंकि इन्होंने मध्ययुग में हिन्दुओं के साथ ऐसा ही किया था। यद्यपि दुखदायी है लेकिन सच है कि यह सब भावनात्मक उत्तेजना की स्थिति में नहीं हुआ। दंगों के बाद भी इस घिनौने व अमानवीय कृत्यों को न्यायोचित ठहराना दर्शाता है कि लोगों का किस हद तक सांप्रदायीकरण हो चुका है और कितनी शत्रुता पैदा हो गई है।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि वोहरा, खोजा और मेमन गुजरात के व्यापारिक समुदाय हैं। वे आमतौर पर शान्तिप्रिय और विनम्र हैं और उन्होंने शायद ही कभी राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लिया हो। वे गैर-मुसलमानों से भी अच्छी तरह घुले-मिले हैं। सूरत दंगों में इन समुदायों को भी नहीं बख्शा गया। भीड़ के पास उनकी दुकानों की सूची थी और कई मामलों में तो फोन करके पहले ही बता दिया गया था कि उनकी दुकानें लूटी जायेंगी। यह दर्शाता है कि लूटने वालों में कितना विश्वास था। पुलिस को बुलाने पर भी कोई सहायता नहीं मिली।

सबसे अधिक स्तब्ध कर देने वाली बात यह थी कि लूटने वालों में सिर्फ समाज-विरोधी, गरीब और अनपढ़ ही नहीं बल्कि शिक्षित मध्य वर्ग व उच्च वर्ग के लोग भी शामिल थे। यहाँ तक कि औरतें भी इसमें पीछे नहीं रहीं। जब एक सुनार की दुकान जबरदस्ती खोली गई तो वे अपने हाथ के नाप की सोने की चूड़ियाँ और जूतों की दुकान से अपने पैर के नाप के सैंडल ढूंढ़ते पाई गईं। इनमें से काफी औरतें मध्य वर्ग और उच्च वर्ग की थीं। यह आधुनिक उपभोक्तावादी समाज में नैतिक मूल्यों के अध:पतन की हद को दर्शाता है। ''जय श्रीराम'' के नारे लगाने वालों को औरतों से बलात्कार करके उनको जिन्दा जलाने में, उनकी मांओं के सामने बच्चों को टुकड़ों में काटने में और छुरा मारकर तड़पते हुए आदमी को आग में फेंकने आदि बर्बरतापूर्ण कार्य करने में कोई हिचकिचाहट नहीं थी। यद्यपि वे अच्छी तरह जानते हैं कि राम पुरुषोत्तम थे यानि नैतिक दृष्टि से मानवता के लिए सर्वोत्तम आदर्श।

किसी भी प्रकार से सत्ता पाने की आकांक्षी भारतीय जनता पार्टी ने इस सब को प्रोत्साहित किया। उसने यह महसूस नहीं किया कि इस अमानवीय व्यवहार

करने वाले लोगों पर कानून-व्यवस्था की दृष्टि से शासन करना बहुत कठिन होगा। यह याद रखना चाहिए कि जो हिंसा का पोषण करता है वह हिंसा का शिकार होता है। लेकिन भविष्य की चिंता कौन करता है। जैसे धार्मिक कट्टरता व्यक्ति को अन्धा बना देती है उसी तरह सत्ता की भूख में भी व्यक्ति अंधा हो जाता है। कल्पना करो कि यदि ये दोनों मिल जाएं तो क्या होगा।

अध्याय -5

बेंगलूर दंगे :
भाषायी या साम्प्रदायिक ?

बेंगलूर में 7 जनवरी, 1994 से आरम्भ हुए भाषायी दंगों के बाद हमें गहराई से सोचने की जरूरत है कि हमारा देश किस ओर जा रहा है। बेंगलूर के भाषा सम्बन्धी दंगों का प्रत्यक्ष कारण दूरदर्शन पर कन्नड़ समाचारों के बाद सायं 7.45 से 7.55 के बीच 10 मिनट का उर्दू समाचार बुलेटिन प्रसारित करना था। ये दंगे काफी फैल गए और इन्होंने पूरे शहर को झकझोर दिया। मौके पर जांच करने से पता चला कि ये दंगे मात्र भाषायी नहीं थे, बल्कि इनकी साम्प्रदायिक अनुगूंजें भी थीं। यहां ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि दंगे मुख्यत: दक्षिण बेंगलूर में फैले जहां मुख्यत: निम्न मध्यवर्ग और गरीब मुस्लिम आबादी का जमावड़ा है। इनमें जान और माल का अत्यधिक नुकसान हुआ।

इतने व्यापक स्तर पर दंगे फैलने के कारणों को सही ढंग से समझने के लिए बेंगलूर शहर का स्वरूप समझना जरूरी है। सभी आधुनिक महानगरों की कुछ सामान्य विशेषताएं हैं जिस कारण वे हिंसा के लिए संवेदनशील हो जाते हैं। ये शहर घनी आबादी वाले होते हैं। इन शहरों में पलक झपकते ही हिंसा फैल जाती है। हिंसा की प्रकृति सांप्रदायिक भी हो सकती है और अन्य किस्म की भी। बम्बई में दिसम्बर 1992 और जनवरी 1993 में साम्प्रदायिक हिंसा हुई, उसके बाद मार्च 1993 में बम-विस्फोट हुआ और सितम्बर के मध्य में पश्चिम क्षेत्र की बाहरी बस्तियों में उपनगरीय रेल में देरी होने से हिंसा फैल गई।

बम्बई, बेंगलूर, अहमदाबाद, सूरत, दिल्ली और कई अन्य शहरों की आबादी में वृद्धि वास्तव में चौंकाने वाली है। चाहे जो भी योजना बनाएं (नगर योजना वैसे ही बहुत कम है और शहरों में अव्यवस्थित वृद्धि हो रही है) बढ़ती आबादी से

पूर्णतः अस्त-व्यस्त हो जाती है। दिसम्बर 1992 के सूरत दंगों के लिए कई जांचकर्ताओं और विद्वानों ने पिछले कई दशकों में वाणिज्य और उद्योगों के विस्तार से इन शहरों में अप्रत्याशित जनसंख्या वृद्धि को भी एक कारण माना। पिछले कुछ वर्षों में बेंगलूर की आबादी भी बहुत तेजी से बढ़ी है और आज इसकी आबादी लगभग 46 लाख है। पहले बेंगलूर को सेवानिवृत्तों का शहर माना जाता था। इसकी शांति, स्वच्छता और सुहानी जलवायु ने काफी लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया। आज बेंगलूर ने अपनी शांति और आकर्षण खो दिया है। पिछले कुछ वर्षों में यहां औद्योगिक विकास तेजी से हुआ और अब यह भारत के अत्यधिक प्रदूषित शहरों में है। इसकी धक्का-पेल व अनियंत्रित ट्रैफिक बहुत भयावह है। और साथ ही बेंगलूर में जगह-जगह भीड़ भरे झोपड़-पट्टी क्षेत्र बन रहे हैं।

सभी बड़े शहरों का झुकाव विश्व नगर (कास्मोपोलिटन) बनने की ओर होता है। इन शहरों में विभिन्न राज्यों के लोग आजीविका की खोज में आते हैं। इस तरह शहर की अपनी जातीय पहचान समाप्त होती है। सभी आधुनिक शहरों में मिली-जुली आबादी है जो इनके जातीय चरित्र को कमजोर करती है। इसके उस राज्य के जातीय समूह पर भी मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ते हैं। महाराष्ट्र की राजधानी बम्बई में मराठियों की आबादी लगभग 44 प्रतिशत है, कलकत्ता में बंगाली 50 प्रतिशत से कम हैं, सूरत में लाखों उड़िया, उत्तर भारत के लोग, तेलुगु, काठियावाड़ी और अन्यों के बसने से सूरत के मूल निवासी अल्पसंख्या में रह गए हैं और बेंगलूर में भी 45 प्रतिशत के लगभग ही कन्नड़ी हैं। ऐसी स्थिति में स्थानीय जातीय समूह अपनी भाषा और संस्कृति आदि के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हो जाते हैं। बम्बई में शिव सेना ने इतना उग्र रूप मूलतः ''बाहरी लोगों'' का डर दिखाकर धारण किया है। बेंगलूर में भी बाहरी लोगों की तीव्र बढ़ोत्तरी ने कन्नड़ियों को भाषायी और सांस्कृतिक मामलों में अतिरिक्त संवेदनशील बना दिया है और विभिन्न कन्नड़ संगठन अस्तित्व में आ गए हैं, इनमें से कुछ ने उग्र रूप धारण कर लिया है। इस कारण व अन्य कारणों से बेंगलूर भी अत्यधिक हिंसा-संवेदन क्षेत्र हो गया है। दिसम्बर 1991 में, बेंगलूर में कन्नड़ों और तमिलों में कावेरी जल के बंटवारे को लेकर दंगे फैले। बेंगलूर में काफी संख्या में तमिल बस गए हैं और कन्नड़ों में इसके प्रति रोष है।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि हम धार्मिक और भाषायी कट्टरता की भूमिका को कम करके आंकें। यह अत्यधिक निंदनीय है, लेकिन हमें उन सभी कारकों को ध्यान में रखना चाहिए जो स्थिति को विस्फोटक बनाते हैं। कोई एक कारक किसी भी हिंसक स्थिति की पूरी व्याख्या नहीं कर सकता। यहां एक और

सवाल खड़ा होता है। भारत एक बहुधर्मी, बहुभाषी, बहु-सांस्कृतिक राष्ट्र है, दूसरे शब्दों में सम्मिश्र राष्ट्र/भारत जैसे तेजी से विकसित होते देश में अन्तर्प्रान्तीय स्थानान्तरण बिलकुल स्वाभाविक है, और इससे बंबई और बेंगलूर जैसे राज्य की राजधानियों का जातीय चरित्र छिन्न-भिन्न होना भी अवश्यंभात्री है। क्या जातीय और भाषायी असहिष्णुता से हमारे साझे राष्ट्रवाद की नींव मजबूत होगी। क्या जातीय कट्टरता उतनी ही निन्दनीय नहीं है जितनी कि धार्मिक कट्टरता ? पंजाब, असम-कश्मीर और अन्य स्थानों की जातीय कट्टरता और असहिष्णुता ने विनाशकारी भूमिका अदा की है। यदि आधुनिक साझा राष्ट्र राज्य बनाना है तो अपनी सांस्कृतिक और भाषायी प्रकृति को बनाए रखते हुए संकीर्ण जातीय सीमाओं का अतिक्रमण करना पड़ेगा। कुछ लोग भाषायी पहचान की अवधारणा पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं, उनका तर्क है कि राज्यों का पुनर्गठन भाषायी आधार की अपेक्षा प्रशासनिक दृष्टि से होना चाहिए था। लेकिन मामला इतना सरल नहीं है, जितना कि माना जाता है। भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन एक लोकतांत्रिक कदम है, लेकिन इसके कुछ दुविधाजनक पहलू भी हैं। लोकतांत्रिक समाज में लोगों की भाषायी और सांस्कृतिक आकांक्षाओं को पूर्णत: अनदेखा नहीं किया जा सकता। अधिकांश क्षेत्रों को उसकी भाषा और संस्कृति के आधार पर पहचाना जाता है। अंग्रेजी शासन के दौरान बम्बई राज्य में विभिन्न भाषायी क्षेत्र शामिल थे जैसे महाराष्ट्र, गुजरात, सिन्ध, कर्नाटक आदि। बहरहाल, स्वातंत्र्योत्तर भारत की लोकतांत्रिक-व्यवस्था में बम्बई राज्य जैसी प्रशासनिक इकाई सुचारु रूप से कार्य नहीं कर सकती थी, इसकी अपनी सीमाएं थीं। बहरहाल यह भी सच है कि कुछ स्वार्थी राजनीतिज्ञों ने अपना वोट बैंक बढ़ाने के लिए धार्मिक या भाषायी कट्टरता दोनों को बढ़ावा दिया। चूंकि अत्यधिक बेरोजगारी, गरीबी और जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होने के कारण समाज में तनाव मौजूद है, इसलिए ये उकसावे समाज में मौजूद तनावों में विस्फोट करने में सफल हो जाते हैं।

हिंसक घटनाएं

दूरदर्शन पर उर्दू समाचार बुलेटिन प्रसारण के सवाल पर बेंगलूर में फैली हिंसा पर प्रकाश डालने से पहले हम कर्नाटक राज्य के माहौल के सांप्रदायीकरण पर कुछ प्रकाश डालेंगे। नवम्बर के आरम्भ में जो घटित हुआ वह आकस्मिक नहीं था। भारतीय जनता पार्टी के प्रचार से कर्नाटक साम्प्रदायिक दृष्टि से संवेदनशील हो गया है। दक्षिणी राज्यों में कर्नाटक ही एक ऐसा राज्य है जहां भारतीय जनता पार्टी अपना पांव जमाने में सफल हुई है। विधानसभा और संसदीय चुनावों में इसका वोट

प्रतिशत लगातार बढ़ा है। कर्नाटक में इसने बहुत ऊंची छलांग लगाई है। 1991 के चुनावों में इसने 28.8 प्रतिशत वोट प्राप्त किए जो 1989 में 2.5 प्रतिशत थे। यद्यपि भारतीय जनता पार्टी, दक्षिण धारवाड़, हन्सुर और येल्लाहंका उप चुनावों में कोई सीट जीत नहीं पाई, लेकिन वह संतोषजनक प्रदर्शन करके आगे बढ़ती रही। येल्लाहंका में कांग्रेस ने 61,357 मत प्राप्त किए, जबकि भारतीय जनता पार्टी ने 60,845 मत प्राप्त करके अपने मतों को दोगुना किया। भारतीय जनता पार्टी कर्नाटक को दक्षिण में अपने प्रवेश का द्वार बनाना चाहती है।

हिन्दू वोटों को अपने पीछे गोलबंद करने के लिए भारतीय जनता पार्टी हर संभव प्रयास कर रही है। राम जन्मभूमि उद्वेलन के दौरान दक्षिण भारतीय राज्यों में कर्नाटक अत्यधिक प्रभावित रहा है। जब आडवाणी की रथयात्रा निकली तो कर्नाटक में कई जगह दंगे हुए। अक्टूबर 1990 के दौरान कर्नाटक में रामनगरम, चन्नापटना, कोलार, दावांगेरे, तुमकुर और मैसूर समेत छोटे-बड़े कई शहरों में अयोध्या मुद्दे से संबन्धित दंगे हुए। दशहरा समारोह के दिनों में ''रामज्योति जुलूस'' निकाले गए। ये जुलूस, जिन में बहुत अधिक हिन्दू शामिल हुए, जानबूझकर मुस्लिम क्षेत्रों और मस्जिद के सामने से निकाले गये। ये तनाव का कारण बने और जिसकी परिणति हिंसा में हुई, जिसने राज्य में तबाही की सारी सीमाएं लांघ दीं, इसमें घायल और मरने वालों में अधिकतर मुसलमान थे।

बेंगलूर के इस दंगे की प्रकृति मात्र भाषायी नहीं थी। दूरदर्शन पर उर्दू समाचार बुलेटिन के प्रसारण के विरोध ने जल्दी ही साम्प्रदायिक अनुगूंजें ग्रहण कर लीं और भारतीय जनता पार्टी ने दंगे का मौका हाथ से नहीं जाने दिया। उर्दू समाचार बुलेटिन का प्रसारण 2 अक्टूबर से शुरू हुआ, इससे स्थिति उग्र रूप धारण कर गई। वास्तव में यह विरोध कुछ समय के लिए ही भाषायी विरोध रहा। भारतीय जनता पार्टी और यहां तक कि जनता दल ने भी आरोप लगाया कि कांग्रेस सरकार ने आगामी विधानसभा चुनावों के मद्देनजर केन्द्र और राज्य में यह उर्दू प्रसारण शुरू किया है। कर्नाटक के तत्कालीन मुख्यमंत्री मि० मोएली ने इसका खण्डन किया। बल्कि उन्होंने कहा कि भारतीय जनता पार्टी ने मुद्दे का साम्प्रदायीकरण किया है। उनके अनुसार, ''वे (भाजपाई)सत्ता के लिए पगलाए हैं। उनके पास और कोई मुद्दा नहीं है। इसलिए वोट बटोरने के लिए वे इसका सांप्रदायीकरण करना चाहते हैं, परन्तु कर्नाटक के लोग इस खून की प्यासी और विभाजनकारी साम्प्रदायिक राजनीति को स्वीकार नहीं करेंगे।''

अगस्त में ही भारतीय जनता पार्टी ने हुबली में ईदगाह पर राष्ट्रीय झण्डा फहराने के सवाल पर हिन्दू भावनाओं को भड़काने की कोशिश की थी। उस समय

सभी धर्मनिरपेक्ष-शक्तियां इस पर एकमत थीं कि भारतीय जनता पार्टी राज्य-विधानसभा चुनावों में हिन्दू वोट बटोरने के लिए ऐसा कर रही थी, नहीं तो इसका कोई औचित्य नहीं था।

मि० मोएली ने हुबली की घटनाओं का हवाला देते हुए कहा : ''भारतीय जनता पार्टी 2 लाख लोगों का जुलूस निकालना चाहती थी। किसलिए ? केवल एक ऐसे स्थान पर झण्डा फहराने के लिए जो विवादित है। यह कानून और व्यवस्था की समस्या बन गई थी, न कि राष्ट्रीय झण्डा फहराने का सवाल। वे कर्नाटक में अयोध्या जैसी तबाही को अंजाम देना चाहते थे। मेरी सरकार ने दृढ़ कदम उठाया और राज्य को तबाही से बचाया।''

मुख्यमंत्री का जो भी कहना हो, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि हुबली में भी भारतीय जनता पार्टी का खेल अलग नहीं था। वह हिन्दुओं की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए भावनात्मक उत्तेजना का माहौल बनाना चाहती थी और खुद को राष्ट्रीय हितों की पैरोकार के रूप में प्रस्तुत करना चाहती थी। इसी तरह, भारतीय जनता पार्टी पर्दे के पीछे से उर्दू समाचार बुलेटिन प्रसारण का दोहन करना चाहती थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कांग्रेस सरकार उर्दू समाचार प्रसारण शुरू करने में शायद ही ईमानदार रही हो। समाचार-प्रसारण का फैसला महत्वपूर्ण समय पर लिया गया, जब कि चुनाव सिर पर थे। इसका स्पष्टीकरण यह दिया गया कि गुजराल कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार जहां 10 प्रतिशत से ज्यादा उर्दू बोलने वाले हों, वहां उर्दू-समाचार प्रसारित होने चाहिए। गुजराल कमेटी रिपोर्ट एक दशक से भी अधिक पहले दी गई थी। अब तक सरकार क्या कर रही थी ? इसने इसकी समस्त संस्तुतियों को उसी समय लागू क्यों नहीं किया ? केंद्र सरकार इतने वर्षों तक इस पर चुप्पी साधे बैठी थी, जब कांग्रेस ने महसूस किया कि अयोध्या व अन्य मुद्दों को लेकर मुसलमान वोट उससे अलग हो रहे हैं तो चुनावों के दिनों में इसे अचानक ठण्डे बस्ते से निकाला और लागू कर दिया। कांग्रेस मुसलमानों से चुनावी खेल खेल रही है और भारतीय जनता पार्टी हिन्दुओं से। जिस दिन उर्दू समाचार बुलेटिन का प्रसारण शुरू हुआ उस दिन कन्नड़ संगठन समर्थक लगभग 300 लोग इसका विरोध करने के लिए बेंगलूर दूरदर्शन के पास एकत्रित हुए। उनको गिरफ्तार किया गया और बाद में छोड़ दिया गया। उसी दिन, माइको कन्नड़ संघ, छचन्नकेशवपुरा कन्नड़ संघ और एस के एफ संघ जैसे कन्नड़ समर्थक संगठनों ने होसुर रोड पर ''रास्ता रोको'' आन्दोलन किया। अगले दो दिनों में आन्दोलन ने जोर पकड़ लिया। शहर के विभिन्न भागों में विरोध जुलूस निकाले गए और धरने लगाए गए। कन्नड़ शक्ति केंद्र और कन्नड़ साहित्य परिषद ने भी कर्नाटक सरकार को उर्दू समाचार बुलेटिन का प्रसारण रोकने के लिए

एक सप्ताह का अल्टीमेटम दे दिया। यहां यह ध्यान रखना जरूरी है कि कन्नड़ शक्ति केंद्र के प्रधान डॉ० एम चिदानंद मूर्ति ने कन्नड़ लोगों में भाषायी कट्टरता फैलाने के लिए हर संभव प्रयास किये। उन्होंने अपने भाषणों में बेंगलूर केन्द्र से प्रसारित विभिन्न कार्यक्रमों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया और अपने भाषणों में उन्हें अत्यधिक भावनात्मक पुट दिया। इनके भाषणों ने आग में घी का काम किया। यह रेखांकित करना जरूरी है कि डॉ० मूर्ति ने बेंगलूर, मैसूर तथा शिकागो में कन्नड़ का अध्यापन किया है। उन्होंने यह भी कहा कि इस देश में जब कोई उर्दू या मुसलमानों की किसी बात का विरोध करता है तो उस पर भारतीय जनता पार्टी, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का सदस्य और साम्प्रदायिक होने का आरोप चस्पा कर दिया जाता है। यह भी रेखांकित करना जरूरी है कि कन्नड़ कट्टरता समय-समय पर उभरी है। 1956 में जब कर्नाटक राज्य बना तो इसमें केवल 9 जिले थे। आजकल इसमें 21 जिले हैं। लोगों को हर साल राज्योत्सव के दिन कट्टर कन्नड़ों की ओर से दंगे की आशंका रहती है।

6 अक्टूबर की स्थिति और भी खराब हो गई और हिन्दुत्ववादी शक्तियों की इसमें भागीदारी उजागर हो गई। भारतीय जनता पार्टी के आनुषंगिक संगठन अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के सदस्यों ने कर्नाटक के मुख्य न्यायधीश जी टी नानावती व स्वास्थ्य मंत्री मालाकरेड्डी की सरकारी गाड़ी पर पथराव किया और नुकसान पहुंचाया, उन्होंने बेंगलूर ट्रांसपोर्ट सेवा व अन्य वाहनों पर भी पथराव किया और नुकसान पहुँचाया।

7 अक्टूबर को स्थिति और खराब हो गई और इसने निश्चित सांप्रदायिक मोड़ ले लिया। इसी दौरान दूरदर्शन केंद्र के निदेशक के एम अनीसुलहक ने प्रेस में बयान दिया कि उर्दू समाचार बुलेटिन सूचना एवं प्रसारण-मंत्रालय के निर्देशों के तहत इसलिए लागू किया गया है ताकि ''उर्दू-भाषी, आबादी को राज्य के विकास की गतिविधियों के बारे में सूचना मिले और अल्पसंख्यक समाज की मुख्यधारा के साथ चल सकें। इन समाचारों के जरिये राज्य, उसके लोगों की कला, संस्कृति के बारे में उनकी अज्ञानता को दूर किया जा सकेगा...।'' स्पष्ट तौर पर यह गढ़ा गया स्पष्टीकरण था, जिस पर कोई विश्वास नहीं करेगा। कर्नाटक के अधिकतर मुसलमान कन्नड़ बोलते हैं और दूरदर्शन पर कन्नड़ कार्यक्रम देखते हैं और वे कर्नाटक समाज की मुख्यधारा में भलीभांति घुले-मिले हैं। स्पष्ट है कि सरकार में यह स्वीकार करने की हिम्मत नहीं थी कि यह उर्दू भाषा को उसका जायज हक प्रदान करने का प्रयत्न था। चाहे यह चुनावी लाभ लेने के लिए क्यों न उठाया गया हो।

इस आन्दोलन ने साम्प्रदायिक मोड़ ले लिया और स्थिति बहुत अधिक खराब

हो गई। विरोध जुलूस को जानबूझकर दक्षिणी बेंगलूर के मुस्लिम बहुल क्षेत्र से ले जाया गया और जामा मस्जिद के सामने भड़काऊ नारे लगाए गए जहां मुसलमान जुम्मे की नमाज अदा कर रहे थे। विरोध-जुलूस के लिए शुक्रवार के दिन का चयन मात्र संयोग नहीं था। वी वी पुरम कॉलेज के अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद से जुड़ा छात्र संघ इस विरोध जुलूस का नेतृत्व कर रहा था। वे इसे के आर मार्किट सर्कल ले गए जहां शहर की सबसे बड़ी मस्जिद स्थित है। इस मस्जिद में एक समय में 6000 लोग नमाज अदा कर सकते हैं। जुलूस में शामिल कुछ लोगों ने जो पहले ही अराजक हो गए थे, मस्जिद से एक किलोमीटर दूर से ही कुछ मुसलमान ऑटो रिक्शा चालकों पर हमला करना शुरू कर दिया, जो कि जान बचाकर भागे और मस्जिद में शरण ली। बहरहाल पुलिस जुलूस की भीड़ को तितर-बितर करने में कामयाब हो गई लेकिन अब जो लोग मस्जिद के अन्दर थे वे बाहर आए और उन्होंने बसों पर हमला शुरू कर दिया। डिप्टी पुलिस कमिश्नर के भीड़ को काबू में करने के प्रयास असफल हो गए थे और भीड़ अब अंधाधुंध पत्थर बरसा रही थी। तब पुलिस ने गोलीबारी की और तीन व्यक्ति मौके पर मारे गए। कुछ पुलिस वालों को भी हल्की-फुल्की चोटें लगीं और खुद डिप्टी पुलिस कमिश्नर पर भी टूटी बोतल से हमला हुआ। जुलूस में शामिल लोग मुसलमानों को उकसाने में सफल हो गए थे। आजकल यही तरीका प्रयोग किया जाता है। भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाले जुलूस अक्सर मस्जिद या मदरसा या अन्य मुस्लिम भवन के सामने भड़काऊ नारे लगाकर मुसलमानों को उकसाने की कोशिश करते हैं, और मुसलमान उकसावे में आकर पत्थर या अन्य सामान फेंकना शुरू कर देते हैं, इससे भारतीय जनता पार्टी के लोगों को साम्प्रदायिक दंगे फैलाने का बहाना मिल जाता है। बेंगलूर भी इसका अपवाद नहीं था।

अब दक्षिण बेंगलूर में साम्प्रदायिक उन्माद फैल गया। पुलिस ने देखते ही गोली मारने के आदेश जारी किए और जे०जे० नगर, मगादी रोड, चामराजयेट, सीटी मार्किट, केगरी गेट, चिकपेट, कलसीथालसा, न्यू चारगुपेट और ब्यातारायनानपुरा ने पुलिस थानों के क्षेत्र में कर्फ्यू लगा दिया। ब्यातारायनानपुरा थाना सबसे बुरी तरह प्रभावित था। बेंगलूर के कुछ कार्यकर्ताओं ने यह भी कहा कि शहर के मारवाड़ी भारतीय जनता पार्टी और विश्व हिन्दू परिषद के पक्के समर्थक हैं, वे ही मुख्यत: इनको धन उपलब्ध करवाते हैं। इन्होंने कर्नाटक से गुजर रही विश्व हिन्दू परिषद की सन्त यात्रा का भी पूरे जोश से स्वागत किया था। इन कार्यकर्ताओं ने यह भी कहा कि इन मारवाड़ियों की मुस्लिम व्यापारियों से व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता थी, इन्होंने इस मौके का फायदा उठाते हुए मुस्लिम व्यापारिक संस्थानों को तबाह करने

के लिए दंगों को आर्थिक मदद की। यद्यपि इस आरोप की सच्चाई को परखना बहुत कठिन है, लेकिन यह सच है कि इस क्षेत्र में मुसलमानों के कई व्यापारिक संस्थाओं को नष्ट करने की कोशिश की गई। इनमें से मुसलमानों के बहुत से व्यापारिक संस्थान लूटे या जला दिए गए। हमने देखा कि के.जी.एस. टूरिस्ट सर्विस के मालिक सिकन्दर की 14 डीलक्स यात्री बसें पूरी तरह जला दी गईं, और ब्यातारायनानपुरा में स्थित उसका मकान भी लूट लिया और नष्ट कर दिया। यह 7 अक्टूबर की घटना है जब इसका मालिक मस्जिद में नमाज अदा करने गया हुआ था।

बयातारायनानपुरा के पुलिस इन्सपेक्टर ने हमें बताया कि यह क्षेत्र बुरी तरह प्रभावित था। इस क्षेत्र में कुल 5 व्यक्ति मरे जिनमें चार मुसलमान और एक हिन्दू था। एक पुलिस गोलीबारी में मरा (हिन्दू) और चार छुरा घोंपने से मरे। कुल 17 व्यक्ति घायल हुए। पुलिस इन्सपेक्टर ने हमें बताया कि जो विभिन्न फैक्ट्री और वाहन जले उनमें अधिकतर मुसलमानों के थे। इस पुलिस थाना क्षेत्र में तीन प्लास्टिक फैक्ट्री, एक कच्चे रेशम की फैक्ट्री और लकड़ी का टाल जलाए गए जो सभी मुसलमानों के थे। इस पुलिस थाने के पाईपलाइन क्षेत्र में राजकीय प्राथमिक उर्दू स्कूल का सारा सामान लूटकर पूरी तरह जला दिया। स्कूल बंद था इसलिए कोई जान नहीं गई। इस क्षेत्र में अधिकतर गरीब और निम्न मध्यवर्ग के मुसलमान रहते हैं। इस क्षेत्र के सामाजिक कार्यकर्ता इम्तियाज खान के अनुसार मुसलमानों के 63 मकान लूटे और जला दिए। इस क्षेत्र की मस्जिद को भी बहुत नुकसान पहुँचाया। इम्तियाज खान के अनुसार इस क्षेत्र के कांग्रेस (आई) के पार्षद और उसके साथियों ने भी हमलों में भाग लिया।

जगजीवनराम पुलिस थाना के सब-इन्सपेक्टर ने हमें बताया कि इस क्षेत्र में कुल 13 लोग मरे जिनमें 12 छुरा घोंपने से और एक पुलिस की गोली से मरा। छुरे से मरने वालों में 8 हिन्दू और 3 मुसलमान थे और एक की पहचान नहीं हो सकी। पुलिस गोलीबारी में 18 हिन्दू और 25 मुसलमान घायल हुए। पुलिस ने हत्याओं के मामलों में कुल 15 लोगों को गिरफ्तार किया, ये सभी मुसलमान थे। यह पूछे जाने पर कि हिन्दुओं को क्यों नहीं गिरफ्तार किया तो सब-इन्सपेक्टर ने बताया कि हत्या के अन्य मामलों की जांच चल रही है। इस क्षेत्र में सम्पति के नुकसान की 404 शिकायतें मुसलमानों की हैं और 230 हिन्दुओं की हैं। भारतीय दण्ड संहिता के तहत कुल 70 व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया जिनमें 11 हिन्दू और 59 मुसलमान थे। इस क्षेत्र की 70 प्रतिशत आबादी मुसलमान थी और 30 प्रतिशत हिन्दू थे। गिरफ्तारियों के आंकड़े स्पष्ट दर्शाते हैं कि पुलिस ने पक्षपातपूर्ण ढंग से

गिरफ्तारियां की। जनता कालोनी में कन्नड़ी, तामिल और मराठी रहते थे और इनका सबसे अधिक नुकसान हुआ। गरीबों के बहुत से मकानों पर मुसलमानों ने हमला किया और नुकसान पहुंचाया। देवराज उर्स नगर में मुख्यत: मुसलमानों का नुकसान हुआ। इस क्षेत्र में फिरोज नामक व्यक्ति की फैक्ट्री पूरी तरह जल गई। जगजीवनराम नगर थाना क्षेत्र में श्रीराम पटेल चौक के पास एक मंदिर पर हमला हुआ, लेकिन मंदिर के नुकसान के कोई साक्ष्य नहीं मिले। हो सकता है कि हमलावर नुकसान पहुँचाने में सफल न हुए हों। इस क्षेत्र में हिन्दुओं और मुसलमानों ने एक-दूसरे के घरों और दुकानों पर हमले किए।

दूरदर्शन से उर्दू समाचार प्रसारण रद्द करने की मोएली की घोषणा के बाद भी हिंसा जारी रही जो दर्शाती है कि हिंसा की मूल प्रकृति साम्प्रदायिक थी। असल में उर्दू समाचार प्रसारण रद्द करने की घोषणा के बाद भी छुरेबाजी की घटनाएं कम नहीं हुईं और इन दिनों में अल्पसंख्यक समुदाय के लोग अधिक प्रभावित हुए। घोषणा के बाद छुरेबाजी की घटना में सात लोग और मारे गए।

सरकारी आंकड़ों के अनुसार 25 लोग मारे गए और 343 घायल हुए। दंगों से संबंधित 696 मुकदमे दर्ज हुए, जिसमें चम्पराजेट में (157), ब्यातारायनानपुरा में (120), जे जे नगर में (326) के आर मार्किट में (48) कलासीपालथा (45) में मुकदमे दर्ज हुए। हालांकि गैर सरकारी सूत्र मरने की संख्या 25 से बहुत अधिक बताते हैं। कुछ इसे 40 बताते हैं तो कुछ 100 तक बताते हैं। परन्तु ये सब अनुमान पर आधारित है और वास्तविक संख्या को जानना बहुत कठिन है। लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि मरने वालों की वास्तविक संख्या निश्चित रूप से 25 से अधिक थी।

अध्याय-6

गुजरात नरसंहार

भारतीय जनता पार्टी के सत्ता में आने से पहले भी गुजरात साम्प्रदायिक दृष्टि से संवेदनशील था, लेकिन जब भारतीय जनता पार्टी ने सत्ता संभाली और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ परिवार ने गुजराती समाज का जोर-शोर से सांप्रदायिकीकरण किया तो स्थिति और भी गहरा गई। उच्च जाति के गुजरातियों के बहुत बड़ी संख्या में इग्लैंड और अमेरिका प्रवास की परिघटना ने यहां की साम्प्रदायिक स्थिति को गहराई से प्रभावित किया है। ये प्रवासी भारतीय इन देशों में स्वाभाविक रूप से पहचान के संकट से ग्रस्त हैं और अपने को जड़ों से कटा हुआ महसूस करते हैं। अपनी इस दशा की क्षतिपूर्ति वे उग्र-हिन्दू और कट्टर लफ्फाज भारतीय बनकर करते हैं, वे स्वयं को भारत में रहने वालों से ज्यादा भारतीय दर्शाते हैं।

गुजरात के ये प्रवासी भारतीय 'विश्व हिन्दू परिषद' को दिल खोलकर धन देते हैं। विश्व हिन्दू-परिषद ने इन देशों में अपनी शाखाएं बना रखी हैं और इनमें वे हिन्दुत्व की राजनीति का प्रचार करते हैं। विहिप इन प्रवासी भारतीयों के बच्चों के लिए गर्मियों में नियमित रूप से शिविर लगाती है। इनमें अधिकतर अमेरिका और इग्लैंड में मध्यवर्ग से ताल्लुक रखते हैं, पश्चिमी समाज में अपनी जड़विहीनता से हिन्दुत्व की इस नई पहचान से निजात पा लेते हैं। उन पश्चिमी समाजों में उनका हिन्दूवाद कमजोर पड़ता है तो वे अपने हिन्दूपन को हिन्दूवाद की बजाय हिन्दुत्व के माध्यम से बचाते हैं। इन प्रवासी भारतीयों विशेष गुजराती प्रवासी भारतीयों के कारण विश्व हिन्दू परिषद आर्थिक रूप से खूब फलफूल रही है।

गुजरात में हुए नरसंहार की पृष्ठभूमि को समझने के लिए एक चीज और है जिसका ध्यान रखना चाहिए। भारतीय जनता पार्टी की उत्तर प्रदेश, पंजाब (अकालियों से गठबन्धन) और उत्तरांचल (जहां भाजपा की सरकार थी) और गुजरात में विधानसभा उप-चुनावों की दो सीटों पर चुनावों में हार ने इसके नेताओं के लिए

गहरा संकट पैदा कर दिया। इन राज्यों की जनता ने भारतीय जनता पार्टी को इसके भ्रष्टाचार और कुशासन के कारण खारिज कर दिया। भूकंप के दौरान हुए घोटाले/ कांड और भारतीय जनता पार्टी के मंत्रियों और उनके सगे-सम्बन्धी ठेकेदारों द्वारा बनाई इमारतों के ढह जाने की घटनाओं ने भारतीय जनता पार्टी के भ्रष्टाचार रहित अलग पार्टी के महान दावे की पोल खोल दी। अत: भाजपा एक के बाद एक चुनाव हार रही थी और उत्तर-प्रदेश की हार के बाद वह विशेष रूप से चिन्तित हुई।

मार्च, 2003 में गुजरात में भी चुनाव होने थे और भाजपा के चुनाव हारने की स्पष्ट संभावना थी। इससे उबरने की केवल एक ही चाल थी कि हिन्दुओं और मुसलमानों का ध्रुवीकरण हो जाए और इसलिए हिन्दुत्व की शक्तियों ने इस पर ध्यान केन्द्रित किया। यह करने का सबसे आसान तरीका था कि साम्प्रदायिक दंगा करवाया जाए। सभी संकेत इसी ओर जाते हैं कि यह नरसंहार योजनाबद्ध था और बहुत चालाकीपूर्ण ढंग से किया गया। वे केवल एक चिंगारी का इन्तजार कर रहे थे और 27 फरवरी 2002 को प्रात: गोधरा में साबरमती एक्सप्रेस के कोच S-6 के जलने ने उन्हें वह चिंगारी प्रदान की।

घटना को संगीन वज़नदार बनाने के लिए आरोप लगाया गया कि यह घटना योजनाबद्ध थी और मुस्लिम उग्रवादियों एवं आतंकवादियों द्वारा आई.एस.आई. की शह पर की गई। डिब्बे में 'कारसेवक' थे जो कि अयोध्या से लौट रहे थे। आग लगने के कारण इनमें से 58 कुछ ही मिनटों में ज़िन्दा जल गए। बिना किसी जांच-पड़ताल से पहले ही यह निष्कर्ष निकाल लिया गया कि यह योजनाबद्ध कार्य था।

सेन्टर फॉर स्टडी ऑफ सोसाइटी एंड सेक्युलरिज्म की जांच टीम और अन्यों ने, विशेषकर एन डी टी वी के राजनीतिक संपादक राजदीप सरदेसाई ने अपनी जांच में पाया कि यह योजनाबद्ध नहीं बल्कि गोधरा स्टेशन के निकट सिग्नल फालिया के पास कुछ मुस्लिमों द्वारा अचानक की गई घटना थी। यहां तक कि रेलवे सुरक्षा बल, गोधरा ने रेलवे बोर्ड को 'पूर्वनियोजित षडयन्त्र की धारणा' को खारिज करते हुए लिखा। इसमें कहा कि यह हिंसा 27 फरवरी को गोधरा स्टेशन पर हुई घटनाओं का परिणाम थीं।

असल में गोधरा स्टेशन पर कारसेवकों और चाय विक्रेताओं के बीच में चाय व अन्य खाद्य सामग्री के पैसे न देने को लेकर तकरार हुई। कारसेवकों ने वृद्ध मुस्लिम विक्रेता को पीटा और जब उसकी पात्री ने छुड़ाने की कोशिश की तो कारसेवकों ने उससे छेड़छाड़ की। यद्यपि लड़की ने अपने को छुड़ाने की कोशिश की और अफवाह फैल गई कि उसे कारसेवकों ने पकड़ लिया और S-6 डिब्बे में खींच लिया। कुछ विक्रेता लड़की को छुड़ाने डिब्बे में चढ़ गए, लेकिन गाड़ी चल

पड़ी। उन्होंने चेन खींची और गाड़ी सिग्नल फालिया के पास रुक गई, पथराव और गाली गलौज के बाद जलते चीथड़े फेंके गए, जिससे कि डिब्बे में आग लग गई।

श्री राकेश अस्थाना, डी आई जी, सी आई डी ने माना कि किसी बड़े षड्यंत्र के कोई प्रमाण नहीं थे। यह ध्यान देने लायक है कि गुजरात के गृह राज्य मंत्री गोरधन जड़ाफिया जो कि इस पर अड़े थे कि आई.एस.आई.-पाकिस्तान का षड्यंत्र था, अब षड्यंत्र के दृष्टिकोण पर कुछ स्पष्ट नहीं कहा। जड़ाफिया ने कहा कि "अभी जांच चल रही है जब तक जांच पूरी नहीं हो जाती, तब तक इसके बारे में कुछ भी कहना कठिन है।"

ट्रेन-दुर्घटना के बाद विश्व हिन्दू परिषद ने 28 फरवरी को गुजरात बंद का आह्वान किया। इस पुस्तक के लेखक को अहमदाबाद में पुलिस के कुछ उच्चाधिकारियों ने बताया कि मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी ने पुलिस अधिकारियों की बैठक बुलाई और आश्वस्त किया कि बंद शांतिपूर्ण होगा और कोई विशेष कदम उठाने की कोई जरूरत नहीं। इस पुलिस अधिकारी के अनुसार पुलिस बल निश्चित हो गया। बाद के प्रमाणों से कहा जा सकता है कि मोदी ने झूठा आश्वासन दिया था। या तो वे षड्यंत्र का हिस्सा थे या इतने नादान थे कि विश्वास कर लिया कि कोई समस्या नहीं होगी।

28 फरवरी को बड़े पैमाने पर हिंसा की शुरुआत हुई और दिन की समाप्ति पर 100 से अधिक लोग मारे जा चुके थे। भयंकर उन्माद के साथ हिंसा फूट पड़ी। दंगाइयों के पास जिस तरह गैस सिलेंडरों, तलवारों, पेट्रोल बमों और मोबाइल फोनों के साथ मतदाता सूची और मुस्लिमों की दुकानों को पहचानने के लिए बिक्री कर सूची का विस्तृत विवरण था, उससे लगता है कि यह सुनियोजित था। एक मुस्लिम व्यापारी ने बताया कि जिन्होंने बिक्रीकर जमा नहीं करवाया था उनकी पहचान नहीं हुई इसलिए वे नहीं जलीं। स्पष्ट है कि इसके लिए काफी पहले और सुनियोजित ढंग से तैयारी कर ली थी। यह एक रात में नहीं हो सकता और न्यूटन के क्रिया और प्रतिक्रिया के सिद्धान्त से जोड़ते हुए नरेन्द्र मोदी का यह बयान कि हिंसा गोधरा घटना की प्रतिक्रिया है, घटित घटना से नहीं जन्मा।

पहले, राज्य के कार्यकारी मुखिया होने के नाते उनको भारी संख्या में हिंसा को तर्कसंगत ठहराने वाला बयान नहीं देना चाहिए था। दूसरे, योजनाबद्ध हिंसा, लूट, बलात्कार और आगजनी से बिल्कुल स्पष्ट है कि यदि मुख्यमंत्री नहीं तो कुछ कैबिनेट मंत्री जरूर इस कार्रवाई में शामिल थे। बहुत से प्रत्यक्षदर्शियों ने हमें बताया कि श्री हरिन पांड्या, कर मंत्री और गोरधन जड़ाफिया गृहमंत्री ने भीड़ का नेतृत्व किया। ऐसी भी रिपोर्ट है कि कुछ मंत्री जैसे अशोक भट्ट पुलिस नियंत्रण कक्ष में

घुस गए और पुलिस को स्थिति में हस्तक्षेप न करने के निर्देश दिए।

बहुत से प्रत्यक्षदर्शियों ने बताया कि पुलिस अधिकारी भी दंगाइयों की भीड़ का नेतृत्व कर रहे थे और बहुत से स्थानों को पुलिस थाने की ऐन नाक के नीचे जलाया गया। उदाहरण के लिए शाहीबाग पुलिस मुख्यालय के पीछे, प्रख्यात उर्दू कवि और सूफी संत वली गुजराती की दरगाह पर बुलडोजर चला दिया और उसकी जगह गोधरया हनुमान मंदिर बना दिया। पक्के ढांचे को गिराने में कुछ तो समय लगा होगा, लेकिन दरगाह को गिराने से रोकने के लिए पुलिस ने कुछ नहीं किया। यह घटना पुलिस की भूमिका को चीख-चीखकर बताती है।

दूसरी दिल दहला देने वाली घटना अहमदाबाद शहर के चमनपुरा के अपने बंगले में भूतपूर्व कांग्रेसी सांसद श्री एहसान जाफरी सहित 39 लोगों का जिन्दा जलाया जाना है। श्री जाफरी शहर के प्रसिद्ध व्यक्ति थे, वे पुलिस आयुक्त समेत विभिन्न प्रशासकों और राजनीतिज्ञों को फोन करते रहे, लेकिन पुलिस मदद के लिए नहीं आई। कहा जाता है कि मामला सोनिया गांधी के पास गया, जिन्होंने प्रधानमंत्री को हस्तक्षेप करने के लिए फोन किया, लेकिन कुछ नहीं हुआ। अन्ततः एहसान जाफरी अपने परिवार के 19 सदस्यों तथा जमनपुरा कॉलोनी के 20 सदस्यों समेत दर्दनाक मौत के शिकार हुए। बहुत से लोगों ने हमें बताया कि श्री जाफरी ने विधान सभा उपचुनाव में नरेन्द्र मोदी के खिलाफ प्रचार किया था, जिसकी कीमत उनको अपनी और अपने परिवार के तमाम सदस्यों की जान देकर चुकानी पड़ी।

यहां तक कि गुजरात के मुस्लिम पुलिस अधिकारी भी सुरक्षित नहीं थे। कुछ का कार्यक्षेत्र से तबादला कर दिया गया। उन पुलिस अधिकारियों का भी तबादला कर दिया गया जिन्होंने हिंसा को फैलने से रोकने की कोशिश की, उन्हें ड्यूटी से वापस बुला लिया और कार्यालय में कुछ काम दे दिया। अहमदाबाद में ऐसे दण्डित एक पुलिस उच्चाधिकारी ने हमें बताया, ''एक मुस्लिम, आई जी पुलिस को उसके मातहत हिन्दू ने चेतावनी दी कि अपने को बचाने के लिए पुलिस की वर्दी उतार दें। उच्च न्यायालय के न्यायाधीश स्तर का व्यक्ति भी अपने सरकारी आवास में सुरक्षित नहीं था क्योंकि वह मुसलमान था और गुजरात उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सलाह पर उसे मुस्लिम क्षेत्र में अपने सम्बन्धियों के यहां जाकर रहना पड़ा। गुजरात में हिंसा की प्रकृति और उसमें पुलिस की भूमिका को ये घटनाएं चीख-चीखकर बताती हैं।''

सबसे खराब घटना नरोदा पटिया नामक के शहर में झुग्गी झोपड़ी क्षेत्र में घटी, जहां लगभग 100 गरीब मुसलमानों को पुलिस बल के सामने जिन्दा जला दिया। जो बच गए उनमें से कईयों ने हमें बताया कि जब हम झुग्गी झोपड़ियों के

किनारे पर खड़ी पुलिस के पास गए तो उन्होंने हमारे ऊपर बन्दूक तान दी और भीड़ की तरफ धकेल दिया। नरोदा पटिया की काफी लड़कियों और औरतों के साथ बलात्कार किया और जिन्दा जला दिया। कैसरबानो का मामला हृदय विदारक है। वह गर्भवती थी, दंगाइयों ने तलवार से गर्भाशय को चीर कर भ्रूण निकाला और कैसरबानो को जलाने से पहले उसे जलाया।

नरोदा पटिया की अकेली घटना किसी भी सभ्य सरकार के लिए शर्मनाक घटना है। लेकिन नरेन्द्र मोदी सरकार टस-से-मस नहीं हुई और स्थिति को काबू में करने के लिए कुछ नहीं किया। सरकारी आंकड़े नरोदा पटिया घटना में मरने वालों की संख्या 100 के करीब बताते हैं, लेकिन हमारी स्वतन्त्र जांच-पड़ताल बताती है कि 200 लोगों को जिन्दा भून दिया गया। यह अनुमान बचे हुए लोगों की साक्षियों पर आधारित है।

गुजरात नरसंहार के बारे में कुछ टिप्पणी करना उचित होगा। पहला, यह स्पष्ट करना जरूरी है कि दूसरे दंगों की तरह यह हिन्दू-मुस्लिम दंगा नहीं था। इस नरसंहार को बहुत ही सुनियोजित ढंग से कार्यरूप दिया गया। दूसरे, मैंने 1962 के जबलपुर दंगे से लेकर 1992-93 के बम्बई दंगे तक स्वतन्त्र-भारत के सभी प्रमुख दंगों की जांच की है, मैंने मुसलमानों के विरुद्ध ऐसी उन्मादी विस्फोटक हिंसा कभी नहीं देखी। कोई भी दंगा इतने सुनियोजित ढंग से नहीं करवाया गया था।

मैंने किसी भी दंगे में पुलिस को इतना अधिक निष्क्रिय नहीं देखा था, हालांकि सभी दंगों में पुलिस की मिलीभगत स्पष्ट नजर आती है। यहां तक कि एक पुलिस अधिकारी ने सरकारी वाहन से लोगों को जलाने के लिए पेट्रोल दिया।

मैंने किसी भी दंगे में मंत्री को दंगाई भीड़ का नेतृत्व करने का दोषी नहीं देखा था। इसी तरह हमने बम्बई और अन्य दंगों में सरकार के निकम्मेपन और तटस्थता को तो देखा पर यह कहीं नहीं देखा कि सरकारी तंत्र दंगा करवाने में शामिल है और मुख्यमंत्री इसे काबू में करने की बजाय उचित ठहरा रहा है।

यह भी पहली बार देखा गया कि ऐसे साम्प्रदायिक तनाव में विदेशी नागरिकों को मारा गया। ये गलती से नहीं मारे गए बल्कि जानबूझकर मारे गए क्योंकि उन्होंने ब्रिटेन की नागरिकता के पासपोर्ट दिखा दिए थे। वे सिर्फ इसलिए मारे गए कि वे मुसलमान थे।

पहली बार ऐसा हुआ कि यूरोपियन यूनियन या अन्य यूरोपियन देशों (यूरोपियन यूनियन में शामिल नहीं) ने अपने जांच दल भेजे और केंद्र सरकार को गुजरात में निर्दोष लोगों की जान बचाने में असफल रहने का दोषी ठहराया।

पहली बार विपक्ष ने साम्प्रदायिक हिंसा पर संसद में नियम-184 के अन्तर्गत

बहस करवाने पर जोर दिया, जिसमें विचार-विमर्श के बाद वोट डाले जाते हैं। जब निर्दोष लोगों को मारा जा रहा था तो वाजपेयी सरकार ने हिंसाचार रोकने के लिए कोई कदम नहीं उठाया, इसके लिए विपक्ष ने खूब लताड़ा। यद्यपि वाजपेयी सरकार काफी संख्या से जीत गई लेकिन गुजरात में जब सैकड़ों लोग ऐसी क्रूरता से मारे जा रहे थे तो सरकार द्वारा कुछ न करने पर विपक्ष ने सरकार को खूब लताड़ा।

यह भी पहली बार हुआ कि उद्योगपति भी राज्य में अर्थव्यवस्था के नुकसान से गम्भीर रूप से चिन्तित हुए कि अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी चली जाएगी। श्री दीपक पारेख ने बयान दिया और गुजरात में हिंसा की निंदा की। पहली बार भारतीय उद्योग परिसंघ ने भारतीय अर्थव्यवस्था पर इसके प्रभाव पर बहस की। विपक्ष की नेता श्रीमती सोनिया गांधी ने अपने उद्घाटन भाषण में और प्रधानमंत्री ने विपक्ष की नेता के बयान पर टिप्पणी करते हुए अपने समापन भाषण में गुजरात में हुए नरसंहार का जिक्र किया। यह सी आई आई के इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ।

प्रधानमंत्री श्री वाजपेयी न केवल स्थिति को काबू करने में असफल हुए बल्कि अहमदाबाद और गोवा में विरोधाभासी बयान देकर अपनी साख भी गंवाई। वे नरसंहार शुरू होने के एक महीना से भी अधिक समय के बाद 4 अप्रैल को अहमदाबाद गए। वे गुजरात में सिर्फ एक दिन के लिए गए, जब सबसे बुरा समय समाप्त हो चुका था। इन दिनों वे मूकदर्शक बने रहे जैसे कि गुजरात में कुछ गम्भीर घटा ही न हो।

अहमदाबाद के शाह आलम कैंप में उन्होंने कहा कि मैं दुनिया में क्या मुंह दिखाऊंगा। श्री वाजपेयी ने कहा गुजरात की घटनाएं भारत पर कलंक हैं, जिसको दुनिया में सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त है क्योंकि 100 करोड़ लोगों में विविध धर्मों, संस्कृतियों और नस्ल समूहों के लोग खुशी से साथ-साथ रहते हैं, अपने सुख-दुख बांटते हैं, लेकिन शांति और भाईचारे का संदेश कभी नहीं भूलते। उन्होंने कहा कि गुजरात में जो कुछ हुआ वह केवल हृदय-विदारक ही नहीं बल्कि अत्यधिक अमानवीय एवं भयावह है। उन्होंने नरेन्द्र मोदी को राज-धर्म के पालन की सलाह दी।

लेकिन गुजरात दौरे के सिर्फ एक सप्ताह बाद 12 अप्रैल को, गोवा में भारतीय जनता पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक के बाद एक जनसभा में श्री वाजपेयी ने बिल्कुल उल्टी बात कही और इस्लाम और मुस्लिमों को झगड़े और उग्रता का दोषी ठहराया। वे गुजरात के बारे में मोदी की तरह ही बोले और वैसी ही भाषा बोली जैसे कि मोदी बोल रहे थे। उन्होंने बार-बार कहा कि गोधरा में रेल किसने जलाई ? गुजरात नरसंहार के जिक्र में निहित था कि गुजरात नरसंहार गोधरा-घटना

की प्रतिक्रिया थी।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का दृष्टिकोण ग्रहण करते हुए प्रधानमंत्री वाजपेयी ने मुसलमानों को पूरी दुनिया में "शांति और भाईचारे" के लिए खतरा बताया। प्रधानमंत्री ने कहा कि जहां भी "दुनिया में मुस्लिम आबादी है वह देश उग्रता और आतंकवाद के साये में रहता है।" उन्होंने दो प्रकार के इस्लाम की बात की, एक धैर्य और शांति का तथा दूसरा उग्रता और कलह का। दो इस्लाम की बात करके उन्होंने जानबूझकर बचाव का रास्ता ढूंढ़ लिया। लेकिन मुसलमानों की बात करते हुए उन्होंने ऐसा कोई भेद नहीं किया और मुसलमानों की एक समुदाय के तौर पर ही निंदा की।

इस तरह वाजपेयी ने नरेन्द्र मोदी की तरह स्वयं को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का प्रचारक सिद्ध किया, नरेन्द्र मोदी ने सरेआम यह किया, लेकिन वाजपेयी ने दबे-छुपे किया। यह ध्यान देने की बात है कि गोवा में श्री लालकृष्ण आडवाणी, श्री वाजपेयी की अपेक्षा अधिक उदार नजर आए। इस विपरीत भूमिका की व्याख्या करना काफी कठिन है, लेकिन श्री वाजपेयी श्री आडवाणी की अपेक्षा ज्यादा उग्र दिखे। न्यूयार्क में स्ट्राइटेन द्वीप में विश्व हिन्दू परिषद की बैठक में श्री वाजपेयी ने कहा कि "आर.एस.एस. मेरी आत्मा है।" और पहले भारत में कहा था कि राम-मंदिर का निर्माण राष्ट्रीय भावनाओं से जुड़ा है। इसलिए जवाहरलाल नेहरू की तरह वाजपेयी को धर्मनिरपेक्ष बताना कठिन है। नेहरू वास्तव में धर्मनिरपेक्ष थे क्योंकि वे धर्मनिरपेक्षता और राष्ट्रवाद की विचारधारा के प्रति ईमानदार थे। नेहरू सच्चे अर्थों में विस्तृत दृष्टि रखते थे और अपनी दृष्टि में राजनीति का हस्तक्षेप नहीं होने देते थे।

दूसरी ओर श्री वाजपेयी मूलत: आर.एस.एस. की विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध हैं, जो कि मुस्लिम व अन्य धार्मिक अल्पसंख्यकों के प्रति संकीर्ण, कट्टर तथा घृणात्मक रवैया रखती है। यद्यपि प्रधानमंत्री होने के नाते उन्हें सभी धार्मिक समुदायों में संतुलन रखना चाहिए, लेकिन आर.एस.एस. की विचारधारा से वास्तव में उन्होंने पीछा नहीं छुड़ाया, इसीलिए उनके व्यवहार में ये अन्तर्द्वन्द्व हैं।

गुजरात नरसंहार को आरम्भ हुए 70 दिन से भी अधिक हो चुके हैं, अभी भी घटनाएं घट रही हैं और प्रतिदिन निर्दोष लोग मारे जा रहे हैं। प्रधानमंत्री के गोवा में दिए बयान ने ऐसी हिंसा को बढ़ावा दिया। भारतीय जनता पार्टी, जिसने अपने चुनाव घोषणा-पत्र में 'दंगा-रहित भारत' देने का वादा किया था, दुर्भाग्य से नरेंद्र मोदी को समर्थन दे रही है, और उसके साथ खड़ी है जबकि नरेन्द्र मोदी इस नरसंहार में शामिल रहे हैं। असल में, गोवा बैठक से पूरी तरह स्पष्ट है कि भारतीय जनता पार्टी ने गुजरात में साम्प्रदायिक स्थिति से निपटने के लिए नरेन्द्र मोदी की

नीतियों को स्वीकार कर लिया है। अत: निकट भविष्य में गुजरात में शांति स्थापित होने की कम ही संभावना है। भारत के लिए ऐसी स्थिति घातक है लेकिन भारतीय जनता पार्टी भारत में हिन्दू राष्ट्र स्थापित करने के लिए कई गुजरात नरसंहार घटित करना चाहेगी।

(असगर अली इंजीनियर, शमा दलवाई, संध्या म्हात्रे द्वारा लिखित पुस्तक "Sowing Hate and Reaping Violence: The Case of Gujarat Communal Carnage" से साभार)

सांप्रदायिक दंगे

कुछ आंकड़ों पर एक नज़र

तालिका - 1

सांप्रदायिक घटनाओं की आवृत्ति और मौतें (1950-2002)

वर्ष	घटनाएं	मारे गए	घायल हुए
1950	56	50	256
1954	84	34	512
1955	75	24	457
1956	82	35	575
1957	58	12	316
1958	40	7	369
1959	42	41	1344
1960	26	14	262
1961	92	108	593
1962	60	43	348
1963	61	26	489
1964	1070	1919	2053
1965	173	34	758
1966	144	45	467
1967	198	301	880
1968	346	133	1309
1969	519	674	2702
1970	521	298	1607
1971	321	103	1330
1972	210	70	1056
1973	242	72	1318
1974	248	87	1123
1975	205	33	890
1976	169	39	794
1977	188	36	1122
1978	230	108	1853
1979	304	261	2379
1980	421	375	2691
1981	319	196	2613
1982	470	238	3025
1983	500	1143	3652
1984	476	445	4836
1985	525	332	3751
1986	768	418	5389
1987	711	383	3860
1988	710	259	3103
1989	922	802	3871
1990	1421	1241	3913
1991	29	877	6370

वर्ष	घटनाएं	मारे गए	घायल हुए
1992	37	1972	13571
1993	33	960	4496
1994	8	39	450
1995	17	54	235
1996	20	24	28
1997	70	137	495
1998	600	207	2065
1999	52	43	248
2000	24	91	165
2001	27	56	158
2002	28	1173	2272
योग	**13952**	**14686**	**68182**

स्रोत : 1. पी आर राजगोपाल, पृ. 16-12

2. जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली से हरीश चंद्र शर्मा का पी.एच.डी. शोध पत्र

नोट: 1995-2002 के आंकड़े गृह मंत्रालय के रिकार्ड से नहीं लिए गए हैं। अखबारों से यह डाटा एकत्रित किया गया है।

तालिका - 2

विभिन्न राज्य / केंद्र शासित क्षेत्रों में सांप्रदायिक दंगों में मरने वालों की संख्या

राज्य का नाम	*दंगों में मरने वालों की संख्या*	*संपत्ति का नुकसान*
आंध्र प्रदेश	20	उपलब्ध नहीं
असम	94	49 लाख रुपये
बिहार	10	उपलब्ध नहीं
दिल्ली	15	उपलब्ध नहीं
गुजरात	208	7.25 लाख रुपये
हरियाणा	1	उपलब्ध नहीं
कर्नाटक	78	5.97 करोड़ रुपये
केरल	21	1.5 करोड़ रुपये
महाराष्ट्र	259	3.9 करोड़ रुपये
मध्य प्रदेश	133	1.5 करोड़ रुपये
उड़ीसा	2	6 लाख रुपये
पंजाब	उपलब्ध नहीं	6 लाख रुपये
राजस्थान	49	7.37 लाख रुपये
तमिलनाडु	2	68.58 लाख रुपये
उत्तर प्रदेश	170	उपलब्ध नहीं
पश्चिम बंगाल	27	उपलब्ध नहीं

स्रोत: कलकत्ता सेंटेनरी हाल में 10 नवम्बर, 95 को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य में अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकारों पर सम्मेलन से

तालिका - 3
सांप्रदायिक दंगों में मरने वालों की संख्या

स्थान	मरने वालों की संख्या			योग
	हिंदू	मुस्लिम	अन्य	
अलीगढ़ (1961)	1	12	–	13
रांची/हटिया (1967)	20	156	1	177
अहमदाबाद (1969)	24	430	58	512
जलगांव (1970)	1	42	–	43
भिवंडी (1970)	17	59	2	78
फिरोजाबाद (1972)	3	16	2	21
अलीगढ़ (1978)	6	19	3	28
जमशेदपुर (1979)	12	107/117	8	127/137
मुरादाबाद (1980)	18	142	0	166
मेरठ (1982)	6	21	2	29
योग	**108**	**1004/1014**	**76**	**1188/1198**
गोधरा (1981)	2	2	–	4
मेरठ (1982)	10	90	–	100
मीनाक्षीपुरम (1982)	150	876	–	1026
औरंगाबाद (1988)	5	5	1	11
अलीगढ़	3	2	–	5
भागलपुर (1990)	150	876	–	1026
सुलिया (1991)	–	2	3	5
सोरो (1991)	2	14	–	16
भद्रावती (1994)	1	1	–	2
पलामू (1995)	1	4	–	5
दौलतपुर (1998)	1	1	–	2
बाराणसी (2000)	1	1	–	2
बिहारशरीफ (2000)	–	1	–	1
रांची (2001)	–	3	–	3
मुरादाबाद (2001)	–	2	–	2
बांसवाड़ा (2001)	–	3	–	3
मैसूर (2001)	–	1	–	1

स्रोत : कलकत्ता सैंटनरी हाल में 10 नवम्बर, 95 को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य में अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकारों पर सम्मेलन से

नोटः 1995 से आंकड़े अखबारों से लिए गए हैं, इसलिए इनमें थोड़ी त्रुटियां हो सकती हैं

तालिका - 4

राज्य आधारित दंगों के आंकड़े (मृत)

वर्ष	उ.प्र.	गुजरात	बिहार	महाराष्ट्र	आंध्रप्रदेश
1960	10	-	-	-	-
1961	30	-	-	-	-
1962	10	-	-	5	-
1963	-	-	-	15	-
1964	-	-	75	-	10
1965	5	-	-	-	-
1966	-	-	10	25	-
1967	-	-	36	-	-
1968	25	-	-	50	-
1969	-	640	-	-	-
1970	-	10	29	200	-
1971	25	-	-	-	-
1972	30	-	-	-	-
1973	10	-	15	10	-
1974	-	-	25	5	-
1975	-	-	5	10	-
1976	-	-	5	-	-
1977	10	10	-	-	-
1978	60	-	-	-	20
1979	10	-	170	-	-
1980	165	10	-	-	16
1981	-	-	75	-	35
1982	45	-	5	-	-
1983	5	-	-	20	60
1984	2	-	-	280	52
1985	-	150	-	-	2
1986	45	120	-	25	-
1987	150	20	-	5	-
1988	30	-	27	20	-
1989	25	10	435	-	-
1990	200	155	20	-	126
1991	86	15	-	5	-
1992	40	325	115	403	30
1993	-	50	-	575	-
1994	1	2	-	-	-
1995	6	-	2	1	1
1996	2	1	2	4	2
1997	27	-	-	25	3
1998	8	-	4	3	8
1999	11	17	-	1	-
2000	9	20	1	4	-
2001	22	2	11	3	-
2002	-	1071	-	45	-

नोट : यह आंकड़े गृह मंत्रालय के रिकार्डों से नहीं हैं

तालिका - 5

राज्य अनुसार मृत (1960-2002)

राज्य	मृत	राज्य	मृत
हरियाणा	20	प. बंगाल	175
केरल	46	कर्नाटक	313
तमिलनाडु	216	आंध्रप्रदेश	379
जम्मू और कश्मीर	50	मध्य प्रदेश	391
राजस्थान	133	बिहार	917
उड़ीसा	100	उत्तर प्रदेश	1298
दिल्ली	2148	महाराष्ट्र	1492
असम	140	गुजरात	1569

स्रोत : यह आंकड़े गृह मंत्रालय के रिकार्डों से नहीं हैं

तालिका - 6

सर्वाधिक दंगा-ग्रस्त शहरी क्षेत्र (1960-2002)

शहर	*कुल मृत*	*शहर*	*कुल मृत*
अहमदाबाद	1103	जलगांव	52
बम्बई (मुंबई)	906	इंदौर	45
हैदराबाद	331	वाराणसी	44
मेरठ	263	इलाहाबाद	43
भिवंडी	194	औरंगाबाद	30
जमशेदपुर	194	रांची	32
मुरादाबाद	166	श्रीनगर	29
अलीगढ़	146	बेंगलूर	28
बड़ोदरा	126	फिरोजाबाद	25
दिल्ली	2148	मालेगांव	35
कानपुर	86	गोधरा	73
थाणे	69	कोयम्बटूर	110
कोलकाता	64		

स्रोत : यह आंकड़े गृह मंत्रालय के रिकार्डों से नहीं हैं

तालिका - 7

वर्ष और राज्य के अनुसार प्रमुख दंगों से सम्बन्धित आंकड़े

(1950-2002)

वर्ष	राज्य	दंगों की संख्या	मारे गए	घायल	गिरफ्तार किए गए
1	2	3	4	5	6
1950	पश्चिम बंगाल और असम	—	50	256	1719
1961	मध्य प्रदेश	—	55	158	1003
1962	प. बंगाल	—	14	64	—
1964	प. बंगाल	—	285	105	—
	बिहार, उड़ीसा और मध्य प्रदेश	—	246	458	—
1965	राजस्थान	—	2	12	—
	गुजरात	4			
1966	राजस्थान	—	1	—	—
1967	क. पश्चिम बंगाल	—	11	100	—
	ख. बिहार	—	184	100	611
	ग. कश्मीर	—	3	162	—
	घ. महाराष्ट्र	—	4	—	—
1968	क. असम	—	2	7	
	ख. उत्तर प्रदेश	2	7	83	233
	ग. महाराष्ट्र	2	20	—	—
		2	32	—	—
1969	गुजरात	—	1000	—	1
1970	महाराष्ट्र	—	145	382	—
1971	उत्तर प्रदेश	1	—	—	—
1972	उत्तर प्रदेश	2	16	—	—
1973	उत्तर प्रदेश	1	9	40	600
1974	दिल्ली	1	10	131	—
1975	आंध्र प्रदेश	1	10	8	—
1976	— —	—	—	—	—
1977	उत्तर प्रदेश	1	8	65	—

1	2	3	4	5	6
1978	क. उत्तर प्रदेश	3	43		
	ख. जम्मू और कश्मीर	1	3		
	ग. आंध्र प्रदेश	2	3		
	घ. मध्य प्रदेश	1	1		
1979	क. बिहार	3	165	483	1215
	ख. उत्तर प्रदेश	1	7	48	—
	ग. प. बंगाल	1	28	—	—
	घ. आंध्र प्रदेश	1	—	100	1425
1980	क. बिहार	1	—	2	—
	ख. महाराष्ट्र	1	4	58	—
	ग. दिल्ली	2	2	12	—
	घ. उत्तर प्रदेश	8	142	207	883
	ड.. मध्य प्रदेश	1	3	34	—
	च. जम्मू और कश्मीर	1	—	—	2000
	छ. कर्नाटक	1	1	3	—
	ज. तमिलनाडु	1	—	14	—
	झ. गुजरात	1	6	30	2
	ञ. उड़ीसा	1	—	—	—
1981	क. गुजरात	6	11	49	174
	ख. बिहार	1	54	1000	782
	ग. उत्तर प्रदेश	2	—	42	25
	घ. आंध्र प्रदेश	2	28	256	1325
	ड.. राजस्थान	1	—	3	28
	च. पंजाब	1	—	—	—
1982	क. गुजरात	3	15	62	622
	ख. उत्तर प्रदेश	2	111	24	—
	ग. महाराष्ट्र	2	—	8	—
	घ. पंजाब	1	—	32	—
	ड.. तमिलनाडु	5	1044	5	2050
	च. कर्नाटक	1	1	—	—

1	2	3	4	5	6
1983	क. जम्मू कश्मीर	1	—	14	—
	ख. कर्नाटक	1	5	50	—
	ग. बिहार	2	4	2	115
	घ. महाराष्ट्र	2	10	3	500
	ड. आंध्र प्रदेश	3	47	164	345
1984	क. पंजाब	4	35	—	—
	ख. हरियाणा	1	9	—	—
	ग. महाराष्ट्र	2	234	150	—
	घ. दिल्ली	2	2000	—	8
	ड.. आंध्र प्रदेश	1	19	—	—
	च. मध्य प्रदेश	2	7	—	—
	छ. असम	1	2	9	—
	ज. कर्नाटक	1	—	—	—
1985	गुजरात	2	51	12	—
1986	क. पंजाब	4	51	—	—
	ख. जम्मू कश्मीर	2	—	200	—
	ग. दिल्ली	2	6	76	144
	घ. मध्य प्रदेश	2	7	—	100
	ड.. प. बंगाल	1	—	8	20
	च. महाराष्ट्र	3	12	105	145
	छ. उत्तर प्रदेश	1	6	27	88
	ज. गुजरात	1	40	250	6
	झ. कर्नाटक	2	21	115	—
	ञ. बिहार	1	3	—	—
1987	क. गुजरात	6	20	128	50
	ख. मध्य प्रदेश	1	—	—	130
	ग. उत्तर प्रदेश	1	400	131	2530
	घ. दिल्ली	2	17	—	250
	ड.. महाराष्ट्र	1	60	60	—
1988	क. जम्मू कश्मीर	2	—	—	—
	ख. कर्नाटक	1	6	60	126

1	2	3	4	5	6
	ग. उत्तर प्रदेश	5	6	51	9
	घ. महाराष्ट्र	3	21	192	600
1989	क. जम्मू कश्मीर	2	6	120	—
	ख. महाराष्ट्र	3	5	4	—
	ग. उत्तर प्रदेश	5	26	215	51
	घ. राजस्थान	4	19	34	58
	ड.. कर्नाटक	2	5	12	70
	च. बिहार	7	1083	91	2249
	छ. तमिलनाडु	1	3	11	—
	ज. गुजरात	4	3	31	24
	झ. मध्य प्रदेश	2	22	6	—
1990	क. राजस्थान	3	54	13	—
	ख. कर्नाटक	5	44	75	27
	ग. महाराष्ट्र	4	3	123	—
	घ. गुजरात	6	133	48	—
	ड.. उत्तर प्रदेश	5	244	127	220
	च. बिहार	1	—	—	45
	छ. तमिलनाडु	2	9	12	—
	ज. दिल्ली	1	6	25	237
	झ. आंध्र प्रदेश	1	200	300	418
	ञ. पंजाब	1	35	—	—
1991	क. उत्तर प्रदेश	7	92	1	538
	ख. प. बंगाल	2	7	38	—
	ग. उड़ीसा	2	24	2	—
	घ. गुजरात	3	28	9	—
	ड.. मध्य प्रदेश	1	5	20	—
	च. दिल्ली	1	—	2	—
	छ. केरल	1	3	10	—
	ज. कर्नाटक	1	—	5	—
1992	क. उत्तर प्रदेश	2	11	21	24
	ख. प. बंगाल	1	1	—	—

1	2	3	4	5	6
	ग. गुजरात	4	331	179	—
	घ. केरल	2	6	—	—
	ड.. महाराष्ट्र	2	205	116	101
	च. बिहार	1	48	100	—
	छ. राजस्थान	1	—	—	32
1993	क. गुजरात	2	4	1	—
	ख. महाराष्ट्र	1	458	—	1700
	ग. दिल्ली	1	2	6	—
	घ. मध्य प्रदेश	1	—	—	58
	ड.. मणिपुर	1	98	—	—
1994	क. गोवा	1	—	—	22
	ख. गुजरात	2	2	—	90
	ग. कर्नाटक	4	37	430	300
	घ. उत्तर प्रदेश	1	—	—	—
1995	क. उत्तर प्रदेश	6	22	21	308
	ख. केरल	6	6	15	—
	ग. कर्नाटक	3	1	65	7
	घ. तमिलनाडु	2	4	100	7
	ड.. उड़ीसा	1	2	—	—
	च. बिहार	2	9	—	8
	छ. आंध्र प्रदेश	1	5	21	—
	ज. महाराष्ट्र	1	—	14	—
1996	क. आंध्र प्रदेश	3	3	9	—
	ख. तमिलनाडु	1	2	7	35
	ग. बिहार	1	2	—	2
	घ. गुजरात	2	1	17	2
	ड.. राजस्थान	1	1	11	—
	च. उत्तर प्रदेश	5	1	26	662
	छ. प. बंगाल	1	6	30	—
	ज. महाराष्ट्र	2	4	14	—
	झ. कर्नाटक	1	3	20	—

1	2	3	4	5	6
1997	क. तमिलनाडु	3	88	83	—
	ख. महाराष्ट्र	7	8	105	24
	ग. कर्नाटक	2	8	28	—
	घ. जम्मू और कश्मीर	1	—	228	27
	ड.. उत्तर प्रदेश	5	51	31	42
	च. दिल्ली	1	—	8	49
	छ. आंध्र प्रदेश	3	3	55	—
	ज. राजस्थान	1	6	10	—
1998	क. उत्तर प्रदेश	3	6	64	256
	ख. महाराष्ट्र	2	3	4	24
	ग. तमिलनाडु	2	75	—	500
	घ. राजस्थान	2	3	66	16
	ड.. आंध्र प्रदेश	1	8	36	—
	च. गुजरात	3	—	2	3
	छ. बिहार	1	4	29	—
	ज. कर्नाटक	1	8	60	—
1999	क. गुजरात	6	17	44	53
	ख. उत्तर प्रदेश	7	11	61	—
	ग. तमिलनाडु	3	2	—	350
	घ. दिल्ली	1	—	—	—
	ड.. महाराष्ट्र	3	1	16	130
	च. आंध्र प्रदेश	1	—	35	—
	छ. मध्य प्रदेश	1	1	15	90
	ज. उड़ीसा	1	—	12	—
2000	क. उत्तर प्रदेश	7	9	34	241
	ख. गुजरात	7	18	47	26
	ग. राजस्थान	3	16	3	25
	घ. महाराष्ट्र	3	4	4	32
	ड.. प. बंगाल	1	4	—	—
	च. बिहार	2	1	24	—
	छ. दिल्ली	2	19	17	—
	ज. आंध्र प्रदेश	1	—	—	—

1	2	3	4	5	6
2001	क. बिहार	2	11	6	—
	ख. जम्मू और कश्मीर	1	—	—	—
	ग. महाराष्ट्र	11	16	126	178
	घ. गोवा	61	—	—	—
	ड.. उत्तर प्रदेश	5	23	9	5
	च. आंध्र प्रदेश	1	—	4	—
	छ. राजस्थान	3	3	34	—
	ज. गुजरात	1	2	10	4
	झ. कर्नाटक	1	1	—	—
2002	क. महाराष्ट्र	9	29	220	786
	ख. आंध्र प्रदेश	1	—	—	—
	ग. राजस्थान	2	5	15	—
	घ. प. बंगाल	1	1	8	—
	ड.. कर्नाटक	1	—	—	—
	च. उत्तर प्रदेश	1	—	—	1
	छ. चेन्नई	1	—	—	—
	ज. गुजरात		1071	1973	

नोट : इस तालिका में आंकड़े इस पुस्तक में वर्णित दंगों की छानबीन के दौरान एकत्रित किए गए हैं। ये गृह मंत्रालय के रिकार्ड से नहीं लिए गए। संभव है कि इनमें कुछ पूर्वाग्रह और त्रुटियां हों।

स्रोत : सांप्रदायिक दंगे : भारत में हिंदू और मुसलमान

आवरणः
बाबरी मस्जिद के विध्वंस के प्रतिरोध
में विवान सुंदरम की कलाकृति
(जलेस के सौजन्य से)
मूल्यः 35/-